

SHIKSHA VIVECHAN 1978

जनवरी 1978

शिक्षा विवेचन





इस अंक में

शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय - भारत सरकार

शिक्षा विवेचन

● यह पत्रिका प्रत्येक वर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई और अक्तूबर में त्रैमासिक रूप में छापी जाती है।

● इस पत्रिका में, इस मंत्रालय की अंग्रेजी की त्रैमासिक 'दि एज्यूकेशन क्वार्टरली' में छपे लेखों का हिन्दी अनुवाद छापा जाता है। इनमें शिक्षा संबंधी विचारों, समस्याओं और सामयिक विषयों की व्याख्या होती है। पत्रिका में शैक्षिक रुचि के महत्वपूर्ण प्रश्नों और भारत तथा विदेश में हो रही शक्षिक और युवा कल्याण की गतिविधियों और प्रयोगों की जानकारी देने का प्रयास किया जाता है। लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने विचार होते हैं और यह आवश्यक नहीं कि वे सरकार के विचार और दष्टिकोण के अनरूप हों।

● इस पत्रिका की बिक्री के संबंध में पूछताछ और वार्षिक चन्दा व मनीआर्डर आदि प्रकाशन प्रबंधक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110 006 को भेजा जाना चाहिये। पत्रिका की प्रतियां, मंत्रालय के विक्रय डिपो, ग्राउण्ड फ्लोर, डी-विंग, शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110 001 से भी खरीदी जा सकती हैं।

● विज्ञापनों आदि के बारे में जानकारी, विज्ञापन एजेन्ट, भारत सरकार के प्रकाशन, 5 ए/10, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली से मिल सकती है।

शिक्षा विवेचन

इस अंक में — पृष्ठ संख्या

• • •

1—401 एज्युकेशन/77

इस अंक में

शिक्षा विवेचन के इस अंक में जिन विषयों पर चर्चा की गई है वे केवल प्रासंगिक ही नहीं हैं बल्कि ऐसे विषय हैं जो हमारे शैक्षिक भविष्य से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। इन्हीं विषयों को सरकार की योजना में प्राथमिकता तथा महत्व दिया गया है। मुरियल वसो ने "वर्तमान समय में शिक्षा" नामक लेख में समस्या के मूल प्रश्नों का सविस्तर विश्लेषण किया है। प्राथमिकताओं में से प्राथमिकताओं का चुनाव किस प्रकार किया जाए तथा प्रत्येक स्थान और प्रत्येक आयु–वर्ग के बीच संचार साधनों का किस प्रकार भावशाली ढंग से प्रयोग किया जाये, ये दो प्रमुख प्रश्न हैं जिनका उत्तर दिया जाना है। हमें स्कूल अध्ययन की पारम्परिक प्रणाली से हटना होगा तथा अनौपचारिक विकल्प ढूंढने होंगे। यह सराहनीय है कि लेखक ने हमारे देश के अलग–अलग क्षेत्रों में प्राप्त हुए कारगर परिणामों के उदाहरण दिये हैं। इनके विवेकपूर्ण विस्तार की आवश्यकता है और देश के शैक्षिक विकास में लगे उन स्वैच्छिक संगठनों की सहायता का भी उपयोग किया जाना चाहिए जिन्होंने सफलतापूर्वक और निरन्तर समाज की सेवा की है। आवश्यकता दृढ़ निश्चय और पहल करने की है। श्री जगन्नाथ मोहन्ती ने, लोकतन्त्र तथा शिक्षा के बीच संबंध की व्याख्या करते हुए, लोकतन्त्र तथा शिक्षा के बीच पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में देवे के कथन की पुष्टि की है। इस बात पर बल देते हुए कि स्कूलों के अस्तित्व का औचित्य केवल उसी सीमा तक है कि वे निर्धन सामाजार्थिक परिस्थितियों वाले बच्चों के जीवन की वास्तविकताओं पर विचार करें और ऐसी शिक्षा, प्रदान करें जो इस प्रश्न का उत्तर दे सके कि "स्कूल : क्या हमें उनकी आवश्यकता है"। बी० निर्मला ने "उत्तम शिक्षा की ओर" नामक अपने लेख में स्वतन्त्रता के बाद से प्रशिक्षण की कोटि तथा अध्यापकों का स्तर ऊंचा उठाने में शिक्षा मन्त्रालय तथा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् द्वारा किए गए प्रयत्नों की प्रशंसा की है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद द्वारा आयोजित अनुस्थापन पाठ्यक्रमों तथा सेवाकालीन कार्यक्रमों के माध्यम से उन्हें आशा है कि शिक्षक–शिक्षा के स्तर में और सुधार होगा। विस्तार की समस्या पर विचार करते हुए, जो परिवर्तनशील युग में शिक्षा पर छाई हुई है, श्री अशोक सेन ने अनौपचारिक शिक्षा को शैक्षणिक शिक्षा के समानान्तर दर्जा देने की आवश्यकता पर बल दिया है।

वर्तमान वाद–विवाद का एक अन्य विषय, शिक्षा का व्यावसायिकरण, श्री सी० वी० गोविन्दा राव के लेख का विषय है। व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की सफलता तत्काल उपलब्ध होने वाले रोजगार अवसरों पर निर्भर करती है। यह भी तीव्र आर्थिक विकास पर निर्भर है। लेखक ने, प्रशिक्षण सुविधाएं उपलब्ध करने के मामले में सामाजिक प्रतिबद्धता पर बल दिया है। श्री संजीत सेन गुप्त के अनुसार, जिन्होंने "प्राथमिक कक्षाओं में कार्य–शिक्षा गतिविधियों" के विषय में लिखा है, बच्चों की स्वाभाविक खेल प्रकृति का लाभ उठाया जाना चाहिए। "अनौपचारिक शिक्षा क्यों और कैसे?" के प्रश्न पर विचार करते हुए श्री लोकेश कौल ने इस प्रकार की शिक्षा के उपायों का वर्णन किया है और अनौपचारिक पद्धति को सफल बनाने के लिए उपाय सुझाये हैं।

एक जांच संबंधी रिपोर्ट में, श्री राम मूर्ति ने नई शैक्षिक नीति के प्रति अध्यापकों के दृष्टिकोण का उल्लेख किया है जो शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे लोगों के लिए एक रुचिकर विषय हो सकता है। इसके अतिरिक्त, श्री शम्सुद्दीन का एक लेख है "नये मध्य प्रदेश में 1956–1964 के दौरान उच्च शिक्षा" जिसमें उन्होंने तथ्यपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है।

आशा है कि इस पत्रिका के आगामी अंकों में अन्य क्षेत्रों में शैक्षिक परिस्थितियों पर सूचनात्मक लेख शामिल किये जाएंगे ।

हमें विश्वास है कि शिक्षा विवेचन के इस अंक में शामिल लेख, जो शिक्षा के क्षेत्र में हमारे सामने प्रस्तुत समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं, शिक्षाविदों और अध्यापकों दोनों के लिए समानरूप से रुचिकर होंगे तथा इसमें चर्चित प्रश्नों पर हम उनके विचारों का स्वागत करेंगे।

—सम्पादक

लेखक परिचय

मुरियल वसी
डी-145, डिफेन्स कालोनी,
नई दिल्ली-110024

सी० शेषाद्रि
क्षेत्रीय शिक्षा कालेज,
मैसूर-570006

सीता राम शर्मा,
ी-7, दिल्ली प्रशासन फ्लैटस,
माडल टाउन,
दिल्ली

सी० वी० गोविन्दा राव
शिक्षा व्यावसायीकरण एकक
रा० शै० अनु० प्र० परि०
श्री अरविन्द मार्ग,
नई दिल्ली-110016

लोकेश कौल
स्कूल आफ एजूकेशन,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
समर हिल,
शिमला-171005

एम० श्री राम मूर्ति
कालेज आफ एजूकेशन,
उस्मानिया विश्वविद्यालय,
हैदराबाद-500007

जगन्नाथ मोहन्ती
शैक्षिक प्रौद्योगिकी सेल,
जन शिक्षा निदेशालय,
प्लाट नं० 36(ए), यूनिट III
खखेला नगर,
भुवनेश्वर 1

बी० निर्मला
राष्ट्रीय अंग्रेजी स्कूल,
राजाजी नगर,
बंगलोर-10

अशोक सेन
68, राष्ट्रगुरू एवेन्यु,
कलकत्ता-700028

मंजीत सेन गुप्त
व्यावसायीकरण यूनिट,
रा० शै० अनु० प्र० परि०
श्री अरविन्द माग,
नई दिल्ली-110016

श्री बी० एस० गुप्त
क्षेत्रीय शिक्षा कालेज,
श्यामला हिल्स,
भोपाल-462013

शम्सुद्दीन
7/150, बैजनाथ पाड़ा,
रायपुर-492001

वर्तमान समय में शिक्षा

—मुरियल वसी

सभी बच्चों, किशोरों और प्रौढ़ों को किसी-न-किसी प्रकार की शिक्षा, परम्परागत अथवा अन्यथा, औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा, की परिधि के अंतर्गत लाने के लिए हमें सभी प्रकार के संचार माध्यमों का उपयोग करना होगा। यदि हम निकट भविष्य में ही शिक्षा को गम्भीरता से लेना चाहते हैं तो हमें शिक्षा के लिए युद्ध स्तर पर कार्य करना होगा और हमें अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शिक्षण के सभी माध्यमों, रेडियो, दूरदर्शन, चलचित्र, पत्राचार पाठ्यक्रमों के लेखकों, कार्यक्रम अनुदेशकों का अंशकालिक उपयोग करना होगा। हमारे सामने प्रमुख समस्याएं हैं :—

(i) प्राथमिकताओं में से प्राथमिकताओं का कैसे चयन किया जाए, क्योंकि हाल में ही हुए शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन में जितने भी प्रस्ताव पारित किए गए उन सब कार्यों को समान रूप से प्रभावी ढंग से एकसाथ नहीं किया जा सकता ;

(ii) प्रत्येक जगह और/अथवा प्रत्येक आयु वर्ग के बीच संचार-साधनों में किस प्रकार समन्वय स्थापित किया जाए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कार्य व्यवस्थित ढंग से हो और भ्रम बढ़कर अव्यवस्था में न बदल जाए।

सर्वप्रथम बाल शिक्षा

यदि हम शैक्षिक सहज बोध पर ध्यान दें तो ऐसा प्रतीत होगा कि उन योजनाओं को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए जिनमें महत्वपूर्ण लक्ष्य तेजी से प्राप्त होने की अत्यधिक सम्भावना हो। सन् 1950 के बाद से हमारा उद्देश्य यही रहा है कि 6–14 आयु वर्ग के बच्चों के लिए स्कूल शिक्षा की व्यवस्था की जाए। अनेक कारणों से हम 1977 तक यह कार्य करने में असमर्थ रहे। परन्तु अभी भी यह कार्य कई कारणों से सर्वोच्च प्राथमिकता का विषय है। एक बात तो यह है कि किशोरों अथवा प्रौढ़ों की अपेक्षा बच्चों को शिक्षा देना सरल और सामान्य है। बच्चे की सामान्य आदत ही उसे स्कूल ले जाएगी चाहे वह शहर में हो अथवा देहात में। गांव में स्कूल एक भौतिक लक्ष्य है जबकि शहर के स्कूल एक प्रतीक तथा लक्ष्य दोनों ही हैं। यहां प्रवेश पाना सहज अथवा अपेक्षाकृत सहज होता है। इस स्तर पर शिक्षा निःशुल्क होती है। छह वर्ष की आयु में न तो लड़का और न ही लड़की घर पर विशेष रूप से लाभप्रद होती है। दोनों को ही छोड़ा जा सकता है और उनकी अनुपस्थिति से माताओं को आराम ही मिलेगा। इन सबके अतिरिक्त—और यह एक प्रामाणिक शैक्षिक तर्क है—छह वर्ष का बच्चा, अन्य बातें समान रहने पर, अध्ययन की उत्तम स्थिति में होता है। चौदह वर्ष की आयु तक किसी बच्चे द्वारा शिक्षा प्राप्त कर लेने पर सम्भवतः वह जीवनभर साक्षर बना रहेगा।

हमने छह और चौदह वर्ष की आयु के बीच के बच्चों को औपचारिक स्कूल पद्धति की परिधि के अंदर लाने के लिए पिछले लगभग 30 वर्ष से प्रयास किया है। पिछले समय में हमने, गलत ढंग से अथवा सही ढंग से, इसे ही शिक्षा का एकमात्र साधन समझा। मैं ऐसा नहीं समझती कि हम सिद्धान्ततः गलत थे क्योंकि यह सच है कि स्कूल में सहज संख्या में आने वाले बच्चे सम्भवतः कहीं अधिक तेजी से और स्थायी रूप से सीख लेते हैं बजाय इसके कि उन्हें घर पर ही अथवा घर के निकट ही तदर्थ स्थितियों में पढ़ाया जाए। नियमित समय पर स्कूल जाने का अनुशासन मात्र, एक निर्धारित पद्धति के अनुसार उसी आयु के अन्य बच्चों के साथ काम करना, एक ही काम को करना, एक ही प्रकार के शिक्षण को सुनना—सम्भवतः प्रत्येक के लिए अच्छा है। यह कहने की एक बात है कि हम इस पर और अधिक जोर नहीं दे सकते क्योंकि इससे लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सका है, और यह दूसरी बात है कि इसका कोई अर्थ नहीं है कि छह वर्ष के बच्चे को इसी पद्धति से पढ़ाया जाए अथवा किसी अन्य गैर-औपचारिक पद्धति से। गैर-औपचारिक शिक्षा भी सभी आशाएं पूरी नहीं करती। यह पद्धति सभी

बच्चों को इसके अंतर्गत लाने में सफल नहीं रही है। परिणामस्वरूप स्कूल सुविधा बच्चों तक पहुंचनी चाहिए।

गैर-औपचारिक विकल्प

ऐसे कौन से गैर-औपचारिक उपाय हैं जिनका उपयोग हम इस स्थिति को सुधारने के लिए कर सकते हैं? इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले यह स्पष्ट करना उपयुक्त होगा कि गैर-औपचारिक पद्धति भी एक तरह से सुव्यवस्थित शिक्षा है। कुछ लोगों की यह धारणा है कि गैर-औपचारिक का अर्थ है 'जहां सम्भव हो' और 'किसी भी प्रकार'। अनेक प्रकार के विचित्र स्पष्टीकरण दिए जाते हैं क्योंकि यदि गैर-औपचारिक पद्धति पर अमल किया जाना है तो इसे एक सुविचारित और सुव्यवस्थित पद्धति का स्वरूप लेना होगा जो लगभग सामान्य स्कूल पद्धति के समान है। इसके लिए अध्यापक की ओर से अधिक बुद्धिमानी और पहल शक्ति, बच्चे और परिस्थिति के अनुसार अपने आपको ढालने की इच्छा और समय और शिक्षा के अनुसार सर्वोत्तम ढंग से इसका उपयोग करने की आवश्यकता है। यह कोई आदर्श पद्धति नहीं है परंतु 'बिल्कुल भी कोई शिक्षा नहीं' के विकल्प का एक सर्वोत्तम उपाय है।

मैंने छोटे बच्चों के साथ रेडियो पर कोई परीक्षण नहीं किया है और इसलिए यह नहीं कह सकती कि छह वर्ष के बच्चों के लिए रेडियो वस्तुतः कितना प्रभावी होगा। दूसरी ओर टेलीविजन, उसकी उपलब्धता के अनुसार, हम जहां तक उपयोग कर सकते हैं, अन्य देशों में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुआ है। भारत में यह सर्वत्र उपलब्ध नहीं है और उसके लिए टेलीविजन द्वारा शिक्षण में विशेषज्ञता प्राप्त करने के वास्ते समय और धन की आवश्यकता है। ऐसी स्थिति में भी हमें टेलीविजन पर विषय शिक्षण तथा अध्ययन के कार्यक्रम विकसित करने के लिए जितनी भी सुविधा उपलब्ध है उसका उपयोग करना चाहिए। रेडियो का एक साधन के रूप में और परीक्षण करने की आवश्यकता है लेकिन 11–14 आयु वर्ग के लिए रेडियो को प्रभावी बनाया जा सकता है और क्योंकि यह सुविधा टेलीविजन की अपेक्षा अधिक बड़े पमाने पर उपलब्ध है इसलिए यह अधिक तेजी से उपयोगी हो सकती है।

स्कूल छोड़ने की समस्या

भारत में निरक्षरता को दूर करने की समस्या काफी हद तक इस कारण से है कि प्राथमिक स्तर पर बहुत अधिक संख्या में छात्र स्कूल छोड़ देते हैं। किसी न किसी कारण से स्कूल छोड़ने वाले बच्चे फिर से सहज ही निरक्षर बन जाते हैं और बाद में उन्हें साक्षर बनाने की प्रक्रिया सरल नहीं होती क्योंकि अन्य बातों के साथ-साथ तब तक उनमें अध्ययन के प्रति एक प्रतिरोध की भावना पैदा हो जाती है। इन बच्चों को फिर से स्कूलों में लाने के लिए हमें क्या करना चाहिए? इस प्रश्न का कोई एक अथवा सरल उत्तर नहीं है क्योंकि इस बात का भी कोई एक अथवा सरल उत्तर नहीं है कि उन्होंने पहले स्कूल क्यों छोड़ा। यदि इसका कारण सामाजार्थिक है, जैसा कि ग्रामीण क्षेत्रों के मामले में, तो इस समस्या का समाधान अंतर्मंत्रालयीय स्तर पर कार्रवाई करने से हो सकता है। हमें बताया गया है कि 6–11 आयु वर्ग में समस्या ग्रामीण क्षेत्रों में लड़कियों को स्कूल तक लाने की है। इसके लिए दीर्घकालिक और अल्पकालिक समाधान सर्वविदित है: लड़कियों की माताओं को यह आश्वासन दिया जाना चाहिए कि लड़कियों के स्कूल जाने अथवा किसी गैर-औपचारिक पद्धति द्वारा पढ़ाए जाने से ही उनकी पुत्रियों को उनकी अपेक्षा बेहतर जीवन व्यतीत करने में मदद मिल सकती है; उन्हें यह भी विश्वास दिलाया जाना चाहिए कि अशिक्षित लड़की की अपेक्षा कुछ शिक्षा प्राप्त लड़कियों की शादी करना आसान है। एकमात्र अध्यापक वाले स्कूलों में शिक्षण में सुधार किया जाना चाहिए और यह सुधार केवल शैक्षिक ही नहीं बल्कि सामाजार्थिक भी होना चाहिए। यदि गांवों से आने वाली लड़कियां उनमें अध्यापक बन सकें तो समझिए कि समस्या काफी सीमा तक हल हो गई।

शहरों में स्कूल छोड़ने की समस्या भी कभी-कभी सामाजार्थिक होती है परन्तु इसका कारण सामान्यतः विशिष्ट शैक्षिक बताया गया है जैसे कि उत्साहहीन अथवा स्तरहीन और अनावश्यक शिक्षण। पहले वर्ष में सभी परीक्षाओं को समाप्त करना शायद इस समस्या के समाधान का एक उपाय हो सकता है परंतु अन्य तुरत उपायों की तरह यह भी अंतिम नहीं है। संचयी अज्ञानता से स्कूल छोड़ने का समय केवल स्थगित हो सकता है, उसे पूर्णतया समाप्त नहीं किया जा सकता है। कुछ मूल्यांकन आवश्यक है, इसलिए यदि किसी बच्चे को एक कक्षा में रोका अथवा फेल न किया जाए तो उसकी प्रगति पर नजर रखी जानी चाहिए। स्पष्टतः प्रारंभिक शिक्षा पर और अधिक धन खर्च करना होगा चाहे इसका अर्थ कालेज और विश्वविद्यालय शिक्षा से कुछ धन हटाना हो क्योंकि उस पर काफी अधिक धन खर्च किया जा रहा है। इसके साथ ही प्रारंभिक शिक्षा पर किए जाने वाले खर्च पर राज्य शिक्षा मंत्रियों द्वारा निगरानी रखी जानी चाहिए, जिसके बारे में कहा जाता है कि प्राथमिक शिक्षा के लिए मूल रूप से निर्धारित धन का उपयोग किसी अन्य प्रयोजन के लिए किया जाता है।

स्वैच्छिक एजेन्सी : एक महत्वपूर्ण भूमिका

यदि हम चाहते हैं कि बच्चों को शैक्षिक जगत की परिधि में लाया जाए तो हमें ऐसे स्वैच्छिक संगठनों पर विश्वास करना होगा और उनमें धन लगाना होगा जो न केवल कागजी रिपोर्टों के आधार पर बल्कि वास्तविक शिक्षा के प्रसार के प्रति वस्तुतः वचनबद्ध हों। प्रत्यक्षतः महिला संगठन, अन्य संगठनों की अपेक्षा अधिक 'वचनबद्ध' होते हैं और इसलिए हमें क्रमिक रूप से जिलों और गांवों तक पहुंचना है ताकि विश्वास-पात्र स्वैच्छिक संगठन अपने निकटवर्ती क्षेत्रों में प्रभावी ढंग से कार्य कर सकें। यदि इस प्रकार योजना तैयार की जाए और ऐसे स्वैच्छिक संगठनों का सहयोग प्राप्त करके इसे कार्यान्वित किया जाए तो हम प्राथमिक शिक्षा की इस गम्भीर समस्या को हल करने के काफी निकट पहुंच जाएंगे।

घर और स्कूल

कुछ दिन पहले मैंने एक अमरीकी शिक्षाविद को सुना था जो अनेक वर्षों तक भारत में रहा था और कार्य किया था। उसने भारतीय शिक्षा के इस दुखद पहलू की ओर संकेत दिया था। उसने कहा था कि "यह ऐसा लगता है जैसे कि स्त्री और पुरुष स्वयं से यह कभी नहीं कहते कि 'ये हमारे बच्चे हैं'।" जापान और फिलीपीन में सातवें दशक में मुझे यह जान कर काफी आश्चर्य हुआ कि वहां लोग इस कार्य में कितना सहयोग देते हैं जबकि हमारे बीच इस सहयोग की अत्यंत कमी है। वहाँ एक समुदाय को उसकी इच्छानुसार स्कूल सौंप दिया जाता है। स्कूलों में समाज की झलक मिलती है।

उपानहरहित समितियां

भारत के बड़े शहरों—बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, दिल्ली—में महत्वाकांक्षी माता-पिता स्वयं ही शैक्षिक प्रबंधों पर निगरानी रखेंगे। अभिभावक-अध्यापक एसोसिएशनों की प्रभावशालिता अलग-अलग है, लेकिन यह सर्वमान्य है कि जहां स्कूल और माता-पिता एक साथ मिलकर काम करते हैं, वहाँ शैक्षिक परिणाम उत्साह-वर्धक होते हैं। और यह सहयोग इतना लाभदायक रहा है कि यह पद्धति कालेजों में भी पहुंच गयी है जहां कालेज-समुदाय सहयोग के महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त हुए हैं। तथापि, इस सभी के लिए एक सजीव और प्रगतिशील समुदाय की आवश्यकता है। जहाँ समुदाय अपने सामर्थ्य अथवा अपने अधिकारों से विमुख अथवा अनभिज्ञ हो, तो इन अपेक्षाओं और अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा की जानी चाहिए। शिक्षाविद स्वयं ही ऐसी जागरूकता पैदा नहीं कर सकते। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें अनभिज्ञता, अज्ञानता, अकर्मण्यता और सामान्य असहायता व निराशा की भावना पर सतत प्रहार और उनके विरुद्ध अविरत अभियान चलाने के लिए नानाविध कार्रवाई करनी होगी। शिक्षा के क्षेत्र में हमारी अनेक समितियां निष्क्रिय हैं और उनका कोई परिणाम नहीं निकला है। इन अनेक समितियों को उपानहरहित समिति कहना उपयुक्त होगा ताकि आयोजन और गतिशीलता की आवश्यकता के महत्व को दर्शाया जा सके। इन समितियों में एक अध्यापक, एक समाजिक कार्यकर्त्ता, एक डाक्टर, एक नर्स और एक प्रशासक शामिल होना चाहिए तथा उनमें कार्य समन्वित करने और निर्णय लेने की योग्यता और अधिकार भी होना चाहिए। इन बुनियादी समितियों को ऐसे क्षेत्रों में स्थापित करने की जरूरत है जहाँ बच्चों को स्कूलों में लाने में अधिक विरोध का सामना करना पड़ता है। यहाँ, समिति का मुख्य कार्य स्कूल सुविधाएं बच्चों तक पहुंचाना होगा। यह समिति साधनहीन बच्चों के पास एक प्रकार से साधनरहित पहुंचेगी ताकि बच्चे को स्कूलों तक सुविधाजनक ढंग से लाया जा सके। हमें ऐसे अवसरवादी संगठनों से बचना चाहिए और केवल उन्हीं स्वैच्छिक संगठनों को प्रोत्साहन देना चाहिए जिनका निरंतर और सफल सेवा का रिकार्ड हो और जिन्होंने पिछले कम से कम 20 वर्षों तक सेवा की हो। इस संबंध में वाई० डब्लू० सी० ए० का नाम उल्लेखनीय है जिसके पास कर्त्तव्यनिष्ठ कार्यकर्ता हैं और रामकृष्ण मिशन भी एक संस्था है जिसे लोक सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। इन संगठनों को सौंपे जानेवाले कार्य की शर्तों को उदार बनाया जाना चाहिए ताकि वे अपने कार्यक्रमों का विस्तार कर सकें और अपनी गतिविधियों को तेज कर सकें।

यह सुझाव कि अंशकालिक कार्यकर्त्ताओं का सहयोग प्राप्त किया जाए अच्छा है और अब जबकि महिलाएं अंशकालिक सपारिश्रमिक कार्य करने के लिए तत्पर रहती हैं, यह प्रभावी सिद्ध हो सकती हैं। ऐसी विवाहित महिलाएं, जिनके बच्चे बड़े हो गए हैं और जिनके पति अपना जीवन पूर्णता में व्यतीत करते हैं, जीवन में कोई उद्देश्य और लाभ पाने की इच्छुक रहती हैं और इसलिए यदि उन्हें कुछ पारिश्रमिक दिया जाए तो वे यह अंशकालिक कार्य करने के लिए तैयार हो जाएंगी। इस पर अमल करने के लिए अंशकालिक रोजगार ब्यूरो जैसा कोई संगठन होना आवश्यक है और यह कार्य भी किसी स्वैच्छिक संगठन को सौंपा जा सकता है।

माध्यमिक स्कूल और कालेजों की समस्याएं

माध्यमिक स्कूल और कालेज स्तर पर समस्या मात्रा की अपेक्षा कोटि की है। यह कम-से-कम तीन पक्षीय

[शेष पृष्ठ 6 पर]

लोकतंत्र अथवा शिक्षा ? सर्वप्रथम क्या ?

—जगन्नाथ मोहन्ती

जॉन देवे ने ठीक ही कहा है कि "शिक्षा के प्रति लोकतंत्र की निष्ठा एक सर्वसामान्य तथ्य है।" लोकतंत्र को शिक्षा ने सदा ही सर्वाधिक सहयोग तथा निरंतर साथ दिया। शिक्षा के बिना लोकतंत्र, अपंग, निर्जीव तथा शिथिल है। लोकतंत्र के बिना शिक्षा शुष्क, नीरस तथा मृतप्राय है। इसीलिए देवे ने कहा है कि "लोकतंत्र तथा शिक्षा में संबंध पारस्परिक और महत्वपूर्ण भी है। लोकतंत्र स्वयं एक शैक्षिक सिद्धान्त, एक शैक्षिक मापदण्ड तथा नीति है।" उनका कहना है कि लोकतंत्र तथा शिक्षा का आपसी संबंध है। यह सिर्फ इसलिए नहीं कि लोकतंत्र स्वयं एक शैक्षिक सिद्धान्त है बल्कि इसलिए कि उस शिक्षा के बिना जिसके बारे में हम आम तौर पर संकीर्ण दृष्टि से सोचते हैं, जो स्कूल तथा परिवार में दी जाती है, लोकतंत्र का कोई अस्तित्व ही नहीं है, विकास की तो बात ही अलग है। अपेक्षित सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए एक सशक्त साधान के रूप में शिक्षा का सदा ही एक प्रक्रिया के रूप में प्रयोग किया गया है। वास्तव में, अनेक समाज-वैज्ञानिकों के अनुसार शिक्षा न केवल एक प्रक्रिया है बल्कि एक परिणाम (उत्पाद) भी है। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा का प्रादुर्भाव सामान्यतः और स्पष्ट रूप से सामाजिक प्रभावों तथा सामाजिक परिवर्तनों के कारण हुआ है। इसका यह भी अर्थ है कि शिक्षा एक साधन है जिसके माध्यम से लोकतंत्र सामाजिक न्याय की स्थापना करता है।

इसी प्रकार सामाजिक संगठन भी लोकतांत्रिक शिक्षा को काफी प्रभावित करते हैं। जैसा कि बर्टंड रसेल ने कहा, "किसी भी समाज में जहां वर्ग-भेद मौजूद है, बच्चों का सम्मान न केवल उनकी अपनी योग्यताओं के आधार पर होता है बल्कि उनके माता-पिताओं की सम्पत्ति के कारण भी होता है..... परिणामस्वरूप, जब भी वर्ग-भेद होता है, शिक्षा में निश्चित रुप से दो सहसंबंधी दोष होते हैं, एक तो यह कि धनी लोगों में घमण्ड पैदा होता है और दूसरे निर्धनों में अविवेकी दीनता आती है।"

लोकतंत्र को "जीवन में प्रयोग" कहा जाता है तथा शिक्षा न केवल जीवन के लिए तैयार करती है बल्कि यह स्वयं भी एक जीवन है। किलपैट्रिक ने कहा है कि यदि हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे लोकतांत्रिक ढंग से रहना सीखें तो हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि हमारे घर तथा हमारे स्कूल इस प्रकार के जीवन के लिए प्रयोगशालाओं के रूप में कार्य करें।

लोकतंत्र के लिए शिक्षा के उद्देश्य तथा पूर्व शर्तें

व्यक्तित्व का विकास, चरित्र प्रशिक्षण तथा नागरिकों का निर्माण, लोकतंत्र के लिए शिक्षा के बुनियादी उद्देश्य समझे जाते हैं। हमारे स्कूलों की अवधि के आयोजन, उनके कार्यक्रमों और पद्धतियों को तय करने में इन उद्देश्यों पर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए। व्यक्तित्व के सामाजिक तथा व्यक्तिगत दोनों पहलुओं को समेकित तथा समन्वित किया जाना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि छात्रों को अपने व्यक्तित्व का विकास अपनी पूर्ण क्षमता के अनुसार करना चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी को "(क) अपने निजी व्यक्तित्व के विकास का पूर्ण अवसर दिया जाना चाहिए ताकि वह अपनी क्षमताओं का उपयोग करके अपने जीवन का आनन्द उठा सके और अपने इर्द-गिर्द के जीवन की संभावनाओं तथा वास्तविकताओं के प्रति संवेदनशील हो सके, (ख) अपने समुदाय के एक सक्रिय सदस्य के रूप में सामाजिक तथा राज-नितिक रूपों में अपना कार्य करने की जानकारी होनी चाहिए, (ग) अपनी चियों और क्षमताओं के अनुरूप व्यावसायिक क्षेत्र में अपना योगदान देने में समर्थ होना चाहिए, और (घ) उसे यह ज्ञान होना चाहिए कि वह अपनी सुस्पष्टता तथा सृजनात्मक क्षमता के द्वारा अपने साथियों के साथ सम्पर्क में कैसे प्रभावी हो सकता है" ("डेमोक्रेसी इन स्कूल लाईफ" से उद्धृत। नागरिकता में शिक्षा के लिए संघ, लंदन) संक्षेप में, लोकतंत्र के लिए शिक्षा के चार उद्देश्य हैं: (1) स्वयं अनुभूति, (2) नागरिक दायित्व, (3) आर्थिक स्वाव-लम्बन, (4) मानवीय संबंधों को प्रोत्साहित करना।

लोकतंत्र का विश्वास लोगों को स्वतंत्रता देने में है परन्तु यदि, लोग शिक्षित नहीं है तथा समाज के लाभ के लिए अनु-शासित नहीं हैं तो वह स्वतंत्रता मंहगी पड़ेगी तथा अराजकता का रूप ले सकती है। लोकतंत्र की सफलता के लिए कुछ पूर्व शर्तें बहुत आवश्यक हैं। उनमें से दो हैं: (1) लोगों की

आर्थिक बेहतरी होनी चाहिए। भूखे रहकर लोकतंत्र स्थापित नहीं किया जा सकता। लोगों को अपनी राजनैतिक स्वतंत्रता छोड़ने के लिए तैयार रहना चाहिए यदि यह स्वतंत्रता उनके भोजन की समस्या के समाधान में सहायक नहीं हो। (2) दूसरी पूर्व शर्त है शिक्षित मतदाताओं का निर्माण। लोकतंत्र तभी उचित ढंग से कार्य कर सकता है जबकि लोग शिक्षित हों और वे अपने कर्त्तव्यों तथा अधिकारों के प्रति सजग हों। यदि लोग अशिक्षित होंगे तो लोकतंत्र के वेष में निरंकुशता कायम हो जाएगी। कुछेक लोग सरकार पर नियंत्रण कर लेंगे तथा लोगों का शोषण शुरू कर देंगे।

लोकतंत्र में शिक्षा का एक कठिन तथा चुनौतीपूर्ण दायित्व है। आज के विद्यार्थी कल के नागरिक हैं। अतः उन्हें नागरिकता के बारे में प्रशिक्षित किया जाना है जिसमें अनेक नैतिक, सामाजिक तथा बौद्धिक दायित्व निहित हैं जिनका विकास अपने आप नहीं हो सकता। किसी भी प्रकार की एकतंत्रीय या बहुसंख्यक सामाजिक प्रणाली में व्यक्ति को स्वतंत्र रूप में चिंतन करने या कार्रवाई की अपनी नीति निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं होती। परंतु लोकतंत्र में व्यक्ति को सभी प्रकार के व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक जटिल मामलों पर अपना स्वतंत्र निर्णय लेना होता है और काफी हद तक कार्रवाई की अपनी नीति निर्धारित करनी होती है। इस संबंध में पहली आवश्यकता स्पष्ट चिंतन तथा निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना है।

प्रत्येक व्यक्ति के महत्व तथा प्रतिष्ठा में विश्वास पर आधारित लोकतंत्र ऐसी शिक्षा की सहायता से सफल हो सकता है जिसका उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का चहुंमुखी विकास करना हो। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षा में व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, भावात्मक तथा व्यावहारिक आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए और उसे उन सभी की पूर्ति करनी चाहिए। इस प्रकार की लोकतांत्रिक शिक्षा को संकीर्ण शैक्षिक दृष्टिकोण से ऊपर उठना चाहिए तथा उसे जीवन की व्यावहारिक शिक्षा बनना चाहिए, अर्थात् ऐसी शिक्षा जो विद्यार्थियों को समाज में अनेक प्रकार से रहना सिखाए। अपने पूर्ण विकास तथा समाज की भलाई दोनों के लिए यह आवश्यक है कि वह दूसरों के साथ रहना सीखे तथा व्यावहारिक अनुभवों और अन्य महानुभावों के साथ स्वतंत्र प्रभाव के माध्यम से सहयोग के महत्व को समझे जैसा कि माध्यमिक शिक्षा आयोग की रिपोर्ट में कहा गया है।

लोकतंत्र में बच्चे तथा स्कूल

छात्रों के अंतर-वैयक्तिक संबंधों को दिशा प्रदान करने वाली जीवन पद्धति और धारणाओं के संबंध में छात्र जो कुछ सीखते हैं उनमें स्कूल जीवन का वातावरण और मानवीय संबंधों की गतिशीलता अत्यंत महत्वपूर्ण कारण होते हैं। संभवतः ये लोकतांत्रिक मानवीय संबंधों के बारे में स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा से भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। स्कूलों में अध्ययन के अनुभव लोकतांत्रिक मानवीय संबंधों को बना अथवा बिगाड़ सकते हैं।

क्योंकि बच्चे भावी नागरिक हैं और क्योंकि लोकतंत्र की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वे किस प्रकार प्रगति करते हैं व खुशहाल बनते हैं, अतः बच्चे और लोकतंत्र दोनों ही आपस में संबंधित तथा परस्पर निर्भर हैं। 26 अप्रल, 1939 को, चौथे व्हाइट हाउस सम्मेलन के प्रारंभ में प्रेसीडेंट एफ० डी० रुजवेल्ट ने कहा था "निश्चित रूप में हम सफल लोकतंत्र तथा बच्चों के आपसी संबंधों के प्रमुख उद्देश्य पर विचार करने के लिए यहां एकत्र हुए हैं, जो कि लोकतंत्र के अभिन्न अंग हैं। हम उन्हें इस तरह से लोकतंत्र से अलग-अलग नहीं समझ सकते जैसे कि उनका कोई अलग वर्ग हो। वे लोकतंत्र के अभिन्न अंग हैं क्योंकि वे लोकतंत्र पर निर्भर हैं और लोकतंत्र उन पर निर्भर है।"

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, श्री देवे के अनुसार शिक्षा जीवन के लिए कोई तैयारी नहीं है बल्कि शिक्षा स्वयं जीवन है तथा स्कूल समाज के प्रतिरूप नहीं हैं बल्कि स्कूल स्वयं ही समाज है। आज हमारे अधिकांश स्कूल समाज से पृथक हैं और स्कूलों में विद्यमान परिस्थितियां लोकतंत्र के विकास के विपरीत हैं। इसीलिए देवे ने सुझाव दिया है कि स्कूलों को केवल पाठ पढ़ाने का स्थान न बनाकर "सक्रिय सामाजिक जीवन का एक यथार्थ रूप" बनाया जाना चाहिए। उनके अनुसार समाज का अर्थ अनेक व्यक्तियों को मिलाकर व्यक्तियों का एक समूह है क्योंकि वे सब एक सामूहिक ढंग से, सामूहिक उद्देश्य के लिए और सामूहिक भावना से कार्य करते हैं। उन्होंने संक्षेप में कहा है कि "स्कूलों में सामाजिक संगठन के उद्देश्यों और उनके दृढ़ीकरण का समान रूप से अभाव है। नैतिक दृष्टि से हमारे वर्तमान स्कूलों की दुःखद स्थिति यह है कि ये समाज के भावी सदस्य तैयार करने का कार्य ऐसी परिस्थितियों में करते हैं जहां सामाजिक भावना की परिस्थितियों का नितान्त अभाव है।"

लोकतांत्रिक शिक्षा के मुख्य लक्षण

शैक्षिक नीति आयोग, अमेरिका, ने लोकतांत्रिक शिक्षा के निम्नलिखित मुख्य लक्षण बताए हैं :—

(1) लोकतांत्रिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य सभी लोगों का कल्याण है।

(2) यह प्रत्येक बच्चे की न्यायपूर्वक सेवा करती है, और इसका उद्देश्य सभी के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करना है चाहे उनकी बुद्धि, जाति, धर्म, सामाजिक-प्रतिष्ठा, आर्थिक स्थिति या व्यावसायिक योजनाएं कुछ भी हों।

(3) यह व्यवहार्यतः बुनियादी नागरिक स्वतंत्रताओं का सम्मान करती है और अध्ययन के माध्यम से उसके अर्थ का स्पष्टीकरण करती है।

2—401 एम् ऑफ् एजूकेशन/77

(4) इसका संबंध उन आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के रख-रखाव से है जो कि स्वतंत्रता का लाभ उठाने के लिए आवश्यक हैं।

(5) यह, समाज के सभी सदस्यों को शिक्षा की नीतियां और उद्देश्य निर्धारित करने में उनके सहयोग के अधिकार की गारंटी देती है।

(6) यह, कक्षा, प्रशासन तथा विद्यार्थियों की गतिविधियों में लोकतांत्रिक पद्धतियों का उपयोग करती है।

(7) यह, शिक्षण, प्रशासनिक तथा तकनीकी कार्मिकों का कुशल उपयोग करती है।

(8) अनुभव के आधार पर यह सिखाती है कि प्रत्येक विशेषाधिकार के साथ कर्त्तव्य, प्रत्येक प्राधिकार के साथ जिम्मेदारी, प्रत्येक जिम्मेदारी के साथ उस वर्ग के प्रति एक दायित्व है जिसने विशेषाधिकार तथा प्राधिकार प्रदान किया है।

(9) इससे पता चलता है कि नीतियों तथा प्रणालियों के मामले में दूरगामी परिवर्तन सुव्यवस्थित और शांतिपूर्ण ढंग से लाये जा सकते हैं जबकि परिवर्तन लाने के संबंध में निर्णय लोकतांत्रिक तरीकों से लिए गए हों।

(10) लोकतांत्रिक शिक्षा सभी की बुद्धि को स्वतंत्र करती है और उसका उपयोग करती है।

(11) यह, नागरिकों को लोकतांत्रिक कार्य-कुशलता के लिए आवश्यक ज्ञान संबंधी सामग्री से सज्जित करती है।

(12) सक्रिय सूझबूझ पर बल देकर तथा महान उद्देश्य के लिए युवकों का आह्वान करके यह लोकतंत्र के प्रति वफादारी को प्रोत्साहित करती है।

पहले क्या ?

शिक्षा के लोकतांत्रिकरण के उद्देश्य से ये लक्षण अत्यंत, महत्वपूर्ण हैं। अब प्रश्न उठता है कि पहले क्या होना चाहिए? लोकतंत्र अथवा शिक्षा? इसका उत्तर देवे के कथन में खोजा जा सकता है कि "लोकतंत्र और शिक्षा का आपसी संबंध है।" कहने का तात्पर्य है कि एक का कारण दूसरा भी हो सकता है। परंतु यह लोकतांत्रिक विचार ही है जो कि शिक्षा में लोकतांत्रिक तथ्यों का समावेश करते हैं। लोकतंत्र, शिक्षा के लिए आधार तैयार करता है तथा शिक्षा, लोकतंत्र के निर्माण तथा लोकतांत्रिक जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। ● ● ●

[पृष्ठ 3 का शेष]

है: (1) 14–17 आयु-वर्ग के बच्चों को, जो अभी तक स्कूल नहीं जाते हैं, अध्ययन की सुविधा उपलब्ध कराना, किसी भी व्यवहार्य साधन के माध्यम से अच्छ शिक्षण की व्यवस्था करना; व्यावसायीकरण की लाभप्रद योजनाओं के माध्यम से शिक्षा को उत्पादक बनाना।

14 वर्ष से कम आयु की अपेक्षा इससे अधिक आयु वाले व्यक्तियों के लिए गैर-औपचारिक शिक्षा का कार्यान्वयन अधिक आसान है और इसे स्वीकार करने के लिए हमें जनता से कहने की जरूरत नहीं है। 14 वर्ष के बाद बच्चे आसानी से पढ़ सकते हैं, पाठ्य-पुस्तकों को बड़े पैमाने पर छपाना पड़ता है और पाठ्यपुस्तकें अच्छी और कम खर्चीली होनी चाहिए। इस स्तर पर रेडियो अत्यधिक प्रभावी है और इसका प्रयोग, अब तक किए गए प्रयोग की तुलना में, ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में, और अधिक किया जाना चाहिए। जहां दूरदर्शन (टेलीविजन) उपलब्ध हो, वहां इसका उपयोग किया जा सकता है, लेकिन समस्या इसके उपयोग में सुविज्ञता की है और विशिष्ट आयु-वर्गों के लिए संचारकों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। सम्पर्क-सत्रों के साथ, पत्राचार पाठ्यक्रमों की शुरूआत 16 वर्ष से पहले भी और उसके बाद तो अवश्य ही की जा सकती है। इस समय विद्यमान शिक्षा के नान-कालिजिएट कार्यक्रम का, ब्रिटेन में खुला विश्वविद्यालय के नाम से किए गए परीक्षण के आधार पर, विस्तार करने की जरूरत है। पुस्तकों और पुस्तिकाओं में इसका उल्लेख किया जा चुका है, बी० बी० सी० कार्यक्रमों पर इसके बारे में विचार-विमर्श, स्पष्टीकरण और पुनः स्पष्टीकरण किया गया है तथा यह विश्व के अनेक भागों में विकासशील सोसायटियों द्वारा अपनाए जाने के योग्य सिद्ध हुआ है। अपनी आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुसार योजना को अनुकूल बनाना आवश्यक है और इसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता है। पत्राचार पाठ्यक्रमों के हमारे अनुभव, रेडियो शिक्षण और टेलीविजन के सहयोग, स्कूल तथा कालेज दोनों स्तरों पर गैर-औपचारिक शिक्षा में विश्वविद्यालयीय विभागों के सहयोग से इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसी पद्धतियां व्यापक रूप से कारगर सिद्ध होंगी। सर्वप्रथम एक वर्ष तक सावधानीपूर्वक योजना तैयार करने की और फिर समन्वित विशेषज्ञों द्वारा तब तक सावधानीपूर्वक पाठ्यक्रम लिखने की आवश्यकता है जब तक कि भारत के प्रत्येक भाग में यह शिक्षा फैल न जाए। ब्रिटेन में इसके जो आश्चर्यजनक परिणाम निकले हैं उनसे यह सिद्ध हो गया है कि इसे कार्यान्वित किया जा सकता है। ब्रिटेन के उदाहरण में सुधार करने के रास्ते में कमी केवल हमारी पहलशक्ति और आत्मविश्वास की है। ● ● ●

स्कूल :
क्या हमें उनकी आवश्यकता है ?

— सी० शेषाद्रि

ऐसा प्रश्न पूछना यदि पूर्णतः नासमझी नहीं तो क्या यह धृष्टता नहीं है ? कोई भी व्यक्ति टोक सकता है । क्योंकि, प्राचीन काल से ही स्कूलों को समाज की एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण औपचारिक संस्था समझा जाता रहा है, जिन्हें समाज की सांस्कृतिक परम्परा को सुरक्षित रखने तथा उसके सम्प्रेषण का एक कठिन कार्य सौंपा गया है । फिर भी, स्कूल सर्वत्र आक्षेप के लक्ष्य बने हुए हैं । स्कूलों के विरुद्ध कोप का एक प्रमाण बड़ी मात्रा में विवादात्मक साहित्य है, जिसका हाल ही के वर्षों में अम्बार लग गया है । 'स्कूल इज डैड', 'डी-स्कूलिंग आफ सोसायटी' . . . . जैसे कुछ शीर्षकों पर एक दृष्टि डालने से ही यह ज्ञात हो जाएगा कि लोगों में स्कूलों के प्रति कितनी कटुता है ।

स्कूलों के प्रति यह कोप क्यों ? स्कूलों के प्रति नाराजगी का एक नहीं बल्कि अनेक कारण हैं—शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक तथा दार्शनिक । स्कूलों के विरुद्ध मुख्य आरोप हैं :—

(1) ये जीवन में किसी व्यक्ति के सामाजिक तथा आर्थिक अवसरों को बेहतर नहीं बनाते ।

(2) ये समाज के असुविधाप्राप्त व्यक्तियों के हितों के विरुद्ध कार्य करते हैं ।

(3) ये शिक्षण की मांग के साथ सीखने की स्वाभाविक अभिरुचि को गुमराह करते हैं ।

जीवन में स्कूल शिक्षा की उपयोगिता

जहां तक पहले आरोप का संबंध है, आधुनिक शैक्षिक प्रणालियों की यह निर्विवाद मान्यता है कि किसी व्यक्ति का जीवन उसे प्राप्त स्कूली शिक्षा की मात्रा तथा कोटि से प्रभावित होता है । सामाजिक तथा व्यावसायिक प्रगति के प्रमुख साधन के रूप में शिक्षा की शक्ति में विश्वास के फलस्वरूप ही आज की समान शैक्षिक अवसरों की मांग पैदा हुई है । ऐसा विश्वास पुरातन है (मिश्र के पुराने शासन काल में प्राप्त शिलालेख में एक गुमनाम पिता अपने पुत्र को कठोर अध्ययन करने के लिए फटकारता है ताकि वह एक छोटा व्यक्ति बनने की बजाए, जो "मछली की तरह विषाक्त" तथा "सूअर की भांति पसीना बहाता है", "सम्माननीय लिपिक" बन सके) ।

हार्वर्ड के प्रोफेसर जेनेक्स ने अपनी बहु-चर्चित तथा सर्वाधिक विवादास्पद पुस्तक "इनइक्वैलिटी : ए रीअसैसमेंट आफ दी इफैक्ट आफ फेमिली एण्ड स्कूलिंग इन अमेरिका" में इस विश्वास को चुनौती दी है । जेनेक्स ने अपनी पुस्तक में यह तर्क दिया है कि स्कूल बच्चों में अल्पकालीन स्कूल उपलब्धि के स्तरों और शैक्षिक उपलब्धि के दीर्घकालीन स्तरों तथा प्रौढ़ आय को समान बनाने में असफल रहे हैं । जेनेक्स का मुख्य निष्कर्ष था कि व्यक्तिगत या पारिवारिक आय में अधिकांश विभिन्नताओं का कारण पारिवारिक पृष्ठभूमि में भिन्नताएं, आई० क्यू०, स्कूल शिक्षा तथा स्कूल शिक्षा की कोटि नहीं था ।

जेनेक्स के अनुसार इसका अर्थ होगा कि शैक्षिक अवसरों की समानता प्रौढ़ों को समान बनाने में ज्यादा कारगर नहीं होगी । चाहे स्कूलों का पुनर्गठन इस प्रकार से किया जाए कि उनका प्रथम उद्देश्य उन विद्यार्थियों की सहायता करना हो, जिन्हें सहायता की सर्वाधिक आवश्यकता है, तो यह मानने का कोई कारण नहीं है कि प्रौढ़ अधिक समानता की ओर अभिमुख होंगे । ऐसा क्यों? जेनेक्स ने इसके निम्नलिखित कारण बताए हैं :—

(1) बच्चे, स्कूलों की घटनाओं की अपेक्षा घर पर, गलियों में, टेलीविजन पर होने वाली घटनाओं से अधिक प्रभावित होते हैं।

(2) सुधारकों का, बच्चों को प्रभावित करनेवाले स्कूली जीवन के पहलुओं पर बहुत कम नियंत्रण होता है ।

(3) चाहे स्कूली जीवन का कुछ प्रभाव पड़े भी, तथापि परिणाम-स्वरुप परिवर्तनों के प्रौढ़ावस्था तक बने रहने की आशा नहीं है ।

इसलिए जेनेक्स यह निष्कर्ष निकालने के लिए बाध्य हो गया कि सामाजिक तथा आर्थिक प्रगति के साधन के रूप में स्कूलों का कोई औचित्य नहीं है ।

सी० शेषाद्रि

शिक्षा की किस्म के प्रति असंतोष

कुछ अन्य लोग बिलकुल ही भिन्न बात कहते हैं और वे स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा की किस्म से असंतुष्ट हैं। पारम्परिक रूप में, स्कूलों का कार्य, समाज के युवक सदस्यों को संस्कृति, ज्ञान, दक्षताएं, मूल्यों तथा व्यवहार प्रणालियों और समाज के अनुभवों की शिक्षा देना है। स्कूल यह कार्य अपनी "पाठ्यचर्या" के जरिए पूरा करते हैं, जो और कुछ नहीं बल्कि शिक्षण पाठ्यक्रमों, और 'पाठ्येतर' कार्य-कलापों इत्यादि के रूप में स्कूल द्वारा प्रदान किए जाने वाले अनुभवों का योग मात्र ही है। आंशिक रूप में ऐतिहासिक कारणों से (स्कूल मुख्यतः धनी तथा "सम्पन्न वर्ग" के हितों की सेवा के लिए शुरु किए गए) तथा अंशतः सामाजिक-राजनैतिक और आर्थिक कारणों से आजकल स्कूली पाठ्य-चर्या को मुख्यतः विशिष्ट और मध्यम वर्ग के लोगों के लिए समझा जाता है। आलोचकों का आरोप है कि यह कम सुविधाप्राप्त पृष्ठभूमीवाले बच्चों के लिए अनुपयुक्त है तथा उनके हितों के विरुद्ध काम करती हैं।

स्कूलों का मूल्य अनुस्थापन (बोली जाने वाली भाषा के बारे में) किस प्रकार अकुशल श्रमिक वर्ग के बच्चों के प्रतिकूल है इसका एक प्रमाण–सामाजिक शिक्षा में बासिल बर्नस्टीन की कृति है। बर्नस्टीन का कहना है कि सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप एक मध्यम वर्ग का बच्चा, जन भाषा (उसकी निकटतम परिस्थितियों की भाषा) तथा स्कूल की औपचारिक भाषा दोनों को समझने और उसमें चातुर्य प्राप्त करने में समर्थ होता है। निम्न श्रमिक वर्ग के बच्चे भिन्न परिस्थितियों के कारण वह केवल जन भाषा तक ही सीमित रहता है। इस प्रकार मध्यम वर्ग के बच्चे और निम्न श्रमिक वर्ग के बच्चे शिक्षण की भिन्न पद्धतियों की ओर उन्मुख होते हैं। इससे भी बुरी बात यह है कि स्कूल, जन भाषा के स्थान पर संकल्पना निर्माण, सूक्ष्म विचार तथा तर्कसंगत स्कूली उद्देश्यों के लिए उपयुक्त औपचारिक भाषा को प्रतिस्थापित करके, व्यक्ति को उसके पारम्परिक संबंधों से अलग-अलग कर देते हैं। आलोचकों का आरोप है कि इसी कारणवश श्रमिक वर्ग के बच्चे स्कूलों में आगे नहीं बढ़ पाते।

आलोचकों का कहना है कि शिक्षा को मध्यम वर्ग की भाषाई तथा बौद्धिक मूल्यों की उपलब्धि के साथ क्यों जोड़ा जाएं? स्कूल में सफलता का निर्णय, कार्य, समाज सेवा तथा शिल्प की बजाए छात्र के भाषा या गणित में अधिक अंकों के आधार पर क्यों किया जाए? मध्यम वर्ग के व्यवहार तथा मूल्यों के अनुकरण पर क्यों बल दिया जाए? तथा अंत में, आलोचकों का कहना है, कि ऐसे स्कूल ही क्यों रखे जाएं जो निर्धन लोगों के हितों के विरुद्ध हैं?

स्कूल, अध्ययन को हतोत्साहित करते हैं

परन्तु सबसे गम्भीर आरोप संभवतः यह है कि स्कूल, अध्ययन को ठोस रूप से प्रोत्साहित करने की बजायें शिक्षा को संस्थागत बनाकर उसे हतोत्साहित करते हैं। इस दशाब्दि के आरंभ में, समाज को 'स्कूल रहित' बनाने की आवाज उठी। 'स्कूल समाप्त करने वालों', विशेषकर ईवान इलिच का स्कूलों के विरोध में यह आक्रोश है कि स्कूल इस 'मिथ्या' कल्पना के आधार पर कार्य करते हैं कि अध्ययन, पाठ्यक्रम संबंधी शिक्षण का ही परिणाम है। इलिच के अनुसार, इसका प्रभाव, अवास्तविक बुनियादी आवश्यकताओं को वैज्ञानिक रूप से तैयार की गई वस्तुओं की मांग में बदलने की आधुनिक समाज की सामान्य प्रवृत्ति वाले स्कूलों पर पड़ता है। इलिच का तर्क है कि स्कूल एक "झूठी उपयोगिता" हैं। वे, मानव की प्रगति तथा अध्ययन की स्वाभाविक रुचि को शिक्षण की मांग में बदल देते हैं। "कृत्रिम परिपक्वता की मांग, निर्मित वस्तुओं की मांग की तुलना में स्वतः प्रेरित कार्य की कहीं अधिक अवहेलना है।" इलिच ने प्यासे मरुस्थल में कोका-कोला के विशाल विज्ञापन का उदाहरण दिया है। जिस प्रकार किसी पेय वस्तु की आवश्यकता कोकाकोला की मांग में बदल जाती है उसी प्रकार अध्ययन की आवश्यकता स्कूलों की मांग में बदल जाती है। स्कूल, अध्ययन के उद्देश्यों को भी दूषित कर देते हैं। इलिच के अनुसार, "बच्चों को स्कूल में शिक्षा देना, शिक्षण को अध्ययन की उलझन में डालना, ग्रेड प्रगति को शिक्षा से जोड़ना, डिप्लोमा को क्षमता से मिलाना तथा वाक्पटुता को कुछ नवीन बात कहने की योग्यता से ही मिलाना है"। "एक समान शैक्षिक अवसर, निःसंदेह एक वांछनीय उद्देश्य है, परन्तु इलिच का कहना है कि उसे अनिवार्य स्कल शिक्षा के साथ मिलाना मोक्ष को गिरजाधर के साथ भ्रम में डालना है।" इलिच के अनुसार, "आधुनिक मानव समाज के लिए अधिकारों के विधेयक का पहला अनुच्छेद", यह होगा कि "राज्य शिक्षा की स्थापना के संबंध में कानन नहीं बनायगा।"

यदि स्कूल, किसी व्यक्ति के जीवन को उन्नत नहीं बनाते, यदि वे कम सुविधा प्राप्त व्यक्तियों के हितों के विरूद्ध काम करते हैं, यदि वे मानव की स्वाभाविक अध्ययन रूचि को हतोत्साहित करते हैं तो उन्हें क्यों रखा जाए? जेनेक्स का कहना है की हम उन्हें अपना सकते हैं इस कारण नहीं की वे शिक्षा के बाद विद्यार्थियों के जीवन को बेहतर बनाते हैं, बल्कि इसलिए कि वे उनके जीवन को अब अच्छा बनाते हैं। स्कली शिक्षा के दीर्घकालीन प्रभावों के बजाय उनके अध्यापकों और विद्यार्थियों के जीवन पर पड़ने वाले तात्कालिक प्रभावों का मूल्यांकन करना अच्छा

[शेष पृष्ठ 12 पर]

उत्तम शिक्षा की ओर

—वी० निर्मला

प्रत्येक प्रकार की शिक्षा में शिक्षण और अध्ययन मुख्य कार्यकलाप हैं। शिक्षण के परिणामस्वरूप छात्रों से कुछ आचरणों की उम्मीद की जाती है और छात्र प्रत्येक कक्षा में कुछ आचरण सीखतें हैं। तब इस शिक्षण में क्या-क्या सम्मिलित है। इसके अन्तर्गत सीखने वालो के लिए परिस्थितियों का निर्माण करना है ताकि छात्रों को उनसे अपेक्षित आचरण सीखने में मदद मिल सके। तब, अध्यापक किस प्रकार परिस्थितियों का निर्माण करता है अथवा उनके निर्माण के लिए कौनसा सर्वोत्तम तरीका चुनता है ताकि अधिकतम अध्ययन सुनिश्चित किया जा सके। इसका उत्तर है कि अध्यापक को अपनी सहज-बुद्धि, पिछले अनुभव, जो सीखना है उसको रचनात्मक जानकारी तथा समुचित व्यावसायिक शिक्षा के माध्यम से प्राप्त कुछ क्षमताओं को मिलाकर उपयोग करना चाहिए।

कक्षाओं की परिस्थिति से निरंतर सम्पर्क रखने वाले अध्यापक को किसी भी समस्या का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण करने और सही ढंग से विश्लेषण करने और सही ढंग से समस्या का समाधान करने में समर्थ होना चाहिए। उसे यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि किया जाने वाला समाधान मनोवैज्ञानिक रूप से स्थिर और शैक्षिक दृष्टि से अधिक प्रभावी हो। यह तभी संभव हो सकता है जब कि अध्यापक में शिक्षण व्यवसाय के प्रति अधिक अभिरुचि हो और उसे मानवीय प्रकृति का बुनियादी ज्ञान हो। इस प्रकार यह तथ्य तो स्पष्ट है ही कि इस व्यवसाय विशेष के लिए अध्यापक अन्तरंग रूप से इसमें रुचि लें।

इसलिए अध्यापक के समुचित चयन और व्यवसाय की आवश्यकताओं और अध्यापक की क्षमताओं को भी ध्यान में रखते हुए अध्यापक को प्रशिक्षण प्रदान करना आवश्यक है।

शिक्षण व्यवसाय के विशिष्ट लक्षणों की आवश्यकताएं

किसी व्यावसायिक व्यक्ति का विशिष्ट लक्षण यह है कि वह अपना व्यवसाय चलाने के योग्य है और न कि वह केवल एक शिक्षित व्यक्ति है और कुछ दक्षताओं के माध्यम से अपना ज्ञान दूसरे तक पहुंचाने में समर्थ है। उसका व्यवसाय उससे कुछ दक्षताएं प्राप्त करने की अपेक्षा रखता है, जिसके उपयोग के लिए उसे समुचित ज्ञान की आवश्यकता है। "जिस प्रकार एक डाक्टर अपने रोगी की बीमारी का पता लगाने के लिए विज्ञान की कुछ शाखाओं का ज्ञान प्राप्त करता है और समुचित दवाई निर्धारित करता है" उसी प्रकार अध्यापक द्वारा प्राप्त किया गया व्यावसायिक ज्ञान कुछ क्षमताओं के माध्यम से युवा पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाना चाहिए।

शिक्षण एक एसा व्यवसाय है जिसका सम्बन्ध छात्रों से है। माता-पिता अपने बच्चों को पढ़ाते हैं और उन्हें उनके दैनिक कार्य को पूरा करने में मदद देते हैं। बच्चे अपने साथियों से भी सीखते हैं। परन्तु वे शिक्षण व्यवसाय के सदस्य नहीं होते। इस प्रकार शिक्षण व्यवसाय एक विशिष्ट व्यवसाय है जिसमें अध्ययन एक व्यवसाय बन जाता है।

अध्यापक एक शिक्षित व्यक्ति है। जिसका अध्ययन एक व्यवस्थित ढंग से होता है। उसे इस व्यवस्थित ज्ञान को छात्रों तक व्यवस्थित ढंग से पहुचाने में सक्षम होना चाहिए।

व्यावसायिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण में अंतर

शिक्षण एक कला है। तथापि यह अनिवार्य है कि ज्ञान को हस्तांतरित करने के लिए जिन विभिन्न माध्यमों के उपयोग की आवश्यकता होती है। उनकी उस व्यक्ति को जानकारी होनी चाहिए। इसलिए इन माध्यमों के सम्बन्ध में भावी अध्यापकों को पर्याप्त जानकारी प्रदान करने का प्रश्न उठता है। शैक्षणिक किस्म के और व्यावसायिक किस्म के पाठ्यक्रमों में भेद है। यह भेद इस तरह से है कि "व्यावसायिक शिक्षा का सम्बन्ध कुछ क्षमताओं के सुविज्ञ स्वरूप अध्ययन की कुछ किस्मों से है।" उन सभी व्यक्तियों को शिक्षक कहने की आवश्यकता नहीं है जिन्होंने एक विशेष शैक्षणिक पाठ्यक्रम पूरा किया है क्योंकि वे कोई अन्य व्यवसाय चुन सकते हैं। जिसके लिए उसी प्रकार की शैक्षणिक योग्यता आवश्यक हो।

दूसरी ओर व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण के बीच भेद है। किसी विशेष क्षेत्र में प्रशिक्षण के अन्तर्गत, कुछ क्षमताओं का ज्ञान प्राप्त करना और व्यवसायकी 'जानकारी' प्राप्त करना सम्मिलित है। परन्तु व्यावसायिक शिक्षा का

एक व्यापक अर्थ है, जिसका 'प्रशिक्षण' एक अंग है। व्यवसाय की 'पृष्ठ जानकारी' शैक्षिक योग्यता द्वारा और 'व्यवसाय की जानकारी' प्रशिक्षण के माध्यम से प्राप्त की जाती है। इस प्रकार व्यावसायिक शिक्षा, शिक्षक को प्रशिक्षण के जरिए प्राप्त क्षमताओं के माध्यम से शक्षणिक पाठ्यक्रम की जानकारी को हस्तांतरित करने के योग्य बनाती है। इस प्रशिक्षण से अध्यापक को, परिस्थिति की मांग के अनुसार, इन क्षमताओं में फेर-बदल करने में मदद मिलता ही है। प्रशिक्षण से उसे साधनों की बुनियादी जानकारी प्राप्त होती है। जिनका उपयोग वह शिक्षण-अध्ययन स्थिति में कर सकता है। इस प्रकार "व्यावसायिक रूप से शिक्षित शिक्षक को व्यावहारिक क्षमताओं के महत्व की जानकारी होती है जिसका विकास करने में उसे अपने प्रशिक्षण, विशेष रूप से शिक्षण अभ्यास के दौरान प्रशिक्षण से मदद मिलती है। समग्र औपचारिक शिक्षा की प्रक्रिया में उसे व्यापक जानकारी मिलती है।"

व्यावसायिक व्यक्तित्व के रूप में शिक्षक

किसी अध्यापक का सबसे महत्वपूर्ण गुण यह है कि उसे मानव प्रकृति की समझ होनी चाहिए। शिक्षक के आचरण का छात्रों के अध्ययन पर प्रभाव पड़ता है। शिक्षक में अपने जीवन के लिए सिद्धान्त तय करने के वास्ते पर्याप्त मानसिक परिपक्वता होनी चाहिए। ये सिद्धान्त लचीले होने चाहिए। क्योंकि बच्चा घर की अपेक्षा अध्यापकों से सहज ही कुछ सीख लेता है इसलिए अध्यापक के व्यक्तित्व और अभिरुचि पर बहुत कुछ निर्भर करता है। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं।

कक्षा में पैदा होने वाली तात्कालिक समस्याओं के समाधान के लिए कल्पना शक्ति का उपयोग करने की योग्यता

अक्सर देखा गया है कि कक्षा में उठाई जाने वाली समस्या बड़ी आश्चर्यजनक होती है और उसके तत्काल समाधान की आवश्यकता होती है। अध्यापक में उस विशिष्ट समस्या का समाधान खोजने के लिए अपनी, कल्पनाशक्ति का प्रयोग करके ऐसी स्थिति से निबटने की योग्यता होनी चाहिए।

अधिकाधिक छात्र कार्यकलाप प्रेरित करने तथा उनकी उत्सुकता को दबाए बगैर प्रश्नों को पाठ्यचर्या तक ही सीमित रखने की योग्यता

शिक्षण में प्रयोग किए जाने वाले साधन तथा अन्य सामग्री कभी-कभी ऐसी होती है कि उससे बच्चे इतने प्रेरित हो जाते हैं कि वे प्रश्नों की झड़ी लगा देते हैं। जिनका उत्तर देना अध्यापक के लिए प्रायः कठिन हो जाता है। इन उत्सुक प्रश्नों के कारण अध्यापक को उस विषय की ओर गहराई में जाना पड़ता है और वे कभी-कभी उस पाठ्यचर्या से बाहर भी होते हैं जिसे अध्यापक को किसी समय विशेष के दौरान पूरा करना पड़ता है। अध्यापक को ऐसे बच्चों का पथ-प्रदर्शन करने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए और उसे यह देखना चाहिए कि बच्चे सह-पाठ्चर्या कार्यकलापों, जैसे वाद-विवाद, भाषण प्रतियोगिता में भाग लेते हैं जहां उन्हें उस विषय की ओर जानकारी प्राप्त हो सकती है। इस प्रक्रिया में उसे यह देखना चाहिए कि बच्चे की उत्सुकता और उत्साह में कमी न आए।

कक्षा पर नियंत्रण खोए बिना सभी छात्रों को समान रूप से सक्रिय बनाए रखने की योग्यता

अध्ययन तभी होता है जब कि कोई छात्र शिक्षण अध्ययन कार्यकलाप में सक्रिय रूप से भाग लें। इस प्रकार समुचित अध्ययन सुनिश्चित करने के लिए अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि वह यह देखें कि सभी छात्र इस कार्यकलाप में भाग लें। अक्सर यह देखा गया है कि औसत से ऊपर के छात्र सक्रिय होते हैं और कक्षा के कार्यकलापों में अपना प्रभुत्व बनाए रखते हैं। औसत तथा औसत से कम छात्र या तो उपेक्षा के कारण अथवा हीनभावना के कारण चुप रहना पसंद करते हैं। इसलिए अध्यापक को इन कार्यकलापों में सभी छात्रों का सहयोग प्राप्त करने की योग्यता होनी चाहिए।

कक्षा में अध्यापकों के सामने आने वाली आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षण पद्धति में परिवर्तन करने की योग्यता

शिक्षण अध्ययन प्रक्रिया में एक विशिष्ट प्रकार के अनेक कार्यकलाप शामिल है जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं:—

(1) अध्ययन कार्यकलाप निश्चित करना।
(2) पूर्व-अपेक्षाओं की समीक्षा करना।
(3) अध्ययन के लिए आवश्यकता प्रेरित करना।
(4) कार्य के लिए उदाहरण प्रस्तुत करना।
(5) प्रशिक्षण अध्ययन के लिए बहुसेवेदी साधनों की व्यवस्था।
(6) जो पढ़ाया गया है, उसे दोहराना और छात्र को पुनर्विलोकन करने का अवसर प्रदान करना।

शिक्षक-प्रशिक्षण की बेहतरी की दिशा में

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि शैक्षिक अनुभव में शिक्षा की तरह ही शिक्षक की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। शिक्षा को प्रभावित करने वाले सभी कारणों में निःसन्देह अध्यापक बहुत महत्वपूर्ण हैं। इसीलिए उसके प्रशिक्षण और शिक्षा पर ध्यान दिया जाना है।

प्रशिक्षार्थियों का चयन राष्ट्रीय स्तर पर किया जाना चाहिए

शिक्षक शिक्षा का स्तर सुधारने के लिए विभिन्न लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं। उनका चयन किस प्रकार किया जाए? किस प्रकार के मापदण्ड अपनाएं जाएं?

शिक्षक अभिरूचि जो मुख्यतः परिस्थिति के कारणों पर निर्भर करती है, का परीक्षण पारिस्थितिक परीक्षणों के जरिए किया जा सकता है। ये परीक्षण राष्ट्रीय शिक्षा, अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद द्वारा इस प्रकार तय किए जा सकते हैं कि वे सांख्यिकीय रूप से विश्वसनीय और वैध हों। किसी क्षेत्र विशेष के लिए प्रशिक्षण कालेजों के वास्ते अपेक्षित संख्या में उम्मीदवारों का चयन स्तर पर आयोजित इन परीक्षणों के माध्यम से किया जा सकता है। आई० ए० एस० और आई० आइ० टी० परीक्षाओं की तरह इन राष्ट्रीय स्तर की परीक्षाओं का आयोजन विभिन्न क्षेत्रीय शिक्षा कालेजों में राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद के पर्यवेक्षण में किया जा सकता है। यद्यपि इन परीक्षणों की विश्वसनीयता बहुत अधिक नहीं हो सकती फिर भी इन से हमारी आवश्यकताएं काफी सीमा तक पूरी हो सकती हैं। चुने गए अध्यापकों को उनकी इच्छा के अनुसार किसी भी प्रशिक्षण स्थान पर भेजा जा सकता है। ऐसे चयन से विभिन्न संस्थाओं को बेहतर और विश्वसनीय शिक्षक मिल सकेंगे। यह सच है कि जिन परिस्थितियों में ये अध्यापक कार्य करते हैं, वे भिन्न होती हैं, तथापि राष्ट्रीय शिक्षा, अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् द्वारा ऐसे अध्यापकों को समुचित मदद दिए जाने से, जिन्हें और मदद की आवश्यकता है, स्थिति काफी सीमा तक सुधर सकती है।

चुने हुए अध्यापकों को समुचित प्रेरणा दी जानी चाहिए

यह सूचित करना जरूरी है कि अध्यापकों को यह विश्वास दिलाकर कि इस व्यवसाय से उनके ज्ञान के भंडार को बढ़ाने में कितनी मदद मिल सकती है, उन्हें प्रेरित किया जाना चाहिए। उन्हें शैक्षिक मनोविज्ञान, शिक्षा का सिद्धान्त, स्कूल प्रशासन और संगठन जैसे विभिन्न विषयों का ज्ञान प्रदान करने की बजाये, वास्तविक स्कूल परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए एक अन्तर विषयक दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए— इन परिस्थितियों में यदि प्रशिक्षण के आरम्भ में नहीं तो कम से कम अन्त में अच्छी और बुरी, दोनों प्रकार की परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए।

शिक्षण कार्यकलाप की जटिलताओं का भावी अध्यापकों को ज्ञान कराया जाना चाहिए

शिक्षण प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें पर्यावरण के साथ अध्यापक और छात्र की अन्योन्य क्रिया शामिल है। छात्रों के व्यवहार में जिसे हम अध्ययन कहते हैं—वांछित परिवर्तन लाने के उद्देश्य से अध्यापक के लिए यह जरूरी है कि वह छात्रों और अपने बीच अन्योन्य क्रिया के प्रति सजग और सावधान रहे। उसके अन्तर्गत छात्रों में आए आचरण सम्बन्धी परिवर्तनों का समय समय पर मूल्यांकन भी किया जाना चाहिए।

इस प्रकार प्रशिक्षण अवधि के दौरान छात्रों और अध्यापकों को उस हानि के सम्बन्ध में जानकारी दी जानी चाहिए जो शिक्षण कार्यकलाप की जटिलता न समझने पर बच्चे के व्यक्तित्व के विकास में हो सकती है। उन्हें तकनीकी अभ्यास शिक्षण और वास्तविक स्कूल परिस्थितियों के अन्तर्गत शिक्षण के बीच विद्यमान भेदों की भी जानकारी दी जानी चाहिए। उन्हें एक विषय विशेष के शिक्षण की ग्रहणशील पद्धति और उन दृष्टिकोणों की भी जानकारी दी जानी चाहिए जिनके जरिए उस विषय का शिक्षण कार्य किया जा सकता है। वास्तविक स्कूल परिस्थितियों में शिक्षण की कमियों को ध्यान में रखते हुए सुधार सुझाए जाने चाहिए।

शिक्षकों को शिक्षा के क्षेत्र में हुए नवीनतम शोध कार्य की समय-समय पर जानकारी दी जानी चाहिए

अध्यापकों की व्यावसायिक प्रगति के लिए उनके लिए यह जरूरी है कि वे शैक्षणिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुए शोध कार्यों से अवगत रहें। इस प्रयोजन के लिए राष्ट्रीय शिक्षा, अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद द्वारा विभिन्न मान्यता प्राप्त स्कूलों की समय-समय पर क्षेत्रीय बैठकें आयोजित की जा सकती हैं। हमारे देश के अधिकांश अध्यापक शैक्षिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में विभिन्न खोजों से बेखबर रहते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा, अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् के अधिकारियों द्वारा व्याख्यानों के जरिए उन्हें समय-समय पर दी जानेवाली जानकारी से अध्यापकों को शिक्षण व्यवसाय के प्रति अपनी अभिरुचियों का निर्माण करने में और अपनी व्यावसायिक प्रगति में भी मदद मिल सकती है। हमारे देश में किए गए अधिकांश शोध कार्य पुस्तकालयों तक ही सीमित रह जाते हैं और वे अध्यापकों तक नहीं पहुंच पाते। इनका लाभ केवल कुछ उत्साही अध्यापक ही उठा पाते हैं, जो व्यावसायिक प्रगति में विश्वास करते हैं। इन शोध कार्यों की जानकारी से कुछ अध्यापकों को प्रेरणा मिल सकती है जो अपनी अभिरुचियों में परिवर्तन ला सकते हैं और उसके साथ-साथ अपने शिक्षण स्तर में सुधार कर सकते हैं। इससे नई शिक्षा प्रणाली की सफलता पर और प्रभाव पड़ेगा।

व्यवसाय बदलने से पहले कोई निश्चित सेवा-अवधि निर्धारित की जानी चाहिए

अक्सर देखा गया है कि बहुत कम प्रशिक्षित स्नातक और उत्तर-स्नातक अपने व्यवसाय में अधिक समय तक रुक पाते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी देखा गया है कि कुछ

लड़कियां, जो शिक्षकों की एक बड़ी संख्या है, इस व्यवसाय को अपनी शिक्षा के बाद और विवाह से पहले का एक कार्य समझकर अपनाती हैं। इस प्रक्रिया के दौरान उनका शिक्षण की उपेक्षा करना स्वाभाविक है और वे छात्रों पर पड़ने वाले इसके प्रतिकूल प्रभावों को सोचने में असमर्थ रहते हैं।

अतः यह आवश्यक है कि इस व्यवसाय में ऐसे व्यक्तियों के आने जाने को सीमित किया जाए। इस उद्देश्य से कि इस व्यवसाय में ऐसे लोग न आने पाएं, प्रत्येक प्रशिक्षित स्नातक अथवा उत्तर-स्नातक के लिए यह अनिवार्य होना चाहिए कि वह प्रशिक्षण पाने और इस व्यवसाय में आने के बाद कुछ विशिष्ट वर्षों तक इस व्यवसाय में रहेगा।

विभिन्न शिक्षाविदों द्वारा शिक्षण व्यवसाय के विकास और बेहतरी के लिए समय-समय पर अनेक सुझाव दिए गए हैं। किन्तु, फिर भी, कुछ ऐसे अपरिहार्य कारण हैं जिन्हें शीघ्र दूर नहीं किया जा सकता। इन कारणों के बावजूद शिक्षा मंत्रालय और राष्ट्रीय शिक्षा, अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद के प्रयासों से स्वतंत्रता के बाद अध्यापकों की कोटि और प्रशिक्षण के स्तर में सुधार हुआ है। राष्ट्रीय शिक्षा, अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद द्वारा आयोजित सेवाकालीन कार्यक्रमों तथा अन्य पुनर्नुस्थापन पाठ्यक्रमों से उम्मीद है कि शिक्षक शिक्षा के स्तर में और सुधार आयेगा।

● ● ●

[पृष्ठ 8 का शेष]

होगा। स्कूल एक परिवार की तरह है, न कि किसी फैक्टरी की तरह। किसी अन्य लक्ष्य का साधन होने की बजाये यह स्वयं एक लक्ष्य है।

स्कूल उसी सीमा तक न्यायसंगत ठहराये जा सकते हैं जबकि वे निर्धन सामाजार्थिक परिस्थितियोंवाले बच्चों के जीवन की वास्तविकताओं पर विचार करें और उनकी जरूरतों के अनुसार उन्हें शिक्षा दें। एक नीग्रो बच्चे को, "श्वेत संसार" में प्रवेश करने के लिए समान अवसरों की नहीं बल्कि एक "अनुकूल शिक्षा", अर्थात् एक ऐसी शिक्षा देने की आवश्यकता है जो छोटों में रहने वाले नीग्रो की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा कर सके। किसी जनजातीय बच्चे को एक ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो जनजातीय जीवन की वास्तविकताओं, रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं, से संबंधित हो, न कि उससे विदेशी संस्कृति में उनका बलात् प्रवेश हो। हम स्कूलों को अवश्य अपना सकते हैं यदि वे निर्धन-समाजार्थिक वर्गों के बच्चों को "संस्कृति से वंचित" समझना छोड़ दें और सभी संस्कृतियों को समान सम्मान दें।

स्कूल समाप्त करने वालों की यह जोरदार मांग है कि हमें उनकी बिल्कुल आवश्यकता नहीं है, ऐसे हमारे पास पर्याप्त है और अब समय है कि स्कूलों को समाप्त कर दिया जाए। क्या अब तक उन्होंने बहुत कम विनाश किया है? आओ, हम इस स्कूल पद्धति को समाप्त करें और स्कूलों द्वारा प्रसारित समाज और उसके मूल्यों के बारे में भ्रामक बातों की बजाये बच्चों को अपने जीवन की वास्तविकताओं का अनुभव प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र कर दें। हमें, "अध्ययन केन्द्रों" और कमप्यूटरों के "कार्यक्रम अवसरों", शिक्षण यंत्रों, विशेषज्ञों तथा अन्य अध्ययन संसाधनों का निर्माण करना चाहिए और व्यक्तियों को स्वाभाविक रूप से अध्ययन करने में मदद देनी चाहिए। हमें, "उत्सव संबंधी" शैक्षिक संस्थाओं का निर्माण करना चाहिए जिनका स्वाभाविक प्रयोग हो और "कृत्रिम" स्कूल जैसी संस्थाओं को बंद कर देना चाहिए। आओ हम एक स्कूल-विहीन समाज का निर्माण करें।

● ● ●

स्वतंत्रता के बाद भारत में माध्यमिक शिक्षा —एक पहलू

—सीता राम शर्मा

स्वतंत्र भारत की नई आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए, भारत में स्वतंत्रता के बाद, माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन किया गया । भारत में स्वतंत्रता के बाद सामाजिक परिवर्तनों के पीछे अनेक विवशताएं थीं । भारतीय स्वतंत्रता के बाद सबसे अधिक ऐतिहासिक आवश्यकता, उपनिवेशी अतीत की एक विरासत, इसके पिछड़े समाज को कम से कम समय में आधुनिक बनाना था ।

आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया को समाज के सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों, अर्थात् राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में शुरू करना तथा पूरा करना था । शीघ्र सामाजिक परिवर्तन के इस कार्य में सबसे अधिक विश्वास शिक्षा की शक्तियों पर रखा गया था । क्योंकि अद्यतन शिक्षा के लिए, आधुनिक औद्योगिक समाज के साथ सम्पर्क अपरिहार्य है । जैसाकि कौत्सकी ने कहा है कि "पारम्परिक एवं आधुनिक औद्योगिक समाज के बीच सम्पर्क का एक परिणाम सम्भवतः समाज के पहले वर्ग में बुद्धिजीवियों का विकास होगा । बुद्धिजीवी शब्द उन सभी व्यक्तियों के लिए प्रयोग किया जाता है जिन्होंने आधुनिक उच्च शिक्षा प्राप्त कर ली है अथवा जो ऐसी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं ।"[1] कौत्सकी ने आगे कहा है कि साम्यवादियों तथा गैर-साम्यवादियों, दोनों ने औद्योगीकृत देशों की राजनीति से आदर्शों का अनुकरण किया है और उनका उपयोग अर्धविकसित देशों की राजनीति में किया है ।[2]

सर्वव्यापी शिक्षा प्रदान करने हेतु प्राथमिक स्कूल शिक्षक तथा सरकारी संस्थानों एवं औद्योगिक स्थापनाओं के लिए मध्यवर्गीय कार्यकर्ता उपलब्ध करने के लिए माध्यमिक शिक्षा का विस्तार और पुनर्गठन नितान्त आवश्यक था । इसके अतिरिक्त, स्कूलों में दाखिल होने वाले अधिकांश छात्रों के लिए माध्यमिक शिक्षा को एक समापन बिन्दु समझा जाता था ।

भारत ने दूसरे विश्व युद्ध के अंत में अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की थी । और उस समय तक अमरीका ने विश्व की एक महान शक्ति का रुप धारण कर लिया था और विश्व की घटनाओं को काफी सीमा तक प्रभावित करना शुरू कर दिया था । भारत ने राजनैतिक आधुनिकीकरण के अपने प्रथम चरण में अधिकांशतः ब्रिटेन-अमरीकी पद्धति के आधार पर अपने आपको संसदीय प्रजातंत्र में बदलने का निर्णय किया था । इसी कारणवश प्रारंभ में भारतीय शिक्षा को अमरीकी पद्धति के आधार पर आधुनिक बनाने की दिशा में प्रयास किए गए । बाद में रूसी समाज भी एक विकसित समाज के रूप में उभर कर सामने आया और उसने भारतीय शिक्षा को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया । परन्तु, इस निबंध का संबंध, मुख्यतः स्वतंत्रता के बाद भारत में माध्यमिक शिक्षा पर अमरीकी प्रभाव से है ।

पृष्ठभूमि

मेरी धारणा है कि स्वतंत्रता के बाद भारतीय शिक्षा पर अमरीकी प्रभाव, राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक, सभी क्षेत्रों पर पड़ा । तथापि, मुख्यतः अमरीकी प्रभाव, राजनैतिक रहा है । इस प्रयोजन के लिए, द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद विश्व नेता के रुप में अमरीका की भूमिका के उदय का अध्ययन किया गया है ताकि बाद की अवधि में भारत-अमरीकी संबंधों पर उसके प्रभाव और भारतीय माध्यमिक शिक्षा पर पड़ने वाले उसके प्रभाव की जानकारी प्राप्त हो सके ।

केवल द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ही अमरीका विश्व नेता के रुप में उभर कर सामने आया है । 19वीं शताब्दी के दौरान अमरीका एकाकीपन की नीति का अनुसरण कर रहा था और विश्व की घटनाओं पर अपना प्रभाव जमाने की ओर ध्यान नहीं दे रहा था । इसका आंशिक कारण यह था कि अमरीका उस समय अपने आंतरिक सुदृढ़ीकरण के कार्य में व्यस्त था । तथापि, अमरीकी स्वतंत्रता-आंदोलन, उस अवधि के दौरान, उपनिवेशी शक्तियों से आजादी पाने के लिए समकालीन परतंत्र सोसायटियों पर काफी प्रभाव पड़ा । इस संबंध में रिचर्ड मोरिस ने ठीक ही कहा है कि "इस पुस्तक का यह तर्क है कि अमरीकी-आंदोलन का हमारे समय के लिए एक अर्थ और संदेश है ; न केवल राजनैतिक तथा संवैधानिक परिवर्तनों

1. जान एच कौत्सकी : दि पालिटीकल कन्सीक्यूएंसेज आफ माडर्नाइजेशन (न्यू यार्क : जान विलि एण्ड सन्स, 1972) पृष्ठ 79
2. —वही—(पृष्ठ-242)

के लिए—जिन पर इसका प्रभाव पड़ा—बल्कि अमरीकी सोसायटी का वह परिपूर्ण परिवर्तन जिसने सर्वत्र लोगों के जीवन को प्रभावित किया ।[3]

भारत के बारे में भी यही बात है क्योंकि भारत में 19वीं शताब्दी में, 1857, के आसपास स्वतंत्रता संघर्ष की शुरूआत हुई, जिसके परिणामस्वरूप 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन हुआ और जिसे अमरीकी स्वतंत्रता आंदोलन से प्रोत्साहन तथा प्रेरणा मिली थी । महात्मा गांधी—जिन्होंने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की सफलतापूर्वक अगवानी की थी—भी जन असहयोग के संबंध में थोरिओ के विचारों से काफी प्रभावित हुए थे । मोनरोए के सिद्धान्त के माध्यम से, अमरीका के नौजवान नव गणराज्य ने सन् 1845 में, संसार में अपने अस्तित्व का आभास कराया ।[4] इसी समय, भाग्य निर्माण का सिद्धान्त भी, अमरीकी विचारधारा पर अपना प्रभाव डाल रहा था । सिविल संघर्ष के उपरान्त, व्यापारी वर्ग ने अपना प्रभुत्व जमाना आरंभ कर दिया था और 1898 में फिलीपीन द्विपों पर कब्जा करके अमरीका वस्तुतः विश्व का एक साम्राज्यवादी देश बन गया था ।

20वीं शताब्दी के आरंभ में, अमरीका एक वाणिज्यिक शक्ति के रुप में विकसित हो गया था, और अपने आर्थिक हितों की रक्षा के लिए उसने कुछ कदम उठाए थे जो मुख्यतः सैनिक तथा राजनैतिक प्रकार के थे । शेष विश्व के साथ अपने संबंधों में उसकी नीति डालर-उन्मुख थी और इसे डालर-डिप्लोमेसी के नाम से पुकारा जाता था । बैले के अनुसार, अमरीका के हित, संबंधित शक्तियों के हितों के साथ जुड़ गए थे और उसने आर्थिक कारणों से ही प्रथम विश्व यु ्ध में ऐसी शक्तियों की सहायता भी की थी । अमरीकी सरकार, अमरीका की जनता के विरोध के कारण, लीग आफ नेशन्स—जो कि अमरीका के राष्ट्रपति, वुड्रो विलसन, के मस्तिष्क की एक उपज थी—में शामिल नहीं हुई थी ।

दूसरे विश्व युद्ध में अमरीका ने प्रारम्भ में अपने साथी/मित्र देशों को केवल युद्ध सामग्री मुहैय्या की और इंगलैण्ड से कुछ युद्ध स्थल (बेस) प्राप्त किए । परन्तु, जापान द्वारा पर्ल बंदरगाह पर आक्रमण करने के उपरान्त, यह देश युद्ध में लगे अन्य देशों का सक्रिय साथी बन गया, और जापानी नगरों पर परमाणु बम्ब के उपयोग से यह संसार में एक मात्र परमाणु शक्ति वाला देश बन गया । फरवरी 1945 में, माल्टा में, सारा विश्व, एक ओर तो अमरीका तथा इसके अन्य साथी देशों और दूसरी ओर सोवियत रूस के क्षेत्रों के बीच बट गया । दूसरे विश्व-युद्ध के बाद अमरीका ने एक विश्वनेता के रुप में अपनी भूमिका निभाई और एक सुविचारित विदेश नीति का अनुसरण किया । तथापि, भारत के स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने इसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद का ही एक अन्य स्वरुप बताया तथा अमरीका ने अपनी इस भूमिका को औचित्यपूर्ण ठहराने के लिए कुछ सैनिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक कार्रवाइयाँ भी की जिसका बाद में विश्व घटनाओं पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा ।

अमरीका के विश्व नेतृत्व की भूमिका उस देश की सुस्पष्ट विदेश नीति में प्रतिबिम्बित होती है जिसमें भारत सहित अन्य देशों के साथ, दूसरे विश्व युद्ध के बाद इसके व्यवहार की परिभाषा की गई । युद्धोपरान्त अमरीकी विदेश नीति की महत्वपूर्ण विशेषता उसका विश्वव्यापी मामलों में भाग लेना तथा साम्यवाद को नियंत्रित करना है । एशिया, अफ्रीका, लेटिन अमरीका के उभरते हुए नये देशों के लिए अमरीकी विदेश नीति के कुछ विशिष्ट लक्ष्य थे । इन देशों को साम्यवाद का शिकार होने से बचाने के लिए अमरीका ने भारत सहित, नये देशों के लिए अनेक सैनिक, आर्थिक, तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम शुरू किए। भारत, औपचारिक रुप से अमरीकी गुट तथा इसकी 'नाटो' तथा 'सीटो' जैसी सैनिक सन्धियों में शामिल नहीं हुआ, परन्तु इसे अमरीकी शस्त्र सहायता तथा प्रशिक्षण प्राप्त हुआ, जिससे निस्संदेह ही, इसे एक विशिष्ट सैनिक वर्ग तैयार करने तथा अमरीकी सांस्कृतिक प्रभाव आग्रात करने में अवश्य सहायता मिली । परंतु हमारा इस पहलू से अधिक संबंध नहीं है ।

अमरीका की विदेशी नीति का आर्थिक विस्तार

दूसरे विश्व युद्ध के बाद अमरीका ने आर्थिक सहायता देनी प्रारंभ की जिसे सामान्यतः विदेशी सहायता के नाम से जाना जाता था । भारत को भी अमरीका से यह सहायता पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हुई और क्योंकि अमरीकी राजनीति के माध्यम औपचारिक रुप में भारत में अपने कार्य नहीं कर सके इसलिए भारत को प्रभावित करने के लिए अमरीका द्वारा इस साधन का व्यापक रूप से प्रयोग किया गया । भारत को उसकी विदेशी सहायता का 56 प्रतिशत भाग केवल अमरीका से प्राप्त हुआ और भारतीय समाज का लगभग प्रत्येक क्षेत्र इस सहायता से प्रभावित हुआ । भारत को अमरीका से 7425 करोड़ रुपये की सहायता प्राप्त हुई और इस तरह भारत, अमरीका के विश्वव्यापी सहायता कार्यक्रमों का सबसे बड़ा भागीदार बन गया ।

अमरीकी विदेश नीति के सांस्कृतिक पहलू

अमरीकी विदेश नीति के राजनैतिक, सैनिक और आर्थिक पहलुओं के अतिरिक्त, उस अवधि में इसके सांस्कृतिक पहलू भी बहुत महत्वपूर्ण थे । इस नीति का मुख्य उद्देश्य, जनसाधारण

3. रिचर्ड बी० मोरिस : दि एमरजिंग नेशन्स एंड दि अमेरिकन रिवाल्यशन । (नई दिल्ली : इयूरेसिया पब्लिशिंग हाउस (प्र) लि० 1974) पृ० IX

4. थामस ए० बेयली : ए डिप्लोमेटिक हीस्ट्री आफ अमेरिकन पीपल, पृष्ठ 59

को, अमरीका के विश्व-लक्ष्यों तथा उसके प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों की जानकारी प्रदान करना, तथा विदेशों में अमरीका की बेहतर तसवीर प्रस्तुत करना था। अमरीकी विदेश नीति का सांस्कृतिक पहलू, तकनीकी सहायता एवं आदान-प्रदान कार्यक्रमों के रूप में उभर कर सामने आया।

इस प्रकार अमरीकी विदेश नीति का उद्देश्य भारत को, सैनिक सन्धियों द्वारा या राजनयिक तरीकों द्वारा मिलाकर राजनीतिक दृष्टि से प्रभावित करना था। क्योंकि भारत किसी सैनिक संधि में शामिल नहीं हुआ, इसलिए देश में लोकतांत्रिक पद्धति की सरकार के रूप राजनैतिक घनिष्ठता ने भारत को अमरीका के प्रभाव क्षेत्र में रखा। जो लक्ष्य राजनैतिक तथा आर्थिक माध्यमों से प्राप्त न हो सके उन्हें सांस्कृतिक माध्यमों के द्वारा प्राप्त करने के प्रयत्न किए गए। इस निबंध में यह तर्क दिया गया है कि भारत में स्वतंत्रता के बाद माध्यमिक शिक्षा पर अमरीकी प्रभाव राजनीतिक, सैनिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में पूर्णतः पड़ा। दूसरे विश्व-युद्ध के उपरान्त अमरीका के राजनीतिक हित बहुत ही महत्वपूर्ण बन गए और शिक्षा को अमरीकी राजनैतिक हितों की पूर्ति का एक साधन समझा गया। अमरीका के आर्थिक हितों की पूर्ति भी राजनैतिक हितों द्वारा की जाती थी और इसलिए शिक्षा इन उद्देश्यों की पूर्ति का एक प्रभावी साधन बन गया। भारत में अमरीकी राजनैतिक तथा आर्थिक अन्योन्य क्रिया के बाद सांस्कृतिक प्रभाव भी बढ़ने लगा और सांस्कृतिक नीतियों का उद्देश्य राजनैतिक तथा आर्थिक हितों की पूर्ति करना भी बन गया।

दूसरी ओर, भारत में राजनैतिक तथा आर्थिक आधुनिकीकरण की आवश्यकताओं के कारण भारत को उपरोक्त प्रयोजनों हेतु, शिक्षा की क्षमताओं का उपयोग जरुरी हो गया और भारतीय शिक्षा पर अमरीकी प्रभाव भारत में स्वतंत्रता के बाद एक वास्तविकता बन गया। अब हम भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् माध्यमिक शिक्षा पर वास्तविक अमरीकी प्रभाव की जांच करेंगे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के आधार पर किया गया था। इस आयोग की नियुक्ति सुविख्यात शिक्षाशास्त्री डा० ए० एल० मुदलियर की अध्यक्षता में भारत सरकार द्वारा सन् 1952 में की गई थी। एटलांटा, अमरीका में दक्षिण क्षेत्रीय शिक्षा बोर्ड, के सह-निदेशक डा० केनेथ रास्ट विलियम्स आयोग की सिफारिशें तैयार करने से संबद्ध थे तथा उनके सुविज्ञ मार्गदर्शन ने आयोग की विचारधारा को प्रभावित करने में प्रमुख भूमिका निभाई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में माध्यमिक शिक्षा पर अमरीकी प्रभाव, माध्यमिक शिक्षा आयोग की रिपोर्ट, माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों, आयोजन और परीक्षाओं जसे विविध पक्षों में, परिलक्षित है। कार्यान्वित की गई कुछ सिफारिशों का पंचवर्षीय योजनाओं से पता चलता है।

सिफारिशों की बारीकी से जांच करने पर पता चलता है कि भारत में माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों और कार्यों को निर्धारित करते समय आयोग अमरीकी उदाहरणों से पर्याप्त रूप से प्रभावित हुआ था। आयोग ने, शिक्षा के मुख्य उद्देश्य के रूप में प्रजातांत्रिक नागरिकता के विकास की सिफारिश की है। यह मात्र मत देने की ही उपलब्धि नहीं है बल्कि स्वतंत्र राजनीतिक निर्णय की भी उपलब्धि है। शिक्षा के इस उद्देश्य का अमरीका में माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों के साथ परस्पर संबंध है जहां नागरिकता के लिए शिक्षा, शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है और भारतीय विचारधारा पर अमरीकी प्रभाव प्रतीत होता है।

आयोग ने माध्यमिक स्कूलों में व्यावसायिक कार्यकुशलता में सुधार को समुचित महत्व दिया और छात्रों की उत्पादक अथवा तकनीकी और व्यावसायिक कार्यकुशलता को बढ़ाने की आवश्यकता पर बल दिया है। माध्यमिक शिक्षा के इस व्यावसायिक कार्य ने अपनी शक्ति अपने अमरीकी प्रतिपक्ष से प्राप्त की है। इसका सीधा संबंध शिक्षा के अमरीकी उद्देश्यों से है, जिस शिक्षा का उद्देश्य जीविका प्राप्त करना है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में माध्यमिक स्तर पर विविध पाठ्यक्रम प्रारंभ करने पर उस विस्तृत अमरीकी उच्च स्कूल का प्रभाव है जहां विविध पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जाती है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने, शिक्षा के एक उद्देश्य के रूप में छात्र के व्यक्तित्व के विकास पर बल दिया था। आयोग का कहना है कि माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य, छात्रों के व्यक्तित्व का और अधिक विकास करने के लिए छात्रों की सौंदर्यपरक और नैतिक आवश्यकताओं को पूरा करना होना चाहिए। आयोग द्वारा सुझाए गए शिक्षा के इस कार्य का भी अमरीकी कार्य, संस्कृति के लिए शिक्षा से सीधा संबंध है। वस्तुतः, अमरीकियों ने इस कार्य पर अत्यधिक बल दिया था क्योंकि वे विविध सोसायटी को एक नई सोसाइटी में बदलना आवश्यक समझते थे और स्वतंत्रता के बाद की अवधि में भारतीय सोसायटी को इसी प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा था।

आयोग ने सिफारिश की थी कि भारत में माध्यमिक शिक्षा का कार्य छात्रों को नेतृत्व प्रदान करना था। आयोग के अनुसार, माध्यमिक शिक्षा अपने आप में एक पूर्ण इकाई होनी चाहिए, न कि विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने का एकमात्र साधन। माध्यमिक शिक्षा के बाद अधिकांश छात्रों से स्वतंत्र रोजगार प्राप्त करने तथा जीवन में प्रवेश करने की अपेक्षा की जाएगी। उन्हें इस योग्य होना चाहिए की जीवन के जिस क्षेत्र में भी वे प्रवेश करें उसमें व नेतृत्व प्रदान कर सकें। सभी क्षेत्रों में नेतृत्व प्रदान करना स्वतंत्र भारत की सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकताओं

में से एक थी और माध्यमिक शिक्षा को इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी थी। अमरीकी माध्यमिक शिक्षा की यह प्रमुख विशेषता थी जिसका लोकतांत्रिक प्रणालियों के साथ निकट का संबंध है। इस क्षेत्र में भी भारतीय माध्यमिक शिक्षा अमरीकी विचारधारा और पद्धतियों से प्रभावित हुई थी। देखा गया है कि माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों और कार्यों के क्षेत्र में भी, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय शिक्षा, अमरीकी माध्यमिक शिक्षा से काफी प्रभावित हुई है।

माध्यमिक शिक्षा का संगठन

ऐसा प्रतीत होता है कि माध्यमिक शिक्षा की नई संगठनात्मक पद्धति भी, जिसकी सिफारिश आयोग ने की थी, अमरीकी शिक्षा से काफी सीमा तक प्रभावित हुई है। आयोग ने माध्यमिक शिक्षा की अवधि में वृद्धि करने की सिफारिश की थी, जब उसने कहा कि "हमारी सिफारिश के संदर्भ में जिस एक महत्वपूर्ण विषय को स्पष्ट करने की जरूरत है वह यह है कि माध्यमिक शिक्षा की अवधि के अंतर्गत 11 से 17 आयु वर्ग को शामिल किया जाना चाहिए।"[5] बाद की पंच वर्षीय योजनाओं में स्कूल शिक्षा की अवधि में वृद्धि की गई और यह वृद्धि 12 वर्षीय अमरीकी माध्यमिक शिक्षा के अनुकूल थी। माध्यमिक शिक्षा की अवधि बढ़ाने की इस क्षेत्र में अमरीकी शक्षिक विचारधारा ने सम्भवतः भारतीय विचारधारा को प्रभावित किया। आयोग द्वारा दिए गए सुझावों के आधार पर, माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन और सुधार, स्वतंत्र भारत की उत्तरोत्तर पंच वर्षीय योजनाओं के दौरान जारी रहा। माध्यमिक शिक्षा में सुधार हेतु शैक्षिक और व्यावसायिक मार्गदर्शन की संकल्पना पूर्ण रूप से अमरीकी पद्धति के आधार पर अपना ी गई थी।

आयोग ने, माध्यमिक शिक्षा पाठ्यक्रमों के विविधिकरण की सिफारिश की थी तथा छात्रों की रुचि और अभिवृत्तियों के अनुसार उनके लिए इन पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करने हेतु आयोग ने बहुद्देश्यीय स्कूल खोलने का सुझाव दिया था। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, व्यापक हाई स्कूल की विशिष्ट अमरीकी पद्धति के फलस्वरूप बहुद्देश्यीय स्कूल खोलने की सिफारिश की गई थी। द्वितीय पंच वर्षीय योजना के अंत तक लगभग 2,115 बहुद्देश्यीय स्कूल खोले गए थे।

कृषि शिक्षा

आयोग द्वारा माध्यमिक स्तर पर कृषि शिक्षा को शामिल करने की सिफारिश अमरीकी पद्धति के आधार पर की गई थी। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि भारत की 75 % जनसंख्या खेती पर निर्भर करती है। माध्यमिक स्कूल पाठ्यचर्या में इसे शामिल करना आवश्यक और समयोचित समझा गया। आयोग ने मार्गदर्शन हेतु अमरीकी परिस्थितियों का उल्लेख किया था। आयोग ने इस विषय पर डा० के० आर० विलियम्स द्वारा प्रस्तुत की गई एक टिप्पणी संलग्न की थी। स्कूलों को आत्म-निर्भर बनाने के लिए इसमें बागवानी और पशु-पालन के साथ-साथ कृषि अध्यापन के संबंध में अमरीकी पद्धति पर काफी बल दिया था।

तकनीकी शिक्षा की परम्पराएं ब्रिटिश द्वारा पहले ही स्थापित की जा चुकी थी लेकिन यह निःसंदेह सच है कि तकनीकी शिक्षा का पुनर्गठन और माध्यमिक शिक्षा पाठ्यचर्या में इसे शामिल किया जाना मुख्यतः अमरीकी प्रभाव के कारण था।

माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी को बनाए रखने के निर्णय से अमरीकी पद्धतियों, मूल्यों और मनोवृत्तियों का समावेश सरल बन गया है। भाषाई सुविधा के कारण अमरीकी विश्वविद्यालयों और भारत सरकार, दोनों के प्रयासों द्वारा अमरीकी साहित्य उपलब्ध किया गया, जिन्होंने पी-एल० 480 निधियों का उपयोग करते हुए, माध्यमिक तथा अन्य स्तरों के लिए सभी विषयों में अमरीकी पुस्तकों के आयात की अनुमति दी थी स्वतंत्रता के प्रथम पंद्रह वर्षों में अधिकतर अमरीकी पुस्तकों का ही आयात किया गया था जिसका, इस लेख के लेखक के विचार में भारतीय माध्यमिक स्कूल शिक्षण और इसकी प्रणालियों पर प्रमुख प्रभाव पड़ा। इसने पुनर्गठन संबंधी कार्यों में प्रशासकों और अध्यापकों की विचारधारा को प्रभावित किया। इसने आदान-प्रदान कार्यक्रम में भी सहायता की जिसके अंतर्गत भारतीय संस्थाओं में अमरीकी विशेषज्ञों ने कार्य किया और भारतीयों ने अमरीकी संस्थाओं में उच्च शिक्षा और प्रशिक्षण प्राप्त किया।

पाठ्यचर्या सुधार और प्रणाली विज्ञान

पाठ्यचर्या अनुसंधान के मामलों में आयोग ने इस क्षेत्र में अमरीकी अनुभव का विशेष रुप से उल्लेख किया था। आयोग ने, माध्यमिक शिक्षा को देश की भावी औद्योगिक अर्थव्यवस्था के अनुकूल बनाने की इच्छा व्यक्त की थी। पाठ्यचर्या तैयार करने के सम्बंध में आयोग द्वारा बनाए गए सिद्धांत मुख्यतः अमरीका से लिए गए थे। आयोग ने अवर माध्यमिक स्तर पर समाज-अध्ययन, सामान्य विज्ञान, कला और संगीत तथा दस्तकारी और शारीरिक शिक्षा को शामिल करने की शिफारिश मुख्यतः अमरीकी प्रणाली के अनुसार ही की थीं। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर समाज-अध्ययन, सामान्य विज्ञान, कृषि वर्ग, ललित कलाएं और गृह-विज्ञान को शामिल करने का श्रेय भी अमरीकी प्रभाव को दिया जा सकता है। समाज-अध्ययन की संकल्पना अमरीकी शिक्षा की एक अनुपम देन है। अमरीकी प्रणाली के अनुसार इसी प्रकार का अन्य मेल सामान्य विज्ञान का था।

अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् का गठन 1955 में देश की माध्यमिक शिक्षा की प्रगति का पुनरीक्षण

[5] माध्यमिक शिक्षा आयोग पृ० 25

करने और माध्यमिक शिक्षा के सुधार और प्रसार के बारे में राज्यों तथा केन्द्र को परामर्श देने तथा माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं के संबंध में अनुसंधान को प्रोत्साहन देने के लिए किया गया था । यह उल्लेखनीय है कि अमरीकी धन और विशेषज्ञता के रूप में तकनीकी सहायता ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी । इस प्रकार, माध्यमिक शिक्षा पर अमरीकी प्रभाव, परिषद् के माध्यम से आया । निदेशालय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यक्रम, देश में 54 चुने हुए प्रशिक्षण कालेजों में विस्तार सेवा विभागों की स्थापना करना था । निदेशालय ने सेवारत अध्यापकों के लिए सेमिनारों, कार्यशालाओं और पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों को व्यवस्था की और इस कार्यक्रम के माध्यम से शिक्षा प्रणालियों में सुधार करने का प्रयास किया । यह कार्यक्रम, अमरीकी अनुदानों और विशेषज्ञों की सहायता से कार्यान्वित किया गया था तथा इसका भारतीय माध्यमिक स्कूल शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ा । 'कार्य प्रणाली' और 'परियोजना प्रणाली' नामक शिक्षण पद्धति अपनाई गई थी जो बिल्कुल अमरीकी थी । आयोग ने माध्यमिक स्कूलों में मार्गदर्शन और परामर्श को मुख्यतः अमरीका की प्रेरणा पर शामिल करने की सिफारिश की थी । आयोग ने, अमरीकी स्कूलों की भांति ही, माध्यमिक शिक्षा पाठ्यक्रमों में स्वास्थ्य शिक्षा को शामिल करने की भी सिफारिश की थी ।

परीक्षा सुधार

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने अमरीका में प्रचलित प्रणाली के आधार पर परीक्षा तथा मूल्यांकन पद्धति में सुधार करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण सिफारिशें की थीं । आयोग ने अनुभव किया कि परीक्षा व्यक्तित्व और बौद्धिक विकास के केवल एक भाग का ही मूल्यांकन करती थी और वह भी अधिक आत्मपरक था । बच्चे के व्यक्तित्व के अन्य पक्षों, उसके सामाजिक और भावात्मक तथा नैतिक विकासों का मूल्यांकन नहीं किया जाता था । आयोग ने लिखित परीक्षाओं के साथ-साथ पांच-सूत्री श्रेणी मापदण्ड का सुझाव दिया था । मूल्यांकन के लिए पांच सूत्री मापदण्ड और संचित रिकार्डों की पद्धति मुख्यतः अमरीका से ली गई थी । इन सिफारिशों के अलावा, शिकागो विश्वविद्यालय में परीक्षक बोर्ड के प्रधान तथा परीक्षाओं के सम्बन्ध में एक मान्यता-प्राप्त प्राधिकारी डा० बेंजामिन एस० ब्लूम के मार्गदर्शन में परीक्षा सुधार का एक दीर्घकालीन कार्यक्रम तयार किया गया था । परीक्षा सुधार एकक ने भारत में माध्यमिक शिक्षा के इतिहास में अमरीकी सहायता से एक महत्वपूर्ण प्रयास किया । तथापि, यह कहा जा सकता है कि नेतृत्व प्रशिक्षण अथवा इस क्षेत्र में विशेषज्ञ तैयार करना एकमात्र अमरीकी योगदान है ।

शैक्षिक प्रशासन

प्रजातांत्रिक प्रशासन की संकल्पना भी अमरीकी है । पर्यवेक्षण और प्रशासन के लोकतंत्रीयकरण के विचार, जान देवे तथा अन्य अमरीकी शिक्षा-विचारकों से लिए गए थे और उनसे भारत में शैक्षिक प्रशासकों और पर्यवेक्षकों के विचारों को बदलने में सहायता प्राप्त हुई । इस प्रभाव के परिणामस्वरूप, स्नातकोत्तर स्तर पर शैक्षिक प्रशासन को एक विषय के रूप में स्थान मिला । प्रजातांत्रिक पर्यवेक्षण के सिद्धान्त अमरीकी पुस्तकों से लिए गए थे । आयोग ने शैक्षिक प्रशासन के लोकतंत्रीयकरण पर बल दिया था तथा इसमें अध्यापकों, छात्रों और अभिभावकों को शामिल करने की सिफारिश की थी ।

शैक्षिक वित्त-व्यवस्था

स्वतंत्रता-प्राप्ति से भारत सरकार तथा राज्य सरकारों की शैक्षिक सुविधाओं के विस्तार की जिम्मेदारी बढ़ गई, लेकिन शैक्षिक वित्त के लिए केन्द्र व राज्य की जिम्मेदारी की संकल्पना को अधिक स्पष्ट शब्दों में समझा जाने लगा । शिक्षा, अभी हाल ही तक, राज्य का विषय था, तथापि, केन्द्रीय सरकार ने समन्वय, पर्यवक्षण और सहायता द्वारा माध्यमिक शिक्षा के प्रसार में राज्यों को सहायता देने की जिम्मेदारी अपने हाथ में ली । अमरीकी प्रभाव के परिणामस्वरूप शैक्षिक वित्त की एक निश्चित संकल्पना प्रकट हुई । फोर्ड प्रतिष्ठान और ब्रिटिश काउन्सिल के सहयोग से हैदराबाद में एक केन्द्रीय अंग्रेजी संस्थान की स्थापना की गई । अंग्रजी भाषा ने अमरीकी प्रभाव को बढ़ाने में काफी सुविधा प्रदान की । शिक्षा और अन्य विषयों में अमरीकी साहित्य, अध्यापकों और आम जनता को उपलब्ध था और भारत में शैक्षिक विचारधारा पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि भाषाई कठिनाई के कारण रुसी, फ्रेंच अथवा जर्मन जैसा अन्य भाषाओं में साहित्य अध्यापकों को सुलभ नहीं था, यह अनुमान महत्वपूर्ण है ।

अब यह स्पष्ट है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में माध्यमिक शिक्षा पर अमरीकी प्रभाव सर्वांगीण था और परिणामस्वरूप इसका प्रभाव इसके सभी क्षेत्रों पर पड़ा ।

● ● ●

परिवर्तनशील जगत में शिक्षा —विस्तार की समस्या

—अशोक सेन

जनसंख्या में वृद्धि

सभ्यता के इतिहास में आज जनसंख्या में वृद्धि सम्भवतः एक अत्यंत विकट समस्या बन गई है जिससे समाज की जड़ें ही हिल उठी हैं। इससे न केवल हमारा जीवन ही अस्त-व्यस्त हो गया है बल्कि हमारे दृष्टिकोणों और मान्यताओं को भी नया आयाम मिला है। समस्याओं की विशालता को आंकने के लिए हमारे मापदण्ड अत्यधिक सरल रहे हैं और शिक्षा भी, जो मुख्य रूप में एक मानव समस्या है, जनशक्ति की इस चुनौती से बच नहीं सकती।

इस समय विश्व की जनसंख्या 4 अरब के लगभग है जो शताब्दी के अंत तक बढ़कर सम्भवतः 7 अरब तक हो जाएगी। यदि उचित साधन न अपनाए गए तो यह संख्या बढ़कर 10 अरब अथवा इससे भी अधिक तक पहुंच सकती है।

दक्षिण एशिया की जनसंख्या, जो लगभग 85 करोड़ है, प्रत्येक वर्ष लगभग 2.5 प्रतिशत अर्थात् 45 प्रति हजार की जन्मदर से बढ़ रही है। यह, आगामी 20 वर्षों में, इस समय की तुलना में, दो गुनी हो सकती है। यह स्थिति काफी भयंकर है। अब प्रश्न यह है कि लाखों की संख्या में बढ़ रही इस जनसंख्या के लिए निकट भविष्य में भी रोटी, कपड़ा और शिक्षा का किस प्रकार प्रबंध किया जाए।

दाखिले में वृद्धि

जनसंख्या में वृद्धि का स्पष्ट अर्थ है छात्रों की संख्या में वृद्धि। अतः हमें इस बढ़ोतरी को ध्यान में रखते हुए ही भारतीय शिक्षा पर विचार करना है। 1947 की तुलना में अब विश्वविद्यालयों की संख्या 16 से बढ़कर 120, डिग्री कालेजों की संख्या 500 से बढ़कर 4,500, उच्च/उच्चतर माध्यमिक स्कूलों की संख्या 4,000 से बढ़कर 45,000, इंजीनियरी तथा तकनीकी कालेजों की संख्या 38 से बढ़कर 141 और पालिटैक्निकों की संख्या 53 से बढ़कर 291 हो गई है। कुल मिलाकर संस्थाओं की संख्या 2 लाख से बढ़कर 7 लाख हो गई है और उनमें दाखिले की संख्या 1 करोड़ 50 लाख से बढ़कर 10 करोड़ हो गई है।

खर्चीली

प्रत्यक्षतः, सम्पूर्ण राष्ट्र को ध्यान में रखते हुए, क्योंकि आजादी के बाद से खर्च हुए धन की दृष्टि से, शिक्षा नीति का झुकाव सामान्यतः उच्च शिक्षा की ओर और विशेषरूप से विश्वविद्यालयीन शिक्षा की ओर बहुत ज्यादा रहा है जबकि निचले स्तर पर शिक्षा की अवहेलना की गई है। घटिया दर्जे के विश्वविद्यालय देश के कोने कोने में स्थापित हो गए हैं। इनमें से अधिकांश पुराने किस्म के लघु विश्वविद्यालय हैं जो शिक्षा की नवीन प्रवृत्तियों की तरफ ध्यान ही नहीं देते हैं।

विरोधाभास

यद्यपि, संविधान के निर्देशों के अनुसार, प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था अनिवार्य तथा निःशुल्क रूप से की जानी चाहिए परन्तु वास्तविक स्थिति इसके विपरीत ही है : "भारत में जनसंख्या में वृद्धि से, हालांकि वार्षिक साक्षरता की दर में सुधार हुआ है किन्तु जनसंख्या के अनुसार अब निरक्षरों की संख्या पहले से कहीं अधिक है। 1947 और 1971 के बीच साक्षरता की प्रतिशतता 14 से बढ़कर 29 हो गई, अर्थात् लगभग 5.8% की वृद्धि हुई, यह तब हुआ जबकि जनसंख्या में वृद्धि की दर 2% प्रतिवर्ष से अधिक है।" समस्त परिस्थिति की विडम्बना यह है कि अब हमारे देश में 23 करोड़ व्यक्ति निरक्षर हैं जोकि दुनिया के कुल निरक्षरों का आधे से अधिक है।

योजनाबद्ध विचलन

निचले स्तर पर ध्यान दिए बिना शिक्षा के उच्च स्तर पर मात्रात्मक विस्तार से भारतीय शिक्षा की अवांछनीय स्थिति बड़ी अजीब बन गई है। हम बेरोजगारी को दूर करने के लिए शिक्षा की योजना तैयार करते हैं किंतु आधे से अधिक लोग, जो कमजोर वर्गों के होते हैं निरक्षर रह जाते हैं। किसी शिक्षाशास्त्री ने यह ठीक ही कहा है "योजनाबद्ध विचलन के कारण ही भारतीय विश्वविद्यालय इस बात का श्रेय ले लेते है कि उन्होंने प्रत्येक संकाय में बड़े पैमाने पर निरक्षर स्नातक

...दा किए हैं।" इस प्रकार हमारे यहां संख्या की दृष्टि से दाखिले की संख्या में तो वृद्धि हुई है परन्तु शिक्षा की किस्म और विषयवस्तु में कोई सुधार नहीं हुआ है। युवा छात्र कालेजों में केवल इसलिए दाखिला लेते हैं कि उनके पास इसके अलावा कोई अन्य कार्य नहीं होता और उनके विचार से रोजगार पाने का यही एक सबसे अच्छा साधन होता है। इससे यह पता चलता है कि भारतीय शिक्षा एकदम असंगत और केवल रोजगार के लिए ही क्यों है। केवल इस समय ही पर्याप्त रोजगार नहीं हैं। वास्तव में, इस प्रकार की घिसीपिटी शिक्षा से रोजगार के क्षेत्र में उन्हें कोई लाभ नहीं होता है और न ही मांग और आपूर्ति में कोई तालमेल बैठता है। इसके अतिरिक्त, दाखिले और जनशक्ति की आवश्यकताओं के बीच शैक्षिक विकास तथा जनशक्ति प्राक्कलनों के बीच भी बहुत ज्यादा असमानताएं हैं।

जनशक्ति की समस्या

प्रसिद्ध आई० एस० आई०–आई० एस० ई० अनुसंधान के जरिए विश्वभर की जनशक्ति की समस्या का व्यापक रूप से अध्ययन किया गया है। हमारे सुधार भी उन्हीं आधारों पर तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य में विशाल मानव संसाधनों को ध्यान में रखते हुए किए जाने चाहिएं। दूसरे शब्दों में, शैक्षिक परिणाम, मोटे तौर पर समाज की विविधता और आकार के अनुरुप जनशक्ति की मांगों के बराबर होने चाहिए। किन्तु, किसी भी अस्थिर समाज में आर्थिक स्थिति से जनशक्ति की बराबरी करना कठिन है। अनुभव से पता चलता है कि आर्थिक उन्नति की एक खास अवधि में मांग पैदा नहीं हुई और आपूर्ति मांग से कहीं ज्यादा थी। जिसके फलस्वरूप बड़े पैमाने पर बेरोजगारी बढ़ी। इसमें संतुलन बनाए रखने के लिए, सरकारी एजेन्सियों को किसी विशिष्ट अवधि के दौरान मांग तथा आपूर्ति के संबंध में अनुसंधान कार्य सौंपा जाना चाहिए और तत्पश्चात् उसके निष्कर्षों के आधार पर दाखिले तथा पाठ्यचर्या पद्धति के बीच सामंजस्य स्थापित करना चाहिए। अब समय आ गया है कि हमें अपनी शिक्षा को ऐसा रूप देना चाहिए जिससे उसके जरिए हमारी जनशक्ति देश की सामाजिक-आर्थिक मांगों के उपयुक्त बन सके।

अधिक का परिणाम कम

इस प्रकार, संख्या में वृद्धि होने से केवल घटिया दर्जे की ही शिक्षा दी जा सकेगी जब तक कि हम मानव संसाधनों का ठीक ढंग से प्रयोग न करें। हम जानते हैं कि ज्यादा का अर्थ कम होता है। यदि हम मात्रात्मक विस्तार पर जोर दें तो कोटि में स्वभावतः गिरावट आएगी। नौकरशाही शिक्षा पद्धति से, जिसको संख्या ज्यादा है, हमारी कोटि का पता चलता है। शिक्षा संस्थाएं, अध्ययन के बजाए, आजीविका कमाने के केन्द्र बन गए हैं। कक्षाओं में सामूहिक अध्यापन होता है और अध्यापक तथा छात्र के बीच अंतर अधिक होता जा रहा है। भीड़भाड़ वाली कक्षाओं से शैक्षिक वातावरण समाप्त हो गया है। नमी और कठोर नियमों के कारण कार्य-कुशलता समाप्त हो गई है और जिससे अनावश्यक ऊपरी काम ही हो पाता है।

बड़प्पन से दूर

हम, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों में अधिशासन की निंदा करते हैं किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में इसके प्रचलन के लिए मजबूर हैं। इसी कारण से कोठारी आयोग, शिक्षा को समवर्ती सूची में शामिल करने के पक्ष में नहीं है क्योंकि इससे "अवांछनीय केन्द्रीयकरण होगा और कठोरता पैदा होगी जबकि आवश्यकता लचीलेपन तथा प्रयोग करने की स्वतंत्रता की है।" बड़प्पन और नौकरशाही को छोड़े बिना हम नई शिक्षा पद्धति की सफलता की आशा नहीं कर सकते क्योंकि यह अध्यापक और छात्र के बीच व्यक्तिगत और पारस्परिक संबंधों पर आधारित है। छात्रों की बढ़ती हुई संख्या के अनुरूप नए कार्यक्रम को कार्यान्वित करना वर्तमान पद्धति में असंभव है। बोझिल शैक्षिक संस्थाओं से परिकल्पित सुधारों के गम्भीर अध्यापन के लिए प्रेरक नहीं हो सकता।

संघीय ढांचा

इसलिए शिक्षा का विकेन्द्रीकरण करना आज को सबसे बड़ी आवश्यकता है। केन्द्रीय शिक्षा मंत्री, निश्चित रूप से अविवेकपूर्ण केन्द्रीयकरण' के विरुद्ध हैं और हम उनके हाल ही के इस प्रस्ताव का स्वागत करते हैं कि निचले स्तरों को प्राधिकार और वास्तविक अधिकार हस्तान्तरित किए जाने चाहिएं। यदि इस प्रस्ताव को कार्यान्वित किया जाए तो इससे शिक्षा की परम्परागत प्रणाली को समाप्त करने में मदद मिलेगी और इससे छोटे आकार की संस्थाओं का पुनर्गठन हो सकेगा। इससे शिक्षा को लाल फीताशाही से बचाया जा सकेगा और इसमें वैयक्तिक पुट दिया जा सकेगा जिसकी शिक्षा के क्षेत्र में बहुत आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, इससे शिक्षा, अध्यापक-केन्द्रित न होकर छात्र-केन्द्रित हो सकती है। इसलिए यह बेहतर होगा कि हम कक्षाओं के आकार को कम करें और अध्यापकों की संख्या में यथासंभव अधिकतम वृद्धि करें। इसलिए, बढ़ती हुई संख्या की जरूरतों को पूरा करने का व्यावहारिक रास्ता केवल यही है कि शिक्षा का संघटक यूनिटों के साथ संघीय ढांचा बनाया जाए और उसे देश के दूरवर्ती क्षेत्रों में फैलाया जाए।

बदली हुई छात्र पद्धति

इस प्रकार की स्वायत्तता बहुवादी समाज की बदली हुई पद्धति के लिए बहुत उपयुक्त होगी।

आजकल छात्र मूलतः मिली-जुली प्रकृति के होते हैं। नए छात्र समाज के विभिन्न वर्गों के होते हैं जिनकी क्षमता तथा

[शेष पृष्ठ 23 पर]

शिक्षा का व्यावसायीकरण

—सी० वी० गोविन्दा राव

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का राष्ट्रीय दस्तावेज

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने 1975 के दौरान हुई अपनी बैठक में भारत सरकार और देश के राज्यों द्वारा 10+2+3 प्रणाली अपनाने की सिफारिश की थी। भारत सरकार ने इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद से शिक्षा के +2 स्तर पर एक दस्तावेज तैयार करने के लिए कहा। 'उच्चतर माध्यमिक शिक्षा तथा उसके व्यावसायीकरण' नामक अपने दस्तावेज में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् ने प्रस्ताव किया कि 11वीं तथा 12वीं कक्षाओं में व्यावसायीकरण लागू किया जाए तथा 50 प्रतिशत विद्यार्थियों को ऐसे व्यवसायों की शिक्षा दी जाए जहां निकट भविष्य में रोजगार की अच्छी संभावनाएं हों। दस्तावेज में दो अलग-अलग पद्धतियां सुझाई गई, एक तो छात्रों को विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, वाणिज्य तथा मानविकी में उच्च शिक्षा के लिए तैयार करने हेतु सामान्य पद्धति तथा दूसरी सामान्य शिक्षा को उपयुक्त व्यवसायों में प्रशिक्षण के साथ सावधानीपूर्वक मिलाकर विद्यार्थियों को तात्कालिक व्यवसायों के लिए तैयार करने की पद्धति। परम्परागत व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में निहित कुछ कमियों को दूर करने के लिए दस्तावेज में सेमेस्टर प्रणाली को अपनाने की विशेष रूप से सिफारिश की गई ताकि विद्यार्थी अपनी शिक्षा और प्रशिक्षण, सत्र या सेमेस्टर पाठ्यक्रमों के माध्यम से प्राप्त कर सकें। इस प्रणाली के पक्ष में प्रमुख दलील यह थी कि विद्यार्थी अपनी इच्छानुसार तथा सविधानुसार संबंधित पाठ्यक्रमों का वर्ग चुन सकते हैं। इस प्रणाली में विद्यार्थी एक या दो सेमेस्टर पूरा करने के बाद क्रम को तोड़ सकता है या यदि उसे किसी अन्य कारणवश या परिवार की सहायता के लिए कार्य करने के वास्ते मजबूर होकर तोड़ना पड़ा तो वह एक या दो सेमेस्टरों के बाद अपना पाठ्यक्रम पुनः शुरु कर सकता है। मूल्यांकन नम्बरों की बजाए अक्षर ग्रेडों के रूप में सुझाया गया था। अन्तिम प्रमाण-पत्र या डिप्लोमा विद्यार्थियों को तभी दिया जाएगा जबकि वे अपेक्षित संख्या में सेमेस्टर पाठ्यक्रमों को पूरा कर लें, जिस में पाठ्यक्रमों की अपेक्षित संख्या को पूरा करने की विशिष्ट अवधि पर कोई प्रतिबन्ध नहीं हो। एक अन्य प्रमुख सिफारिश यह थी कि व्यावसायिक विद्यार्थी को प्रदान किये जाने वाले बुनियादी विषय ऐसे होंगे कि यदि किसी स्तर पर छात्र चाहे तो वह व्यावसायिक पाठ्यक्रम के स्थान पर सामान्य पाठ्यक्रम ले सके। इसी तरह छात्र सामान्य पद्धति के स्थान पर व्यावसायिक पद्धति ले सकते हैं बशर्ते कि वे व्यावसायिक अभ्यास को पूरा कर सकें।

दस्तावेज की सबसे महत्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि और आगे शैक्षिक सुविधाएं चुनी हुई विद्यमान संस्थाओं में प्रदान की जाएं या विशेष संस्थाएं खोली जाएं ताकि जीवन में और उन्नति करने के द्वार बन्द न हो जाएं। यदि जिलों अथवा क्षेत्रों में किए गए व्यावसायिक सर्वेक्षणों के आधार पर अत्यावश्यक व्यवसायों का समुचित रूप में पता लगाया जा सके तो संबंधित क्षेत्र या जिले की आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम प्रारम्भ करना संभव हो सकता है। शहरी वातावरण के लिए उपयुक्त व्यवसाय ग्रामीण क्षेत्रों के लिए उपयुक्त व्यवसायों से भिन्न हो सकते हैं। शैक्षिक संस्थाएं इस प्रकार स्थित होनी चाहिएं कि नवयुवक अपने घरों से दूर जाए बिना ही उनसे लाभ उठा सकें और इस प्रकार काफी सीमा तक प्रव्रजन को रोका जा सकता है। किसी भी क्षेत्र में अधिकाधिक शैक्षिक सुविधाएं प्रदान करने का कोई लाभ नहीं है यदि उस क्षेत्र के आर्थिक विकास को शिक्षा और प्रशिक्षण के साथ न जोड़ा जाए। इन बातों को ध्यान में रखते हुए दस्तावेज में यह सिफारिश की गई कि 1977-78 के दौरान व्यावसायिक शिक्षा देने के लिए देश के प्रत्येक जिले में कम से कम चार स्कूल चुने जाएं। इस दस्तावेज का काफी प्रचार किया गया तथा मंत्रालय ने व्यवसायों का पता लगाने तथा संस्थाएं स्थापित करने के लिए सर्वेक्षण आयोजित करने के वास्ते राज्यों को धन उपलब्ध किया। दस्तावेज में यह भी सुझाव दिया गया कि प्रशिक्षण सुविधाओं में मितव्ययता के लिए पालिटेकनिकों, औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों, वाणिज्य संस्थानों, शिल्प स्कूलों, नर्सिंग स्कूलों, तथा व्यावसायिक कालेजों में विद्यमान संसाधनों का पूरी तरह से उपयोग किया जाना चाहिए। इसमें यह भी सुझाव दिया गया कि प्रशिक्षण देने वाले कार्मिकों का चुनाव विभिन्‍-

व्यावसायिक क्षेत्रों से किया जाना चाहिए तथा कार्य के लिए नियोक्ताओं की आवश्यकताओं तथा कार्य के साथ-साथ प्रशिक्षण के लिए समय-सारिणी को ध्यान में रखते हुए ही उनकी सहायता से पाठ्यचर्या का निर्धारण किया जाना चाहिए।

अनुवर्ती कार्य तथा वर्तमान स्थिति

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् ने, मार्ग-दर्शन के लिए, दुर्ग, कटक, मैसूर, गंगानगर तथा मथुरा जिलों म पांच व्यावसायिक सर्वेक्षणों का आयोजन किया था। अपने अनुभव के आधार पर इसने राज्यों के शिक्षा विभागों के वरिष्ठ अधिकारियों के लिए एक सप्ताह की कार्यशाला का भी आयोजन किया तथा जिलों में तुरंत सर्वेक्षण आयोजित करने के लिए एक मार्गदर्शिका तैयार की। अब यह ज्ञात हुआ है कि 1978-79 के दौरान व्यावसायिक पाठ्यक्रम शुरू करने की तैयारी में 39 जिलों में सर्वेक्षण की प्रक्रिया पूरी होने वाली है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् ने 25 व्यवसायों में पाठ्यचर्याएं, उपकरणों की सूचियां तथा संदर्भ पुस्तकों की सूचियां भी तैयार की हैं और उन संस्थाओं को उपलब्ध कराई जिन्होंने उनकी मांग की थी, उनमें सबसे महत्वपूर्ण केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड है। रा० शै० अनु० प्र० परिषद् ने, तमिलनाडु, कर्नाटक, असम, उड़ीसा, सिक्कीम, नागालैण्ड, मध्य प्रदेश तथा हरियाणा जैसे राज्यों को विशेषज्ञ तथा सहायता उपलब्ध कराई। इन राज्यों में से कर्नाटक ने चुने हुए लगभग 12 जिलों में प्रयोग आरंभ कर दिया है, जिसके अन्तर्गत लगभग 1200 छात्र आते हैं। तमिलनाडु ने तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय के कुलपति की अध्यक्षता में एक उच्च स्तरीय समिति नियुक्त की है। इसने शैक्षिक तथा 46 व्यावसायिक विषयों के लिए पाठ्यचर्या तैयार की है। पश्चिम बंगाल ने 2300 विद्यार्थियों वाली 90 संस्थाओं में व्यावसायिक पाठ्यक्रम शुरू किए हैं। कर्नाटक के प्रयोग से यह परिणाम निकाला जा सकता है कि यदि शैक्षिक संस्थाओ तथा नियोक्ता एजेंसियों को एक दूसरे के निकट लाने के लिए उचित प्रक्रिया अपनायी जाये तो न केवल निकट सहयोग स्थापित किया जा सकता है बल्कि रोजगार की समस्या का समाधान भी हो सकता है तथा आने वाले वर्षों में शैक्षिक पाठ्यक्रमों की अपेक्षा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में दाखिले की भीड़ हो जाएगी।

दिल्ली प्रशासन ने वर्तमान सत्र में लगभग 50 स्कूलों में विभिन्न व्यावसायिक विषयों में व्यावसायिक पाठ्यक्रम शुरू करने के लिए जोरदार प्रयास किये परन्तु किसी न किसी कारण से वर्तमान सत्र के दौरान केवल 17 स्कूलों में ही व्यावसायिक पाठ्यक्रम उपलब्ध किये जा सके। ये व्यावसायिक पाठ्यक्रम भी केवल वाणिज्य तथा तकनीकी विषयों तक ही सीमित है। इसलिए, कर्नाटक में सफलता और दिल्ली में लगभग असफलता के बीच यह अन्तर स्पष्ट है। इस असफलता में सहायक कारण एक ओर तो शिक्षा तथा प्रशिक्षण की कोटि के प्रति विद्यार्थियों, माता-पिताओं तथा प्रशासकों में आशंका तथा दूसरी ओर रोजगार स्थिति तथा सीधी गतिशीलता है।

महत्वपूर्ण समस्याएं

एक महत्वपूर्ण प्रश्न जो समय-समय पर उठाया गया है, वह यह है कि व्यावसायिकरण को केवल 11 वीं कक्षा से ऊपर शुरू करने तक ही सीमित न रखा जाए बल्कि उसे निचली 9वीं तथा 10 वीं कक्षाओं से शुरू किया जाय। इस बात के पक्ष में यह दलील है कि बड़ी संख्या में विद्यार्थी 7वीं या 8 वीं कक्षा के अन्त में स्कूल छोड़ देते हैं और उनको भी लाभदायक व्यवसायों के लिए तैयार किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय दस्तावेज में इस पर विचार नहीं किया गया क्योंकि उस समय यह विचार था कि 16 वर्ष की आयु तक सामान्य शिक्षा दी जाये और व्यावसायिक शिक्षा कक्षा 11 और उसके ऊपर की कक्षा में दी जानी चाहिए। दस्तावेज में निचली कक्षाओं में कार्य-अनुभव तथा 9वीं और 10वीं कक्षाओं में किन्हीं एक या दो शिल्पों में कुछ प्रकार के विशिष्टिकरण का उल्लेख था। मुख्य बात यह है कि 8वीं कक्षा के अन्त में स्कूल छोड़ने वाले की आयु सम्भवतः 13 या 14 वर्ष होगी और वह अपना प्रशिक्षण 15 या 16 वर्ष की आयु में पूरा करेगा और इस प्रकार वर्तमान श्रम कानूनों के अधीन निर्धारित आयु प्रतिबन्ध के कारण उसे बेरोजगार रहना पड़ेगा। यह एक ऐसी समस्या है जिसकी यदि 8वीं कक्षा पास करने वाले छात्रों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी है, तो बारीकी से जांच करनी होगी।

एक अन्य प्रमुख प्रश्न जिसके कारण विद्यार्थियों, माता-पिताओं तथा नियुक्ताओं के मन में आशंका है, वह यह है कि क्या प्रस्तावित व्यावसायिक "शिक्षा और प्रशिक्षण", किसी व्यवसाय विशेष में रोजगार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त होगा। नियोक्ताओं का मत है कि जब तक कि विद्यार्थियों को गहन व्यावसायिक प्रशिक्षण न दिया जाए तब तक उनके लिए उन्हें नियुक्त करना कठिन होगा। दूसरी ओर शिक्षाविदों का विचार है कि एकमात्र व्यवसाय या शिल्प में गहन प्रशिक्षण देने से विद्यार्थियों के लिए भावी उन्नति के अवसर अवरुद्ध हो जाएंगे क्योंकि केवल एक व्यवसाय म दक्षता प्राप्त करने से वह भविष्य की परिवर्तनशील व्यावसायिक प्रणालियों के अनुरूप नहीं बन पाएगा। इसलिए, उनका तर्क है कि काफी मात्रा में संबंधित बुनियादी ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए, ताकि कुछ या थोड़े से प्रशिक्षण से कोई व्यक्ति नई स्थिति के अनुसार अपने आप को ढाल सके। तथापि, विभिन्न उद्योग-पतियों तथा अन्य नियोक्ताओं के साथ हुए विचार-विमर्श से पता चलता है कि उन्हें ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो कि और अधिक प्रशिक्षण प्राप्त किए बिना उनके संगठनों की कार्य प्रणाली के लिए तत्काल उपयुक्त सिद्ध हो सकें। अतः यह उचित प्रतीत होता है कि अगले 5 से 10

वर्षों के बीच यह बेहतर होगा कि विद्यार्थियों को आवश्यकताओं के अनुसार कार्यों में प्रशिक्षण देकर उपयुक्त बनाया जाये। ऐसा करने का एक तरीका यह हो सकता है कि शुरू से ही प्रशिक्षण का उद्देश्य प्रत्येक क्षेत्र में उत्पादन प्रक्रिया के लिए उपयुक्त दक्षताओं का विकास करना होना चाहिए। दूसरे शब्दों में संस्थात्मक प्रशिक्षण को, उत्पादन प्रणाली शुरू करके, उद्योगों के लिए आवश्यक उपकरणों, पुर्जों इत्यादि के निर्माण की दिशा में मोड़ना होगा। उद्योगों को अपनी ओर से संस्थाओं को विशेषज्ञता, पर्यवेक्षण तथा कच्चा माल उपलब्ध कराया जाना चाहिए और यह देखना चाहिए कि उचित प्रशिक्षण दिया जाये।

उपरोक्त के साथ-साथ उन लोगों के लिए और आगे शिक्षा तथा प्रशिक्षण की सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिये जो अपने भविष्य को सुधारना चाहें। इन विद्यार्थियों को परम्परागत शिक्षा और प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए विद्यमान व्यावसायिक संस्थानों में भेजने की बजाय ऐसे विशिष्ट पाठ्यक्रम शुरू करना सम्भव हो सकता है जिनमें विद्यार्थी कार्य कर रहे हों या जिनमें उनकी विशेष रुचि हो ताकि उच्च डप्लोमा और प्रमाण-पत्र प्रदान किये जा सकें। बंगलोर में स्थापित फोरमैन प्रशिक्षण संस्थान इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। यह संस्थान उन लोगों को जो रोजगार में अपना स्तर ऊंचा उठाना चाहते हैं, आयु तथा रोजगार में उनके स्तर के प्रतिबन्ध के बिना प्रशिक्षण प्रदान करता है। तकनीकी शिक्षा के संबंध में दामोदरन समिति ने उच्च डिप्लोमाओं के लिए पालिटेक्निकों में ऐसी प्रशिक्षण सुविधाओं की सिफारिश की है।

उन संस्थानों में जिनमें शैक्षिक पाठ्यक्रम उपलब्ध किये जाते हैं, व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करना एक अन्य ऐसा विषय है जो शिक्षण समुदाय का ध्यानाकर्षण कर रहा है। उन्हें सेमेस्टर प्रणाली की उपयुक्तता के बारे में कुछ सन्देह है। संघ शासित क्षेत्र, दिल्ली में यह समस्या विशेष रूप से सामने आई है। यह मामला विवादास्पद है कि क्या व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को अलग संस्थाओं में शुरू किया जाए अथवा उन्हीं संस्थाओं में शुरू किया जाए जहाँ शैक्षणिक शिक्षा प्रदान की जाती है। यदि कुछ सीमा तक दक्षता और कुशलता प्राप्त करनी है तो व्यावसायिक विद्यार्थियों को शैक्षिक विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक कार्य करना होगा। इससे विद्यार्थियों के समूहों में कुछ कम्पलैक्स पैदा हो जाएंगे। अध्यापकों का भी यह विचार है कि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को पृथक् संस्थाओं में शुरू किया जायेगा। अतः व्यावसायिक पाठ्यक्रम कहां शुरू किये जाएं इस बात पर विशेष ध्यान तथा विचार करने की आवश्यकता है।

युवकों को, स्वतः रोजगार सहित, रोजगार के लिए तैयार करना ही व्यावसायिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। उन लाखों विद्यार्थियों को, जो व्यावसायिक पाठ्यक्रम में उत्तीर्ण होते हैं, सरकारों, स्वायत्त-शासी संस्थाओं, निजी क्षेत्र की एजेंसियों इत्यादि में रोजगार नहीं मिल सकता, उन्हें स्वतः रोजगार के अवसर खोजने चाहिए। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि उनके प्रशिक्षण से उन्हें न केवल उच्च कोटि की दक्षता और ज्ञान प्राप्त हो बल्कि उनमें स्वतंत्र रूप में कार्य करने, जोखिम उठाने तथा अपने उद्यम का स्वयं प्रबंध करने का उत्साह भी पैदा हो। यदि अनेक उद्देश्यों में से यह एक उद्देश्य हो तो स्वाभाविक रूप से "शिक्षा तथा प्रशिक्षण" की अवधि, जैसा कि राष्ट्रीय दस्तावेज में सिफारिश की गई है, आवश्यकताओं के अनुरूप लचीली होनी चाहिए। कार्यक्रम को दो वर्षों तक सीमित करना, जैसा कि बहुत से मामलों में किया गया है, उपरोक्त पहलू की अवहेलना करना है। इसलिए प्रत्येक मामले में व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की अवधि दो वर्षों तक सीमित नहीं करनी चाहिए और ज्ञान की कोटि तथा प्रतिभा के स्तर को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रमों की अवधि भिन्न-भिन्न निर्धारित की जानी चाहिए।

आजकल विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रहे अनेक व्यावसायिक स्कूल हैं, अर्थात्, नर्सिंग स्कूल, दंत संस्थान, फार्मसी संस्थान, वाणिज्य संस्थान, पालिटेक्निक, औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, व्यावसायिक संस्थाएं इत्यादि सभी तकनीकी शिक्षा स्कूल तथा पोलिटेक्निक, शिक्षा मंत्रालय के नियंत्रणाधीन है। चिकित्सा संस्थाएं, स्वास्थ्य मंत्रालय के नियंत्रण में है। कृषि स्कूल तथा पालिटेक्निक, श्रम मंत्रालय के अधीन है। मेडिकल क्षेत्र में, नर्सिंग परिषद, डेंटल परिषद्, फार्मसी परिषद् तथा भारतीय मेडिकल परिषद्, सांविधिक निकाय है जो कि स्तरों की देखभाल करती है तथा उन्हें कठोरता से बनाये हुये हैं। तकनीकी पाठ्यक्रमों के संबंध में अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् भी इसी तरह की भूमिका निभा रही है। इसलिए, सामान्य शिक्षा संस्थाओं में व्यावसायिक पाठ्यक्रम शुरू करना ऐसे संगठनों के प्रतिकूल हो सकता है जो सरकारी अधिनियमों के अन्तर्गत कार्यरत है। इसके अतिरिक्त यह वांछनीय हो सकता है कि केवल ऐसे नये पाठ्यक्रम शुरू किए जाएं जिनमें प्रशिक्षण की सुविधाएं उपलब्ध न हों और ऐसे पाठ्यक्रमों में हस्तक्षेप न किया जाए जो सुव्यवस्थित हों और जिनका प्रबन्ध उपरोक्त संगठनों के अधीन हो। फिर भी जब, नये पाठ्यक्रम शुरू किये जायें, तो समन्वय मान्यता तथा सम्बद्धता की स्पष्ट परिभाषा करनी होगी तथा काफी समय पहले ही उपयुक्त कदम उठाये जाने चाहिए। केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने अखिल भारतीय व्यावसायिक शिक्षा परिषद् की स्थापना की सिफारिश की है और ऐसी परिषद् एक संवैधानिक संस्था होनी चाहिए जिसकी विशिष्ट शक्तियां तथा कर्तव्य हों।

किसी भी शैक्षिक प्रणाली में अध्यापक या प्रशिक्षक की प्रमुख भूमिका होती है। व्यावसायिक विषयों के मामले

में तो यह और भी ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके अन्तर्गत अध्यापक को न केवल विषय के सिद्धान्तों का विशेषज्ञ होना चाहिए बल्कि व्यवसायों के व्यावहारिक पहलू में भी उसे विशिष्टता का प्रदर्शन करना चाहिए। वह केवल ऐसी स्थिति में ही वह विद्यार्थियों को उनके द्वारा चुने गए व्यवसायों में प्रेरणा दे सकता है। "जिसके पास डिग्रियां हैं केवल वही पढ़ाये" के स्थान पर "जो जानता है वही पढ़ाये" का नारा होना चाहिये। किसी व्यक्ति के रोजगार में होने पर उसके नियोक्ता के लिए उसके कार्य का तभी महत्व है जब वह बुद्धिमानीपूर्वक, कुशलता के साथ और मितव्ययता के साथ किया जाए या यदि उसका अपना रोजगार है तो वह लाभदायक हो। इसलिए, सिर्फ विश्वविद्यालय की डिग्रियों को ही उपयुक्त अर्हताएं निर्धारित करने की पुरानी धारणाओं पर ज्यादा जोर न देकर अध्यापक या प्रशिक्षक को बड़ी सावधानीपूर्वक चुनना चाहिए। यदि किसी के पास डिग्रियां तथा व्यावहारिक विशेषज्ञता भी है तो उसे अवश्य ही उसकी तुलना में प्राथमिकता देकर चुना जाना चाहिए जिसके पास केवल दक्षता है। यदि हमारा उद्देश्य प्रशिक्षण में कोटी और श्रेष्ठता लाना है तो उसके चुनाव के मार्ग में उसके द्वारा मांगा जाने वाला वेतन बाधक नहीं होना चाहिए। ग्रीष्मावकाश के दौरान अल्पकालिक प्रशिक्षण देकर उसके ज्ञान को और तेज किया जा सकता है तथा उसे व्यावहारिक दक्षताओं में कुशल बनाया जा सकता है। परन्तु दिखावे की बजाये वास्तविकता को ज्यादा महत्वपूर्ण समझा जाना चाहिए। इसके लिए शिक्षण, विशेषकर व्यावसायिक विषयों में नियुक्तियों के लिए स्वीकृत मानदण्डों का त्याग करने तथा और अधिक लचीले नियमों को अपनाने की आवश्यकता है।

व्यावसायिक पाठ्यक्रमों की सफलता तत्काल रोजगार अवसरों पर निर्भर करती हैं। रोजगार के अवसरों में तभी वृद्धि होगी जबकि आर्थिक विकास तेजी से हो। इसके साथ ही, स्वतः रोजगार के लिए प्रशिक्षण सुविधाएं, अवस्थापना तथा आर्थिक सहायता प्रदान करने के मामले में सामाजिक वचनबद्धता होनी चाहिए। केवल यही पर्याप्त नहीं है कि किसी व्यक्ति के पास नये उद्यम शुरू करने का सामर्थ्य है। इसके लिए व्यवसाय में प्रशिक्षित छात्रों की अपरिपक्वता को सही ढंग से समझने और उन्हें उत्पादक उद्योगों में भागीदार बना कर उनमें आत्मविश्वास पैदा करने के अवसर प्रदान करने की आवश्यकता है। व्यावसायिक संगठनों को संकीर्ण दृष्टिकोण के स्थान पर लचीला दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। भविष्य नवयुवकों के हाथों में है, इसलिए, उद्योगों और व्यवसाय के यथोचित हितों को हानि पहुंचाए बिना उनके व्यवसाय के विकास में सहायता देना पुरानी पीढ़ी का कर्तव्य है।

पारस्परिक लाभ तथा देश के मानवीय साधनों के भावी विकास के लिए शैक्षिक संस्थाओं, औद्योगिक उद्यमों, अस्पतालों छात्रावासों, प्रगतिशील कृषकों तथा ऐसे ही संगठनों को सहयोग करना चाहिए।

● ● ●

[पृष्ठ 19 का शेष]

संस्कृति अलग-अलग होती है तथा मस्तिष्क संरचना मिली-जुली होती है। किसी कुम्हार के लड़के में स्वभावतः विशिष्ट प्रकार की प्रतिभा होती है जो किसी प्रोफेसर के पुत्र में नहीं होती। जो किसान भरपूर फसल पैदा करने में कुशल होता है वह कुशलता में भाषा विज्ञान के किसी डाक्ट्रेट के बराबर हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति, सामाजिक जीवन को समृद्ध बनाने तथा उसे नया दृष्टिकोण प्रदान करने में समान रूप से उपयोगी हो सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रतिभा केवल अभिजात वर्ग तक ही सीमित नहीं है और न ही यह अधिक बौद्धिक विषयों तक सीमित है, बल्कि यह बात मानव के प्रत्येक कार्य क्षेत्र पर लागू होती है।

नई धारणा

इसलिए प्रबुद्ध सामाजिक नीति में शिक्षा की नई धारणा की परिकल्पना की गई है ताकि मानव प्रवृत्ति की नई जरूरतें पूरी हो सकें। हमें, स्कूल के अंदर और स्कूल के बाहर शिक्षा की समग्र प्रक्रिया और संरचना का नए सिरे से मूल्यांकन करना होगा ताकि इसका प्रभाव अनेक दिशाओं में हो। शैक्षिक ढांचे को इस प्रकार गठित किया जाना चाहिए कि सभी प्रकार की कार्यकुशलता और शिल्पकला को स्कूलों में, निचले स्तर तक स्थान प्राप्त हो सके। ऐसा करने से केन्द्रीय-नियंत्रण की आवश्यकता नहीं रहेगी और शिक्षा को लचीला तथा संघीय स्वरूप प्राप्त हो सकेगा। इस प्रयोजन के लिए धन की व्यवस्था करना कठिन मालूम होता है किन्तु जैसा कि डाक्टर चन्द्र ने कहा था, धन मुख्य समस्या नहीं है। वास्तव में, कम धन से भी काफी अच्छा काम किया जा सकता है बशर्ते कि राष्ट्र की रचनात्मक भावना को जाग्रत किया जा सके।

विश्वव्यापी नीति

संस्थागत शिक्षा, नियंत्रण तथा धन की दृष्टि से, जनसंख्या में वृद्धि की समस्याओं को कुछ सीमा तक ही पूरा कर सकती है। हमारा मत है कि हमें परिसर के बाहर देखना होगा और छात्रों की बढ़ती हुई संख्या के लिए अनौपचारिक शिक्षा को प्रोत्साहन देना होगा। यदि अनौपचारिक शिक्षा को स्कूली पद्धति से जोड़ दिया जाए तो वह उल्लिखित स्वायत्त शिक्षा के ज्यादा निकट होगी। गैर-औपचारिक शिक्षा पद्धति, जिसका अर्थ अनुभव तथा पर्यावरण से सीखना है, औपचारिक शिक्षा से कहीं ज्यादा पुरानी है। इसे, अकादमिक शिक्षा के समानान्तर बनाना ही इस दिशा में केवल एक नई बात होगी। आजीवन शिक्षा का परीक्षण, जिसमें बिभिन्न प्रकार की प्रतिभाएं शामिल हों, तीसरे विश्व के देशों में बढ़ते हुए करोड़ों व्यक्तियों के विकास के लिए एक विश्वव्यापी नीति के रूप में, किया जा रहा है।

● ● ●

प्राथमिक कक्षाओं में कार्य शिक्षा संबंधी गतिविधियां

—मंजीत सेन गुप्त

प्राथमिक स्तर पर बच्चों में खेल-कूद के प्रति स्वाभाविक झुकाव होता है। कोई भी रंगीन, गतिशील, लचीली अथवा कर्णप्रिय वस्तु उनका ध्यान आकर्षित कर लेती है। वे तत्काल उसे छूने, देखने अथवा उससे खेलने के उत्सुक हो जाते हैं। वे किसी वस्तु के संबंध में अन्य लोगों द्वारा बतायी गई बात से तब तक सहमत नहीं होते जब तक कि वे उसका स्वयं अनुभव न कर लें। उनकी रुचियों, अभिवृत्तियों तथा क्षमताओं का विकास करने तथा उन्हें इस प्रकार मोड़ने के लिए उनकी अतृप्य उत्सुकता को सावधानीपूर्वक प्रोत्साहित करने तथा इस प्रकार 'उभारने' की आवश्यकता है कि वे जो कुछ सीखें वह उनके भावी जीवन का एक अनिवार्य अंग बन जाए।

इसी परिप्रेक्ष्य में प्राथमिक स्कूल पाठ्यचर्या में कार्य शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह, शिक्षक को ऐसे विभिन्न विकल्प, सम्भावनाएं तथा दृष्टिकोण प्रदान करती है जिन्हें सम्पूर्ण शिक्षा कार्यक्रम को एकीकृत तथा सार्थक ढंग से तैयार करने के लिए इस स्तर पर शुरू, परीक्षण तथा प्रयोग किया जा सकता है ताकि शिक्षा बच्चों की जरूरतों तथा समाज की आकांक्षाओं के अनुरूप बन सके।

सामान्यतः कार्य संबंधी शिक्षा, आर्थिक अथवा भौतिक रूप से उत्पादक होनी चाहिए; इससे बच्चों में समस्याओं को हल करने, अवशेष पदार्थों को समाज के लाभ के लिए उपयोग करने तथा इन सबसे अधिक परस्पर-प्रक्रिया तकनीकी-वैज्ञानिक ज्ञान को समझने के लिए वैज्ञानिक तथा कल्पनाशील दृष्टिकोण का विकास होना चाहिए। प्राथमिक स्तर पर शिक्षा विशेष रूप से सजीव तथा आनंदप्रद होनी चाहिए। माध्यमिक स्कूलों के लिए शिक्षा के जिन तरीकों की सिफारिश की गई है वे बच्चों में सृजनात्मक क्षमताओं, पहल-शक्ति और खोज अथवा साहस की भावना का विकास करने में बाधक व हानिकर सिद्ध होते हैं। इस स्तर पर शिक्षा, मनोवैज्ञानिक तथा उपयोगिता के सिद्धांतों पर आधारित विभिन्न उपयुक्त गतिविधियों के जरिये दी जानी चाहिए। उपयोगिता का मूल्यांकन शैक्षिक अथवा कार्यात्मक दृष्टि से किया जा सकता है।

विविधता पर बल

इस आयु-वर्ग के लिए चुनी जाने वाली गतिविधियों में विविधता का होना आवश्यक है। बच्चे, किसी एक विशेष गतिविधि पर ही ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकते। वे निरंतर नयी-नयी गतिविधियों में भाग लेना चाहते है। क्योंकि प्रत्येक गतिविधि का अपना अलग आकर्षण होता है। वे जिन वस्तुओं का इस्तेमाल करते हैं वे आकार में बड़ी, लचीली और सरल होनी चाहिए तथा छल-कपट से दूर होनी चाहिए। कुछ गतिविधियां ऐसी हो सकती हैं जिनसे बच्चे को अपनी सृजनात्मक स्वतः अभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त हो जबकि अन्य गतिविधियां शैक्षिक, अनुदेशात्मक अथवा उपयोगिता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो सकती हैं। कागज़, डोरी, लकड़ी के टुकड़े, रंग, स्याही इत्यादि जैसी रंगीन, बहुरंगी व थोड़ी-सी आवाज़ पैदा करने वाली वस्तुएं, तथा सब्जियों, पत्तियों, फूलों, गोंद, मिट्टी, प्लास्टिक आदि का उपयोग करने वाली गतिविधियां बच्चों का ध्यान शीघ्र आकर्षित कर लेती हैं। कुछ अन्य गति-विधियां भी हो सकती हैं जिनमें पत्तियां, फूलों, पत्थरों तथा अन्य ऐसी ही वस्तुओं को एकत्र करने के लिए बच्चों को समूह में अपने आस-पास के इलाकों में जाना पड़ता है।

स्कूल के इस स्तर पर प्रस्तावित गतिविधियों में, सृजनात्मक गतिविधियों का पहला स्थान है। इनमें ऐसी गति-विधियां सम्मिलित हैं जिनको करने का कोई निश्चित तरीका अथवा प्रक्रिया नहीं है। बच्चे खेलने और सृजनात्मक काम करने के लिए स्वतंत्र हैं, इससे उन्हें आनंद और संतोष प्राप्त होता है। ऐसी गतिविधियों के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

(क) किसी कागज के टुकड़े पर स्याही की कुछ बूंदें डालकर, उसे मोड़कर और हाथ से दबा कर कई प्रकार की स्याही के डिजाइन तैयार करना। एक ही समय में दो या तीन विभिन्न रंगों के एनेमल पेन्ट्स की बूंदें डाल कर इन डिजाइनों को और अधिक आकर्षक तथा सजीव बनाया जा सकता है। इस विशेष क्रिया से सुंदर तथा आकर्षक बधाई-कार्ड तथा सजावट की कलाकृतियां बन सकती है।

(ख) विभिन्न कलापूर्ण पत्तियों, जैसे नीम और गुलाब की पत्तियों को कागज पर रख कर उनके ऊपर और उनके चारों ओर स्याही छिड़ककर और फिर उसको कागज से हटा कर बड़ी संख्या में प्रिंट प्राप्त किए जा सकते हैं। प्रयोग किए हुए दांतों के ब्रुश या स्टेन्सिल ब्रुश से दो या तीन भिन्न रंगों को छिड़ककर उन्हें और ज्यादा रोचक बनाया जा सकता है। पक्षियों, पशुओं, गाड़ियों, पेड़ों इत्यादि के चित्र बनाकर और उन्हें काट कर और इसी प्रकार उनके प्रिंट तैयार करके इस कार्य को और अधिक शिक्षाप्रद रूप में बढ़ाया जा सकता है। काटे हुए चित्रों से, दो तरह से प्रिंट तैयार किए जा सकते हैं। एक तो चित्र का आकार लेकर और बाकी कागज का फेंककर। दूसरे चित्रों को इस तरह काटकर कि काटे हुए चित्र और कागज पर बची हुई खोखली छाप दोनों ही का उपयोग प्रिंट लेने के लिए किया जा सकता है। जैसा कि स्पष्ट है इस गतिविधि को अंग्रेजी, हिन्दी, ड्राइंग या जीव विज्ञानों के साथ आसानी से जोड़ा जा सकता है।

(ग) भिन्डी जैसी सब्जियों के काटे हुए आकारों तथा विभिन्न रंगों के एनेमल पेन्ट्स द्वारा सुंदर बहुरंगी प्रिंट प्राप्त किए जा सकते हैं।

2. बच्चे स्वभाव से ही संग्रहशील होते हैं। वस्तुओं को एकत्र करना उन्हें अच्छा लगता है और कभी-कभी तो कुछ विशेष मामलों में इस प्रवृत्ति के कारण वे कुछ छोटी-मोटी चोरी भी कर लेते हैं। इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को टिकट-संग्रह जैसे परम्परागत शौकों द्वारा शैक्षिक रूप दिया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त अनेक अन्य स्थानीय तरीके हैं जैसे निम्नलिखितों का संग्रह :

(क) करतन रजिस्टर में पत्तियां और फूल,

(ख) महान नेताओं, वैज्ञानिकों, खिलाड़ियों, विचारकों इत्यादि के चित्र,

(ग) विभिन्न प्रकार के जानवरों, रेंगने वाले जन्तुओं तथा पक्षियों इत्यादि के चित्र,

(घ) आकर्षक आकारों तथा किस्मों के पत्थर,

(ङ) विभिन्न किस्मों के बीजों को अपनाया जा सकता है और इन सभी संग्रहों के बारे में विभिन्न विषय-क्षेत्रों के बीच अंतर-संबंध और एकता दर्शाने वाले पाठ लिखे जा सकते हैं।

3. बच्चों को कार्य शिक्षा के जरिए लाभप्रद ढंग से परिचित कराने का एक अनूठा तरीका है, सर्वाधिक लोकप्रिय और सरलता से उपलब्ध पदार्थों, जैसे फालतू कागज, अखबार, पतंग का कागज, कार्ड शीट तथा गत्ते इत्यादि का उपयोग। उनका उपयोग करके अनेक उपयोगी वस्तुएं, जैसी कागज के लिफाफे, डाक और कार्यालय लिफाफे, झण्डे, बधाई कार्ड, पुस्तक अंकक, ज्योमेट्रिकल तथा गणितीय माडल, फालतू कागज डालने की टोकरियां, संग्रह बक्स, स्क्रेप बुक, पैन/पैंसिल स्टैंड, फाइल कवर इत्यादि, खेलने की वस्तुएं जैसे नौकाएं, जहाज, गेंद, जूते, पंखे, मोबाइल्स, ग्लाईडर्स इत्यादि तथा विभिन्न आकारों तथा रंगों की सजावट की वस्तुएं बनायी जा सकती हैं।

4. चिकनी मिट्टी या प्लास्टीसीन कुछेक सर्वोत्तम पदार्थ हैं, जिनका उपयोग बच्चे अपने प्रारम्भिक वर्षों में अनेक प्रकार से कर सकते हैं। बच्चे, इन्हें अपनी उंगलियों में फिराने, तथा संयोगवश बनी इन वस्तुओं को नाम देने में आनन्दित होंगे। इसके उपरान्त वे "केंचुले" "सांप" तथा दूसरे जानवर और मनुष्य बनाना शुरू करेंगे। इस गतिविधि का यदि बुद्धिमानी से आयोजन किया जाए तो इस, स्वतः अभिव्यक्ति से लेकर परिस्थिति विज्ञान, भाषा इत्यादि तक के एक उत्कृष्ट अंतर-विषयक साधन के रूप में विकसित किया जा सकता है।

5. स्वयं की, स्कूल की तथा उसके चारों ओर की स्वच्छता, स्वतः सहायता की भावना के विकास में एक उपयोगी साधन बन सकता है। बच्चे अपने कुछ छोटी मिट्टी के बर्तन रख सकते हैं तथा उनमें फूल या लताएं उगा सकते हैं। प्रत्येक के साथ उनके नाम का एक लेबल लगाने से उनमें उत्साह तथा स्फूर्ति पैदा होगी।

6. स्कूल द्वार पर एक या दो सेलोटैक्स पट्ट अच्छे प्रेरक हो सकते हैं। इन पट्टों का उपयोग, बच्चों के 'निर्माणों', संग्रहों, सुलेख के चुने हुए नमूनों, स्वयंनिर्मित प्रिंटों, चित्रों, वस्तुओं तथा ऐसी अन्य नई वस्तुओं को प्रदर्शित करने के लिए किया जा सकता है जिन्हें बच्चों ने बनाया हो या उन्हें प्राप्त हुई हों। प्रत्येक के साथ उनके नामों का अच्छी तरह से प्रदर्शन विभिन्न क्षेत्रों में उनके मनोबल को बढ़ाएगा।

7. बुनियादी शिक्षा की मुख्य विशेषताओं को चर्चा करते हुए गांधी जी ने एक बार कहा था :—

> हस्तशिल्पों को सिखाया जाना है, केवल यांत्रिक ढंग से नहीं जैसा कि आजकल सिखाया जाता है बल्कि वैज्ञानिक ढंग से, अर्थात् बच्चे को प्रत्येक गतिविधि के बारे में क्यों और कहा का ज्ञान होना चाहिए।

[शेष पृष्ठ 29 पर]

अनौपचारिक शिक्षा : क्यों और कैसे ?

—लोकेश कौल

हमारे संविधान के अनुच्छेद 45 में 12 उल्लिखित निर्देशक सिद्धान्तों में, 6–14 आयु-वर्ग के सभी बच्चों के लिये निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था है। लेकिन कठिन प्रयासों के बावजूद, 6–11 आयु वर्ग के केवल लगभग 83 प्रतिशत बच्चे तथा 11–14 आयु वर्ग के लगभग 37 प्रतिशत बच्चे स्कूल जा रहे हैं। स्कूल जाने वाले बच्चों में से भी 60 प्रतिशत बच्चे V वीं कक्षा पूरी करने से पूर्व तथा लगभग 75 प्रतिशत बच्चे VIII वीं कक्षा पूरी करने से पहले ही स्कूल जाना बन्द कर देते हैं। स्कूल छोड़ देने के पश्चात् ये बच्चे फिर से निरक्षर बन जाते हैं। इससे प्राथमिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने के हमारे प्रयासों को धक्का पहुंचता है (रा० शै० अनु० प्रशि० परि०, 1975) इसके अतिरिक्त, भारतीय जन-संख्या का लगभग 70 प्रतिशत भाग पढ़ने-लिखने में असमर्थ है। जन-संख्या में तेज गति से वृद्धि से भी सर्वव्यापी साक्षरता प्राप्त करने के हमारे प्रयासों में देश ओर भी पिछड़ता जा रहा है। शिक्षा की औपचारिक पद्धति की परम्परागत पद्धतियों के जरिये, व्यापक प्राथमिक शिक्षा तथा निरक्षरता के उन्मूलन की प्रक्रिया को तेज करने के सभी सम्भव प्रयास असफल सिद्ध हुए। इस प्रवृत्ति को विपरीत दिशा देने के लिये, भारतीय शिक्षा पद्धति में कुछ विकल्प खोजने होंगे।

1945 से 1965 तक की अवधी के दौरान भारत में औपचारिक पद्धतियों के जरिये शिक्षा अपनी चरम सीमा तक पहुंच गई। परन्तु, 1965 के बाद से ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि हमारी औपचारिक शिक्षा पद्धति विदेशी तथा उधार ली हुई है। उनका राष्ट्रीय आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्होंने बड़ी मात्रा में अपव्यय तथा गतिहीनता और शिक्षित बेरोजगार अथवा रोजगार के लिए अनुपयुक्त व्यक्तियों को तैयार किया है। अनेक क्षेत्रों में, इस पद्धति द्वारा प्रशिक्षित जन-शक्ति के अभाव में वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त, यह पद्धति एक स्थलीय प्रवेश पद्धति है और इसका स्वरूप क्रमवार है। इस प्रकार की पद्धति सामाजिक रूप से अनुचित है तथा इससे जनता के एक बड़े समूह को शैक्षिक अवसर उपलब्ध नहीं हो पाते। यह पद्धति पूर्णकालिक पद्धति है और इसलिए वे बच्चे जिन्हें सामाजिक तथा आर्थिक कारणों से अपने परिवारों में अथवा बाहर कार्य करना पड़ता है शिक्षा से वंचित रह जाते हैं।

अतः, हमें विकल्पों पर विचार करना है। जे० पी० नायक ने (1976), शिक्षा में विकल्पों पर चर्चा करते समय कहा था कि :—

> "औपचारिक स्कूल पद्धति, समाज में कुल शिक्षा का केवल एक छोटा सा अंग है और एक व्यक्ति अपने जीवन में जो शिक्षा प्राप्त करता है उसमें उसका केवल आंशिक योगदान होता है। क्योंकि यह मुख्यतः एक ऐसी पद्धति है जहां कि छात्रों को पूर्णकालिक आधार पर स्कूल जाना होता है, इसलिए इसके अन्तर्गत लगभग वे सभी व्यक्ति वंचित रह जाते है जो रोजगार में है और जो समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है; और यह पद्धति सामन्यातः एक स्थलीय प्रवेश के आधार पर कार्य करती है, यह पद्धति उन अभागे व्यक्तियों को कोई सहायता अथवा दुसरा अवसर प्रदान नही करती जो संकीर्ण प्रवेश पद्धति के कारण दाखिला नही ले पाते अथवा जिन्हें सामाजिक और आर्थिक कारणों से विवश होकर स्कूल छोड़ना पड़ता है। अतः वे छात्र जो पहले शुरुआत करते हैं, अच्छे कपड़े पहनते हैं, अच्छा खाना खाते हैं तथा उनकी अच्छी देख-भाल होती हैं, और वे अधिक समय तक अध्ययन कर सकते हैं, उन लोगों की अपेक्षा लाभ में रहते हैं जिन्हें विभिन्न कारणों से स्कूल छोड़ने के लिये विवश होना पड़ता हैं, यह प्रणाली निहित स्वार्थों की एक प्रणाली बन गई है और समानता को प्रोत्साहित करने की बजाय विशेषाधिकारों को बढ़ावा देती है।"

अब हम इस लक्ष्य को समझने लगे है कि महत्वपूर्ण बात यह नहीं है कि किसी व्यक्ति ने अपनी शिक्षा के लिये कौन-सा मार्ग चुना है बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि उसने क्या सीखा है ? अथवा प्राप्त किया है । लोकतांत्रिक सामाजिक पद्धति पर बल देने से इस विचारधारा को काफी बल मिला है और वर्तमान औपचारिक शिक्षा पद्धति में अपेक्षित आमूल परिवर्तनों में इसे बड़े पैमाने पर अनौपचारिक रूप देने की आवश्यकता है । 'औपचारिक रहित' और 'संस्था रहित' जैसे शब्दों के महत्व का अधिकाधिक प्रचार किया जा रहा है। 'सीमाओं के बगैर विश्वविद्यालय', 'खुले विश्वविद्यालय', 'व्यक्तिक रूप से निर्धारित शिक्षण', और ऐसी ही अनेक नई शिक्षा संस्थाएं पिछले लगभग एक दशक में स्थापित हुई हैं । औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा के बीच कृत्रिम अथवा पुरानी बाधाओं को समाप्त करने की दिशा में नई पद्धति पैदा हो रही है ।

यूनेस्को द्वारा स्थापित कार्य शिक्षा आयोग ने आजीवन शिक्षा की बात कही है । शिक्षा की संकल्पना प्रशिक्षण तक अथवा ऐसे कार्यकलाप तक सीमित नहीं है जहां सीखने वाले को हाथ से काम सिखाया जाता है और पद्धति के अंतर्गत निर्धारित लक्ष्य की दिशा में उसका पथ-प्रदर्शन किया जाता है । इसके अंतर्गत वे सभी व्यवस्थित और अनौपचारिक साधन शामिल है, जिनके जरिये सभी आयु के लोगों को एक दूसरे व्यक्ति से और अपने ईर्द-गिर्द के वातावरण से सीखने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है ।

अनौपचारिक शैक्षिक संगठन का कार्य क्षेत्र काफी व्यापक है तथापि, स्वालिंग ने (1974) इसे निम्नलिखित दो किस्मों में सैद्धांतिक सुविधानुसार वर्गीकृत किया है :

(1) साधारण शैक्षिक कार्यकलाप और संस्थाएं जो सामान्यतः निर्धारणात्मक अध्ययन लक्ष्यों के प्रति निर्दिष्ट औपचारिक पाठ्यक्रमों और सेमिनारों की व्यवस्था करते हैं ; और

(2) बन्धन मुक्त सेवाएं जिनका उद्देश्य पर्याप्त निर्धारणात्मक संदेश और विषय-वस्तु द्वारा लोगों को खोजना और प्रभावित करना है । इसके अंतर्गत लोग अपनी इच्छानुसार सुनने अथवा भाग लेने के लिये स्वतंत्र होते है ; प्रायः इस का उद्देश्य संदेश के प्रसार में अन्य वर्गों और सेवाओं को प्रौढ़ सहित करना होता है ।

पहली किस्म के अनौपचारिक शिक्षा प्रबन्धों के उदाहरण हैं ; पत्राचार पाठ्यक्रम ; कार्य अध्ययन योजनाएं ; स्वतः शिक्षण अथवा अध्ययन केन्द्र; सीमारहित विश्वविद्यालय (अमेरिका); खुला विश्वविद्यालय (यू.के. तथा अन्य स्थानों पर) ; शिक्षक केन्द्र (यू० के०) ; सशस्त्र सेना प्रशिक्षण योजनाएं ; आजीविका शिक्षा (अमेरिका) ; कार्यात्मक साक्षरता (यूनेस्को) ; जन-शक्ति प्रशिक्षण (अमेरिका) और रोजगार कोर (अमेरिका) ।

दूसरी किस्म के अनौपचारिक शैक्षिक प्रबन्धों के उदाहरण हैं : शिक्षा, कृषि और उद्योग में विस्तार सेवा कार्यक्रम ; स्वास्थ्य शिक्षा सेवाएं; भूमि सुधार शिक्षा कार्यक्रम ; सामुदायिक विकास शिक्षा ; रोजगार प्रशिक्षण योजनाएं; जनसंख्या शिक्षा ; पर्यावरण शिक्षा ; और उपभोक्ता शिक्षा ।

भारत में अनौपचारिक शिक्षा पद्धति के लिए किसी नमूने का विकास करने में अनेक कठिनाइयां हैं । इसका कारण ऐसी संस्थाओं और सेवाओं की विविधता है जिन्हें अनौपचारिक शिक्षा के सामान्य कार्य के अंतर्गत शैक्षिक कहा जा सकता है । आवश्यकता इस बात की है कि नम्यता, संगति और समेकन तथा संसाधनों के सिद्धान्तों की सामान्य रूपरेखा के अन्तर्गत ऐसे शैक्षिक प्रबन्धों की विषय-वस्तु और रीति विज्ञान का सावधानीपूर्वक आयोजन और परिभाषा की जाए । आयु, क्षमता, अभिरुचि सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा व्यावसायिक हैसियत की दृष्टि से सीखने वालों की आवश्यकताओं का मूल्यांकन करना भी आवश्यक है । वर्तमान भारतीय सामाजिक व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए पाण्डेय (1975) ने कहा था कि राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग जैसी संस्थाओं ने अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम बिना पर्याप्त औपचारिकता के शुरु किये हैं । ऐसी सभी मामलों में निर्णय का आधार वह प्रमाण हो सकता है जो इस कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं पर किये गये रीतिबद्ध अनुसंधान से प्राप्त होगा । इस प्रकार मध्यवर्ती वस्तुओं की भूमिका पर विचार किया जा सकता है और इससे हमें, 'कोई कार्य शुरू करने', और फिर 'उसकी असफलता पर पश्चाताप करने', के सामान्य सिद्धान्त से बचने में भी मदद मिलेगी ।

पहले कदम के रूप में, अंशकालिक शिक्षा प्रारम्भ करने के लिये अनौपचारिक शिक्षा और बहु-स्थलीय प्रवेश पद्धति को ऐसे क्षेत्रों में शुरु करने की आवश्यकता है जहां बड़ी संख्या में छात्र स्कूल छोड़ देते हैं । बड़ी संख्या में ऐसे छात्र सामान्यतः जनजातिय क्षेत्रों पर्वतीय क्षेत्रों, ग्रामीण क्षेत्रों, छितरी आबादी वाले क्षेत्रों, गंदी बस्तियों में पाये जाते हैं जहां अनुसूचित जातियों की संख्या अधिक होती है तथा ऐसे क्षेत्रों में लड़कियों के मामले में स्कूल छोड़ने की दर बहुत ऊंची होती है । (रा० शै० अनु० तथा प्रशिक्षण परि० 1975) इस कार्यक्रम के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य होने चाहियें;

— स्कूल छोड़ देने वाले छात्रों तथा ऐसे छात्रों को जो प्राथमिक स्कूल में दाखिला नहीं ले सकते हैं (6–14 आयुवर्ग के दौरान) शिक्षा प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित करना ।

— कार्य अनुभव तथा ऐसे व्यावसायों के सम्बन्ध में बच्चों में विशेषज्ञ जानकारी का विकास करना जो व अपने समाज में करते है ।

— बच्चों में विभिन्न भाषाई क्षमताओं में निपुणता का विकास करना और उन्हें सुनने, बोलने, पढ़ने और समुचित ढंग से लिखने में समर्थ बनाना ।

— बच्चों में स्वस्थ जीवन के लिये आवश्यक अभिरुचियों, क्षमताओं और आदतों का विकास करना । बच्चों को उनके दिन प्रतिदिन के जीवन में वैज्ञानिक तथ्यों को समझाना ।

— उन में नागरिकता की भावना जाग्रत करना ।

— उनमें कायात्मक संख्याओं की जानकारी का विकास करना ।

यह लक्ष्य प्राप्त करने के लिये हमें 'कार्य-अनुभवों' आयोजन करना है और अनौपचारिक अंश-कालिक शिक्षा केन्द्रों में भाग लेने वाले बच्चों के लिये उपयुक्त शिक्षण सामग्री तैयार करनी होगी । इस प्रयोजन के लिये लक्ष्यों की परिभाषा-अध्ययन परिणामो और अध्ययन अनुभवों के आधार पर करनी होगी ।

शिक्षण सामग्री, समेकित दृष्टिकोण के सिद्धान्तों पर तैयार की जा सकती है जो उस क्षेत्र में कार्य अनुभवों से भी सम्बोधित होगी । प्रारम्भ में कार्य-अनुभव एक साधारण कार्य के रूप में शुरू किया जा सकता है और इसकी संकल्पना गांधी जी की 'बुनियादी शिक्षा' के सिद्धांत से पर्याप्त सम्बद्ध होने चाहिए । बच्चों को हाथ से कार्य करने में प्रशिक्षित करने और उसके फलस्वरूप उनके बौद्धिक और भावात्मक विकास में मदद देने पर प्रमुख जोर दिया जाना चाहिए । बाद में, इसका उद्देश्य बच्चों में तकनीकी क्षमता और रचनात्मक विचारधारा का विकास करने के लिए किया जा सकता है । शिक्षण कार्यक्रम का एक बड़ा भाग कार्य-अनुभव के लिय लगाया जाना चाहिए जिससे बच्चे न केवल सही अभिरुचियों और मूल्यों का विकास कर पायेंगे बल्कि उनमें ऐसी क्षमताओं की जानकारी और विकास करने में मदद मिलेगी जो वैज्ञानिक और उत्पादक कार्य के लिये उपयोगी हैं । बच्चों को विभिन्न विषयों पर प्रायोगिक परियोजनाएं शुरू करने के लिये भी प्रोत्साहित किया जा सकता है जिससे उन्हें खोज के माध्यम से प्रारम्भिक जानकारी प्राप्त करने और पर्यावरण की खोज करने में मदद मिलेगी ताकि वे 'जीवन' और 'शिक्षण' के बीच एक कड़ी स्थापित कर सकें, जैसा कि शिक्षा आयोग ने भी (1964-66) सिफारिश की है, ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य-अनुभव की शुरूआत कृषि सम्बन्धी विषयों और साथ ही ऐसे कार्यक्रमों में की जानी चाहिये जो उद्योगोन्मुख हों और काफी मात्रा में साधारण प्रौद्योगिकी प्रारम्भ करनी चाहिए । अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों में कोई निश्चित समय सारिणी नहीं होगी । केन्द्र, बच्चों की सुविधानुसार ही खोले जायेंगे । यह इसलिये आवश्यक हैं क्योंकि स्कूल छोड़ देने वाले जो छात्र ऐसे केन्द्रों में शामिल होंगे वे दिनके दौरान घरेलु कार्य में लगे होंगे ।

अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों को निरक्षर और/अथवा अर्ध-निरक्षर प्रौढ़ व्यक्तियों के लिये भी कार्यक्रम तैयार करने होंग । इनमें स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए साक्षरता कार्यक्रम सामुदायिक विकास तथा कृषि विस्तार शामिल हो सकता है । ग्रामीण क्षेत्रों के लिये यह उपयोगी होगा यदि औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्रों में तंजानिया के प्रयोगों से कुछ अनुभव प्राप्त किया जाए । भारत की तरह तंजानिया भी ब्रिटिश शासन की एक कालोनी थी और भारत की तरह ही वहां भी वही शिक्षा पद्धति थी जिसका विकास तंजानिया के लोगों की आवश्यकताओं की अपेक्षा ब्रिटन की सांस्कृतिक और राजनैतिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किया गया था । गांधीजी की तरह नेरेरे (1975) का कहना है कि ब्रिटेन से विरासत में प्राप्त शिक्षा पद्धति ग्रामीण क्षेत्रों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करती है और उनका सुझाव है कि शिक्षा का उद्देश्य सामान्य भलाई के लिये एक साथ रहने और एक साथ कार्य करने के सामाजिक लक्ष्यों को, विशेष रूप से प्रौढ साक्षरता कार्यक्रम के जरिये, बढ़ाना होना चाहिये । प्रौढ़ साक्षरता के महत्व पर बल देते हुए नेरेरे (1975) का कहना है कि "सर्वप्रथम हमें प्रौढ़ों को शिक्षित करना चाहिये । हमारे आर्थिक विकास पर, 5, 10 अथवा 20 वर्षों तक के लिये हमारे बच्चों का कोई प्रभाव नहीं पडेगा । अब प्रौढ़ों की अभिरुचियों का प्रभाव पड़ेगा ।" जहां तक ग्रामीण जन-संख्या का सम्बन्ध है, नेरेरे का मत है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के रूप में अनौपचारिक शिक्षा का उद्देश्य सामान्यत: कृषि में सुधार करने की आवश्यताओं को पूरा करना होना चाहिए । भारत में भी अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र को वस्तुत: एक ऐसा स्थान बनना चाहिये जहां लोग का करते हुए कुछ सीख सकें ।

इसके साथ ही, फैक्ट्रियों और उद्योगों के व्यावसायिक कामगरों को अपनी तकनीकी शैक्षिक अथवा व्यावसायिक क्षमता बढाने, और गृहणियों तथा सेवा निवृत्त व्यक्तियों को अपना विद्यमान ज्ञान बढ़ाने की आवश्यकता है । इस प्रयोजन के लिये अनौपचारिक शिक्षा का ऐसे कार्यक्रमों का विकास करना होगा जिनसे कार्य और शिक्षा के बीच विद्यमान भेद समाप्त हो सके । कुछ ऐसी परियोजनाएं तैयार करनी होंगी जिनमें शिक्षण की अपेक्षा अध्ययन पर बल दिया गया हो । समाज के सदस्यों द्वारा अपनाये जाने वाले विभिन्न व्यावसायों में नवीनतम तकनीकी जानकारी प्रदान करने के लिये प्रबन्ध करने होंगे । स्वास्थ्य और शरीर विज्ञान के क्षेत्र में विशेषज्ञों द्वारा प्रदर्शन उपयोगी सिद्ध होंगे ।

अनौपचारिक शिक्षा पद्धति की सफलता अन्ततः अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के लिए भर्ती किये जाने वाले अध्यापकों की कोटि पर निर्भर करेगी। इस प्रयोजन के लिये शिक्षक शिक्षा के विद्यमान कार्यक्रम में अनौपचारिक शिक्षा पर एक विशेष कार्यक्रम शामिल किया जा सकता है। जो सेवारत अध्यापक अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों में सेवा करना चाहें उनके लिए कार्यशालाओं और ग्रीष्म संस्थानों के रूप में कुछ पुनश्चर्या पाठ्यक्रम भी आयोजित किये जा सकते हैं। संस्थात्मक सामग्री तैयार करने, सामुदायिक विकास कार्यक्रमों और अनौपचारिक शिक्षा के केन्द्रों के कार्यक्रमों की पूरी प्रक्रिया में अध्यापकों का प्रत्यक्ष सहयोग प्राप्त करके उन्हें प्रशिक्षित करना उपयोगी होगा। इसके साथ ही अनौपचारिक शिक्षा की सफलता के लिये, कृषि केन्द्र, स्वास्थ्य केन्द्र, सामुदायिक विकास केन्द्र, समाज कल्याण विभाग, पशु चिकित्सा विभाग, उद्योग विभाग और शिक्षा विभाग जैसे विभिन्न प्रकार के संगठनों का निकट सहयोग प्राप्त करना अत्यन्त उपयोगी होगा।

अनौपचारिक शिक्षा पद्धति को दूसरे स्तर की योजना बनाना हानिकारक होगा। शिक्षण साधनों तथा शिक्षकों की कोटि के सम्बन्ध में कोई भेद करने से पद्धति का वस्तुतः दर्जा ही घटेगा। भारतीय अर्थ-व्यवस्था आवश्यकताओं तथा राजनीतिक सिद्धांतों की मांग की है कि औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा के विभिन्न स्वरूपों में संधि और समेकन के मुद्दों की तेजी से खोज की जाए। शैक्षिक अनुसंधान की सहायता से अनौपचारिक शिक्षा की एक विशेष प्रौद्योगिकी का विकास किया जाना चाहिये।

● ● ●

[पृष्ठ 25 का शेष]

अतः प्रत्येक गतिविधि के संबंध में सावधानी एवं बुद्धिमानीपूर्वक आयोजन की आवश्यकता है। इसका उद्देश्य, उनमें ज्ञान का विस्तार करना, उन्हें अपनी कल्पनाशक्ति का स्वच्छन्दता पूर्वक उपयोग करना तथा उद्देश्यपूर्ण आत्मनिर्भर सामाजिक जीवन की आधारशिला रखना होना चाहिए। 'मोमबत्ती बनाने' की साधारण गतिविधि द्वारा, जो अनेक प्रारम्भिक स्कूलों में प्रचलित है, इस विचार का और विस्तार किया जा सकता है।

इस गतिविधि में, यांत्रिक ढंग से पद्धति का पालन करना तथा मोमबत्ती प्राप्त करना ही अंतिम लक्ष्य नहीं होना चाहिए। इसके स्थान पर, कुछ विचारोत्तेजक प्रश्न बच्चों से पूछ जा सकते हैं तथा प्रत्येक पर विचार-विमर्श प्रारम्भ किया जा सकता है। यह प्रक्रिया इतनी सुगम नहीं है क्योंकि शब्दावली तथा संकल्पनाओं का सावधानीपूर्वक प्रयोग तथा उल्लेख करना होगा ताकि यह उन्हें बोधगम्य होने के साथ-साथ उनके ज्ञान का भी धीरे-धीरे और क्रमशः विस्तार करें :

प्रश्न हो सकते हैं :—

(i) मोमबत्ती केवल मोम से ही क्यों बनाई जाती है? क्या उसके स्थान पर किसी दूसरी वस्तु का प्रयोग नहीं हो सकता, जो आप जानते हों, यदि नहीं तो क्यों?

(ii) किस किस्म का धागा चुना जाता है और क्यों?

(iii) इसका अधिकतम आकार क्या होना चाहिए? क्या होगा यदि उसे बहुत पतला, बहुत लम्बा या बहुत छोटा बनाया जाए?

(iv) क्या किसी मोमबत्ती को कुछ असाधारण आकर्षकरूप, आकार या रंग दिया जा सकता है?

(v) क्या कोई व्यक्ति विभिन्न ज्वालाओं वाली, जैसे नीली, संतरी या गुलाबी रंगों की ज्वाला वाली मोमबत्ती बना सकता है?

(vi) क्या प्रयोग की हुई मोमबत्ती को पुनः आकृति में लाया जा सकता है? यदि हां, तो क्या इसकी कार्यकुशलता एवं स्वरुप वैसा ही रहेगा या बदल जाएगा यदि हां, तो क्यों?

बच्चों द्वारा प्राथमिक स्कूलों में ही शिक्षा छोड़ देने का एक कारण उन्हें पेश आनेवाली मानसिक नीरसता है। सर्वव्यापी प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य दूर नहीं है। यदि स्कूल, उसके कमरे और उसका वातावरण सजीव बन जाए जहां बच्चों के प्रस्तावों की उपेक्षा न करके उनका आदर किया जाए, जहां वे अपने को सुरक्षित समझें और जहां उनकी पहल एवं तत्परता को मान्यता मिले, और जहां उन्हें अधिक आनन्द प्राप्त हो। ऐसे संस्थात्मक आचरण का विकास, केवल कार्यसंबंधी शिक्षा को सही ढंग से लागू करके तथा अन्य विषयों का इसके साथ संबंध स्थापित करके किया जा सकता है। सम्पूर्ण पाठ्यचर्या को इस प्रकार तैयार एवं विकास करने की आवश्यकता है कि बच्चे न केवल स्कूलों में रहना पसंद करें अपितु स्कूल, अध्यापक, मजदूर शिक्षा तथा पूरे समाज के प्रति एक रचनात्मक दृष्टिकोण का विकास करें। केवल तभी स्कूल समाज का एक सक्रिय अंग बन सकते हैं और केवल बेंत मारने, रटने तथा अनुपालन के ही स्थान नहीं बने रहेंगे।

● ● ●

बीस हज़ार करोड़ रुपये का प्रश्न

— बी० एस० गुप्त

एक दशक पूर्व प्रो० गुन्नार मिरडल ने एशियाई गरीबी के बारे में अपने विस्तृत अध्ययन में कहा था कि व्यापक निरक्षरता अब भी तीसरे विश्व के देशों की मुख्य समस्या बनी हुई है। भारत के बारे में तो यह आज भी सत्य है। स्वतन्त्रता के तीस वर्षों के बाद भी भारत में लगभग 70 प्रतिशत लोग निरक्षर हैं और इन्हें शिक्षित करना एक महान कार्य है। केन्द्रीय शिक्षा मंत्री, डा० प्रताप चन्द्र चन्द्र का अनुमान है कि भारत में निरक्षरता को समाप्त करने के लिए एक अनिवार्य योजना पर लगभग 20,000 करोड़ रुपये प्रति वर्ष लागत आयेगी और यह कार्य की विशालता को समझने का एक अच्छा सूचक है।

जब भारत आजाद हुआ तो यह आशा की जाती थी कि प्राथमिक शिक्षा का काफी विस्तार होगा और स्कूलों में दाखिला बढ़ेगा। इसके साथ-साथ यह भी आशा की गई थी कि देश में प्रौढ़ शिक्षा के लिए एक प्रभावशाली साक्षरता अभियान प्रारम्भ किया जायेगा। प्रौढ़ों को शिक्षित करने से बच्चों की शिक्षा को और अधिक प्रभावशाली बनाने में सहायता मिलेगी। यह बिल्कुल सच है कि अशिक्षित माता-पिता के बच्चे शैक्षिक उपलब्धियों में पीछे रह जाते हैं। वे सहज ही निरक्षर बन जाते हैं; वे स्कूल भी छोड़ जाते है और बार-बार दाखिला लेते है।

भारत में इस स्थिति की विडम्बना यह है कि यद्यपि, उपनिवेशीय युग की समाप्ति से पूर्व देश में प्रौढ़ शिक्षा के लिए काफी उत्साह था परन्तु स्वाधीनता के बाद उसमें कमी आ गई। दूसरी और तीसरी पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा पर कुल परिव्यय का क्रमशः 1.9 प्रतिशत तथा 1.4 प्रतिशत, 'सामाजिक शिक्षा' के लिए आवंटित किया गया था। केवल चौथी पंचवर्षीय योजना में, एक विशाल प्रौढ़ साक्षरता अभियान प्रारंभ करने के लिए नई दिशा प्रदान करने के वास्ते सामाजिक शिक्षा के लिए विनियोग बढ़ाया जाना था। तथापि, भारत में निरक्षरों की संख्या बढ़ रही है। साक्षरों की प्रतिशतता 1951 में 16.6 से बढ़ कर 1975 में लगभग 30.0 हो गई है, और संख्या की दृष्टि से निरक्षरों की संख्या में कई लाख की वृद्धि हुई है, यह जनसंख्या में अपार वृद्धि के कारण ही हुआ है। इस प्रवृत्ति को रोकना है और जितना जल्द रुक सके उतना ही अच्छा रहेगा।

दो पहलू

भारत में निरक्षरता की समस्या के दो पहलू हैं—बच्चों में निरक्षरता और प्रौढ़ों में निरक्षरता। राष्ट्रीय विकास में मदद करने के उद्देश्य से, समस्या के दोनों पहलुओं पर तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है। तथापि, इस लेख में, प्रौढ़ निरक्षरता को समाप्त करने के लिये एक कार्रवाई कार्यक्रम सुझाया गया है, जिसे कार्यान्वित करने के बाद ही अपेक्षित परिणाम निकलेंगे। परन्तु यह बहुत कुछ राजनैतिक संकल्प पर, जिसकी भारत में कमी है, तथा सरकारी एजेन्सियों के साथ-साथ विभिन्न प्राइवेट तथा स्वैच्छिक संगठनों के सहयोग पर निर्भर करता है। प्रौढ़ निरक्षरता की समस्या एक विशाल समस्या है तथा इसके समाधान के लिये लोगों द्वारा इसमें वास्तविक रूप से अपना सहयोग देना आवश्यक है। केवल सरकारी एजेंसियां ही सब कुछ नहीं कर सकती हैं क्योंकि उनके पास न तो मानवीय और न ही वित्तीय पर्याप्त साधन हैं।

प्रौढ़ निरक्षरता को समाप्त करने के कार्यक्रम को बताने से पहले कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिन पर विचार करने तथा मतैक्य की आवश्यकता है। पहला यह है कि भारत में प्रौढ़ निरक्षरों को दी जाने वाली शिक्षा की विषयवस्तु क्या हो? क्या उनके लिये भी वही पाठ्यचर्या हो जो बच्चों के लिये होती है? दूसरा और जो पहले से संबंधित है प्रौढ़ों को दी जाने वाली शिक्षा की अवधि?

पहला प्रश्न प्रत्यक्ष रूप से हमारी राष्ट्रीय आकांक्षाओं और राष्ट्रीय विकास से संबंधित है। प्रौढ़ शिक्षा के किसी भी कार्यक्रम में, जिसका हम विकास कर सकते हैं, हमें यह विचार करना है कि शिक्षा के माध्यम से हम लोगों को क्या सिखाना चाहते हैं और इससे उन्हें क्या बनना है। क्योंकि 'कुछ सीखना' और 'कुछ बनना' प्रौढ़ शिक्षा सहित सभी प्रकार की शिक्षा का एक अनिवार्य अंग है; प्रौढ़ों को दी जाने वाली शिक्षा की विषय-वस्तु में इन दो बुनियादी बातों की व्यवस्था होनी चाहिये। अतः यह जीवन के लिये कार्यात्मक होनी चाहिये। और इस प्रयोजन के लिये पढ़ना, लिखना और सीखना इन तीन बातों के ज्ञान के अतिरिक्त, भारत के प्रौढ़ों को अपने वातावरण का बेहतर जीवन के लिये उपयोग करने में मदद दी जानी चाहिये। इसके लिये प्रौढ़ों के लिये शिक्षा का एक कार्यक्रम तैयार करना होगा जिसमें उत्पादन कैसे बढ़ाना है,

स्वास्थ्य जीवन के संबंध में ज्ञान, संचार साधनों का महत्व और परिवार नियोजन आदि की भी जानकारी दी जाए। और इन सबके अतिरिक्त प्रजातन्त्र के बुनियादी सिद्धान्तों, व्यक्तियों के अधिकारों और कर्तव्यों की भी समुचित जानकारी दी जाए ताकि प्रौढ़ व्यक्ति अच्छे नागरिक बन सकें।

दूसरे शब्दों में ए० ए० लिवराइट तथा एन० हेगुड के शब्दों में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में निम्नलिखित बातें शामिल होंगी:—

"साक्षरता और मूल-भूत शिक्षा; व्यावसायिक अथवा कार्य प्रशिक्षण; शारीरिक तथा वैयक्तिक विकास, साहित्य, कला, नाटक और अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रमों के संबंध में शिक्षा के साथ-साथ, स्वास्थ्य, उपभोक्ता और पारिवारिक समस्याओं के विषय में शिक्षा, सामुदायिक विकास, सामाजिक शिक्षा और सामुदायिक संगठन; राजनीतिक और नागरिक शिक्षा, धार्मिक और आर्थिक शिक्षा. . . ."

शिक्षा के इस प्रकार के कार्यक्रम के लिए प्रौढ़ों की शिक्षा के लिए दो-तीन वर्ष से अधिक समय की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि बाद में प्रौढ़ अपने बच्चों की शिक्षा की देख-भाल स्वयं करने लगेंगे इसलिये कुछ समय बाद उनका फिर से निरक्षर बन जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

कार्रवाई कार्यक्रम

अब कार्रवाई कार्यक्रम को लेते हैं। प्रौढ़ों के बीच निरक्षरता का उन्मूलन करने के कार्यक्रमों को दो स्तरों पर आयोजित करना होगा—एक शहरी क्षेत्रों के लिये और दूसरा ग्रामीण क्षेत्रों के लिये।

क — शहरी क्षेत्र

(1) ऐसे सभी औद्योगिक संगठनों को जिनमें 20 या इससे अधिक व्यक्ति कार्य करते हों, उस संगठन में कार्य करने वाले सभी प्रौढ़ निरक्षरों को शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करने के लिए जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए। औद्योगिक संगठनों को ऐसा स्वैच्छिक आधार पर, अथवा यदि आवश्यक हो तो कानूनी बाध्यता द्वारा करना चाहिए।

औद्योगिक संगठनों को एक अपना शिक्षण संवर्ग रखने के लिए जिसका वेतन संगठन ही दे, जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए। कक्षाओं में शिक्षण के लिए आवश्यक सुविधाएं जैसे ब्लैक बोर्ड, चाक तथा ऐसी ही अन्य वस्तुएं प्रदान करने के लिए भी संगठनों को ही उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए।

औद्योगिक संगठनों द्वारा इस प्रकार किये गये खर्च को स्थापना खर्च के एक भाग के रूप में समझा जाना चाहिए तथा उस पर कर में छूट मिलनी चाहिए औद्योगिक संगठन शीघ्र ही यह अनुभव करेंगे कि निरक्षर प्रौढ़ श्रमिकों को शिक्षित करने के उनके प्रयासों के फलस्वरूप कुशलता में सुधार तथा उत्पादन में वृद्धि हुई है।

(2) शहरी क्षेत्रों में इस समस्या का सामना करने का दूसरा तरीका सार्वजनिक कर्मचारियों के माध्यम् का होगा। प्रत्येक शहर, नगर और कस्बे में, सचिवालय से लेकर नगरपालिका कार्यालय तक, नगर के आकार के अनुसार, कार्यालय होता है। इन सार्वजनिक कर्मचारियों, अर्थात् भारत सरकार/राज्यों के सचिव से लेकर अपर श्रेणी लिपिकों की सेवाओं का शहरी क्षेत्रों में लाभदायक ढंग से उपयोग किया जा सकता है। इन सभी सार्वजनिक कर्मचारियों को अपने क्षेत्र में अथवा किसी भी क्षेत्र में, दो-तीन वर्ष की अवधि के दौरान कम से कम पांच प्रौढ़ों को शिक्षित करने का कार्य सौंपा जाना चाहिए।

शिक्षा के दो/तीन वर्षों के बाद, शहरी क्षेत्रों में इन प्रौढ़ों की यह जांच करने के लिए कि क्या उन्होंने अपेक्षित ज्ञान प्राप्त कर लिया है, एक साधारण परीक्षा ली जानी चाहिए। उन सभी लोगों को जो उस परीक्षा में सफल हो जाएं, एक प्रमाण-पत्र दिया जाना चाहिए।

उन सार्वजनिक कर्मचारियों को जिन्होंने यह कार्य किया जिनके अधीन सभी पांच प्रौढ़ों ने अपेक्षित प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लें, एक/दो अग्रिम वेतन-वृद्धि दी जानी चाहिए।

उन प्रौढ़ों को, जो इस प्रकार प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लें, अपने अपने क्षेत्र में इस कार्य को करने के लिए दो बच्चों को शिक्षा प्रदान करने की जिम्मेदारी सौंपी जानी चाहिए।

(3) शहरी क्षेत्रों में कक्षा दस से मास्टर्स डिग्री तक के विद्यार्थियों को भी, प्रत्येक को दो-तीन वर्ष तक दो प्रौढ़ों को शिक्षित करने का कार्य सौंपा जाना चाहिए तथा इस कार्य को उनके द्वारा की गई समाज सेवा का एक अंग समझा जाना चाहिए। इन विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र डिप्लोमा अथवा डिग्री, जैसी भी स्थिति हो प्रदान करने के लिए इस सामाजिक सेवा को एक अनिवार्य शर्त बना दिया जाना चाहिए।

प्रौढ़ निरक्षरों के लिए पुस्तकों और लेखन सामग्री आदि के व्यय तथा कक्षाओं के लिए कमरे व अध्यापन की सुविधाएं राज्य सरकार द्वारा प्रदान की जाएंगी। शहरी क्षेत्रों में उपलब्ध स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों के अध्यापकों को, यदि संभव हो, यह कार्य सौंपा जा सकता है।

ख — ग्रामीण क्षेत्र

(1) शहरी क्षेत्रों में उपलब्ध अध्यापकों की सेवाओं का शहरी क्षेत्रों के आस-पास के ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने के लिए उपयोग किया जाना चाहिए। नगरों

[शेष पृष्ठ 38 पर]

नई शिक्षा नीति के प्रति शिक्षकों का दृष्टिकोण
10+2+3 — जांच सम्बन्धी रिपोर्ट

—एम० श्री राम मूर्ति

केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने वर्तमान सत्र से 10+2+3 प्रणाली प्रारम्भ की है। उपलब्ध साधनों के अन्तर्गत, नई प्रणाली के प्रति अध्यापकों की प्रतिक्रिया के अध्ययन का आयोजन आवश्यक समझा गया।

दृष्टिकोण का अर्थ

'दृष्टिकोण' में परस्पर सम्बन्धित तीन बातें निहित हैं। जब इनका एक प्रणाली में समावेश किया जाता है तो ये आपस में एक दूसरे पर निर्भर करती हैं। किसी वस्तु के बारे में किसी व्यक्ति का ज्ञान उसके अनुभवों और उस वस्तु के प्रति उसकी कार्य प्रवृत्तियों से प्रभावित होता है और उस वस्तु के प्रति उसके ज्ञान में परिवर्तन होने से उसके अनुभवों और उसके प्रति उसकी कार्य प्रवृत्तियों में परिवर्तन होगा। अतः दृष्टिकोण की परिभाषा किसी वस्तु के ईर्द-गिर्द के तीन अंगों की स्थिर प्रणाली के रूप में की जा सकती है: वस्तु के बारे में विचार—ज्ञान पक्ष; वस्तु से सम्बन्धित प्रभाव—अनुभव पक्ष; तथा वस्तु के बारे में कार्य करने की प्रवृत्ति—कार्य प्रवृत्ति पक्ष। उपलब्ध प्रमाण इस बात का संकेत देते हैं कि किसी व्यक्ति के विभिन्न दृष्टिकोण उस मात्रा तक भिन्न हो सकते ह जिस मात्रा में वे एक दूसरे से अलग हैं या एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। कुछ दृष्टिकोणों का अस्तित्व पूर्ण एकाकीपन की हालत में होता है। तथापि, उनमें से बहुत से दूसरे दृष्टिकोणों के साथ समूह बना लेते हैं, परन्तु शायद ही किसी व्यक्ति के सभी विचार अन्तर-सम्बद्धता की इतनी अधिक मात्रा प्रदर्शित करते हों कि हमारा यह कहना न्यायसंगत है कि किसी व्यक्ति की एक ही विचारधारा है।

एक ही विचारधारा वाला व्यक्ति किसी सामाजिक वस्तु के संबंध में सामान्यतया एक अनुकूल-प्रतिकूल "मापदण्ड पैमाने" के अनुसार चरम सीमा तक पहुँच जाता है। इस पहलू का प्रयोग करके, दृष्टिकोण की संकल्पना का उपयोग व्यक्ति के कार्यों को समझने और अनुमान लगाने के लिए किया जा सकता है।

मापदण्ड

किसी व्यक्ति के दृष्टिकोणों का अनुमान, वस्तु के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं, उसके स्पष्ट कार्यों और वस्तु के संबंध में उसके विचार, भावना और कार्य करने के तरीकों के बारे में उसकी मौखिक बातों के आधार पर ही लगाया जा सकता है।

दृष्टिकोणों को मापने की सभी प्रणालियों में सर्वाधिक उपयोग में लाई जाने वाली तथा सावधानीपूर्वक तैयार की गई और जाँची गई प्रणाली है "दृष्टिकोण पैमाना"। दृष्टिकोण पैमाने में अनेक बातें तथा विषय शामिल होते हैं जिनका कोई व्यक्ति उत्तर देता है। उसके उत्तर देने के ढंग से उसके दृष्टिकोण के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है।

जाँच की मदों का चुनाव

इस बात का निर्णय करने में कि जाँच में कौन सी मद शामिल होंगी और कितनी वस्तुओं की जरूरत होगी, वर्तमान अध्ययन के लिए निम्नलिखित चार मापदण्डों पर विचार किया गया है:—

(i) **विभेदक कार्य :** ऐसे विषय अथवा विवरण तैयार किए गए जो वास्तव में व्यक्तियों में विभेद करते हैं, अर्थात्, विभिन्न दृष्टिकोणों वाले व्यक्ति विषयों का रीतिबद्ध ढंग से विभिन्न प्रकार उत्तर दें।

(ii) **विभेदन की प्रखरता :** विषयों का निर्माण इस प्रकार से किया गया कि वे सभी व्यक्ति जो 10+2+3 प्रणाली के कार्यान्वयन से सम्बन्धित प्रस्ताव के पक्ष में थे, उन व्यक्तियों की अपेक्षा जो इसके विरुद्ध थे, जाँच के पक्षपूर्ण परिणाम में आगे आयें; वस्तुतः कोई गलती नही होनी चाहिए।

बहुत कम गलती के साथ विषयों को अन्तिम जाँच के लिए जोड़ा जाता है।

(iii) **सम्पूर्ण जांच में विभेद :** दृष्टिकोण जांच के अन्तर्गत विभिन्न स्तरों पर प्रभावी अन्तर की मात्रा भिन्न हो सकती है। ऐसे लोगों के दृष्टिकोण अन्तर की जांच विश्वसनीय तौर पर की जा सकती है जो जांच के मध्य में आते हैं, जबकि चरम सीमा वाले लोगों के बीच दृष्टिकोण अन्तर अस्पष्ट हो सकते हैं। यह बात कि इस बारे में दृष्टिकोण जांच प्रायः अपर्याप्त होती है, सम्भवतः उन तकनीकी कठिनाईयों के कारण होती है जो विषयों को ढूंढने में आती है, जो वास्तव में जांच की चरम सीमा पर विभेद करती है। इस पहलू का सामना करने के लिए विषयों को चुनने में अधिकतम सावधानी बरती गई थी।

(iv) **विश्वसनीयता के लिए विषयों की कम से कम संख्या :** किसी जांच में जितने अधिक विषय होंगे उतनी ही जांच विश्वसनीय होगी। तथापि, जांच में कुशलता तथा व्यावहारिकता को ध्यान में रखने से, उन कुल विषयों की संख्या काफी सीमित हो जाती है जिन्हें दृष्टिकोण जांच में आसानी से शामिल किया जा सकता है।

उपरोक्त सभी पहलुओं पर विचार करते हुए 75 विवरण तैयार किये गए थे। ये विवरण रा० शै० अनु० प्र० परि० की सूचना पुस्तिकाओं द्वारा प्रदान की गई सूचना, प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्रियों के लेखों तथा लेखकों द्वारा चुने गये साहित्य के आधार पर लिखे गये थे। जांचकर्ता ने जांच की वैधता स्थापित करने के लिए सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों ही प्रकार के विवरणों की एक समान संख्या चुनी। 10+2+3 शिक्षा पद्धति के कार्यान्वियन के विरोध में नकारात्मक विषय तथा पक्ष में सकारात्मक विषय चुने गये थे।

जांच का विवरण

वर्तमान अध्ययन के लिए, लीकर्ट द्वारा 1932 में विकसित विख्यात संकलन-मान प्रणाली का प्रयोग किया गया, जिसमें निम्नलिखित बातें शामिल थीं:

(क) लेखक के अनुसार, विचाराधीन विषय से सम्बन्धित विवरणों का बड़ी संख्या में संकलन; ।

(ख) उपरोक्त विवरणों का विषय-समूहों में प्रयोग जो प्रत्येक विवरण के बारे में यह संकेत दे सके कि क्या वे सहमत हैं, निर्णय नहीं ले सके हैं, असहमत हैं या पूर्णतः असहमत हैं।

(ग) प्रत्येक व्यक्ति के सभी उत्तरों को जोड़कर कुल अंकों का निर्धारण, मद संख्या 2 में बताई गयी श्रेणियों में मद सं० 5,4,3,2 और 1 के साथ क्रमशः स्वीकारात्मक मदों के लिए अंक तथा प्रतिकूल मदों के लिए अंक कम करके, अर्थात् पूर्ण सहमति के लिए-1 अंक और पूर्णतः असहमति के लिए-5 अंक आदि।

(घ) सर्वाधिक विभेदक विषय चुनने के लिए विषय विश्लेषण करना उपरोक्त पहले चरण को पूरा करने के लिए 75 विवरण तैयार किये गये। इन 75 विवरणों को 50 शिक्षकों को दिया गया जिन्होंने पूर्णतया स्वीकृत से लेकर पूर्णतया अस्वीकृत तक 5 विषयों पर अपनी राय दी। इस तरह चरण 2 और 3 को पूरा किया गया। चरण 4 के लिए, एक विषय विशेष पर प्राप्त अंकों तथा सभी विषयों में कुल प्राप्तांकों के बीच सह-सम्बंध पाया गया। सर्वाधिक सह-संबन्ध-वाले विषयों को अर्थात् जिनमें आपसी निकटता है या जो वही बात मापते है जो समूह के अन्य विषय मापते हैं, अन्तिम जांच के लिए रखा जाता है। स्तर-अन्तर पद्धति द्वारा गुणांकों की गणना की गई। उस प्रयोजन के लिए प्रयोग किया गया सूत्र है:

$$\text{रो} = 1 - \frac{6 - \text{डी}^2}{\text{एन}\,(\text{एन}^2 - 1)}$$

गारेट द्वारा बताए गए महत्वपूर्ण मूल्यों के अनुसार मूल्य 0.325 (तथा अधिक) 1% के स्तर पर महत्वपूर्ण है, जिन्हें वर्तमान अध्ययन में शामिल किया गया है। ऐसे महत्वपूर्ण विषयों को रख लिया गया।

विवेचन

कुल मिलाकर 60 विषय चुने गये। उनमें से दो विषय (क्रम संख्या 17 तथा 48) तटस्थ अर्थ (कोई निर्णय नहीं) वाले हैं तथा दो विषयों (क्रम संख्या 14 तथा 25) को नियन्त्रण विषय (विपरित अर्थ वाले) के रूप में प्रयोग करने के लिए तैयार किया गया। शेष विषयों को सकारात्मक तथा नकारात्मक विवरणों में

समान रूप से बांटा गया, जिनमें 28 सकारात्मक तथा 28 नकारात्मक विवरण थे। संयोगवश छोड़े गये सभी विषयों में (75 विषयों की मूल सूची में से) जिनकी संख्या 15 थी, 7 नकारात्मक तथा 7 सकारात्मक और 1 तटस्थ था। सकारात्मक तथा नकारात्मक विषयों की इस सम संख्या से जो संयोगवश ही थी, जांच में वैधता संबंधी पहलू को बल मिला। इस प्रकार दृष्टिकोण जांच का उत्तर देने वाले व्यक्ति द्वारा अधिक संख्या में विषयों से मेल खाने वाले किसी पक्षपात को संभावना समाप्त हो जाती है। इस तरह, अन्तिम रूप से चुने गये कुल 60 विषयों में 28 सकारात्मक, 28 नकारात्मक, 1 तटस्थ तथा 2 जांच विषय थे (जिनमें से केवल एक विषय पर चर्चा की जानी है)।

आंकड़ों का संकलन तथा विश्लेषण :—

अन्तिम दृष्टिकोण जांच को, माध्यमिक स्कूलों में कार्य करने वाले 1000 अध्यापकों में परिचालित किया गया जिसका ब्योरा निम्नलिखित है :

तालिका 1

दृष्टिकोण जांचों का संकलन तथा विभाजन

क्रम संख्या	स्कूल की किस्म	वितरित किये गये जांचों की कुल संख्या	वापस प्राप्त जांचों की कुल संख्या	अन्तिम रूप से स्वीकृत संख्या
1.	सरकारी .	200	178	170
2.	मिशनरी .	400	362	350
3.	निजी .	400	256	230
	जोड़ .	1000	796	750

नई प्रणाली के प्रति दृष्टिकोण को सही प्रतिनिधित्व देने के उद्देश्य से विभिन्न प्रबन्धों के अधीन विभिन्न स्कूलों में कार्यरत अध्यापकों के दृष्टिकोण प्राप्त करना बेहतर समझा गया। इसके अतिरिक्त केवल 750 जांचों को स्वीकार किया गया और शेष 46 (796—750=46) को तकनीकी कारणों से छोड़ दिया गया।

गणना

प्राप्त दृष्टिकोण जांचों में सकारात्मक विषयों के लिए 5, 4, 3, 2 तथा 1 अंक और नकारात्मक विषयों के लिए 'पूर्णत: स्वीकृत' 'स्वीकृत' 'अनिर्णित', 'अस्वीकार' "पूर्णत: अस्वीकृत" के लिए क्रमश: 1, 2, 3, 4 और 5 अंक दिये गये। सभी दृष्टिकोण जांचों को अंक देने के बाद प्रत्येक विषय के लिए प्राप्त अंकों को (कुल अंक, अर्थात् प्रत्येक विषय के लिए 750 समूहों में सभी व्यक्तियों के अंकों का जोड़) निम्नलिखित तालिका में विषयानुसार निकाली गई माध्यिका के, साथ दिया गया है।

तालिका 2

विषयानुसार निकाले गए माध्यिका अंक तथा कुल अंक (विषयों की क्रम संख्या परिशिष्ट 1 से है)

विषयों की क्रम संख्या	कुल अंक	माध्यिका अंक	अध्यापकों की संख्या
1	2	3	4
नं० 1 . .	1988	1358	750
नं० 2 . .	3456	2348	750
नं० 3 . .	3555	2568	750
नं० 4 . .	2968	2256	750
नं० 5 . .	3005	2359	750
नं० 6 . .	3010	2300	750
नं० 7 . .	2100	1798	750
नं० 8 . .	3658	2688	750
नं० 9 . .	1768	1266	750
नं० 10 . .	2050	1458	750
नं० 11 . .	2166	1100	750
नं० 12 . .	2950	2560	750
नं० 13 . .	3158	2896	750
नं० 14 . .	3540	2888	750
नं० 15 . .	2610	1986	750
नं० 16 . .	2450	1876	750
नं० 17 . .	2800	2300	750
नं० 18 . .	3578	2876	750
नं० 19 . .	3355	2333	750
नं० 20 . .	3465	2865	750
नं० 21 . .	3000	2042	750
नं० 22 . .	3016	2442	750
नं० 23 . .	1864	878	750
नं० 24 . .	3505	2766	750
नं० 25 . .	3688	2456	750
नं० 26 . .	3128	2674	750
नं० 27 . .	3006	2346	750
नं० 28 . .	3000	2015	750

1	2	3	4
नं० 29 . .	3254	2469	750
नं० 30 . .	2765	1156	750
नं० 31 . .	2254	1200	750
नं० 32 . .	3122	2312	750
नं० 33 . .	1876	989	750
नं० 34 . .	3258	2690	750
नं० 35 . .	3345	2356	750
नं० 36 . .	2486	1290	750
नं० 37 . .	2578	1765	750
नं० 38 . .	3668	2982	750
नं० 39 . .	3440	2500	750
नं० 40 . .	1575	980	750
नं० 41 . .	3358	2456	750
नं० 42 . .	3440	2687	750
नं० 43 . .	3250	2450	750
नं० 44 . .	3452	2395	750
नं० 45 . .	3336	2287	750
नं० 46 . .	3396	2438	750
नं० 47 . .	3286	2560	750
नं० 48 . .	3000	2065	750
नं० 49 . .	2568	982	750
नं० 50 . .	3480	2765	750
नं० 51 . .	2800	1220	750
नं० 52 . .	3218	2268	750
नं० 53 . .	2100	1118	750
नं० 54 . .	3175	2348	750
नं० 55 . .	2018	1004	750
नं० 56 . .	3166	2314	750
नं० 57 . .	2561	1278	750
नं० 58 . .	2687	1568	750
नं० 59 . .	3120	2340	750
नं० 60 . .	3000	2080	750

व्याख्या

जांच से प्राप्त अंकों (संकलन स्तर जो कि वर्तमान अध्ययन के लिए प्रयोग किया गया है) की व्याख्या केवल उन अर्थों में की जा सकती है जहां एक व्यक्ति के अंक दूसरे व्यक्ति (शिक्षकों) के अंकों के विभाजन के अनुरूप हों; तथापि अंकों का कोई निरपेक्ष अर्थ नहीं है। सम्भावित अधिकतम और न्यूनतम अंकों की व्याख्या स्पष्ट है—न्यूनतम अंक का अर्थ नकारात्मक दृष्टिकोण और अधिकतम अंकों का अर्थ सकारात्मक दृष्टिकोण है। वर्तमान जांच में प्राप्तांकों की व्याख्या करने के लिए कुछ कल्पनाएं की गई थीं जो केवल वर्तमान अध्ययन तथा विचाराधीन विषय तक सीमित हैं।

(क) यह निर्णय किया गया कि अध्यापकों द्वारा अत्याधिक रूप से समर्थित विवरणों पर विचार करने के लिए एक तर्क-संगत विघटन-बिन्दु अपनाया जाए। क्योंकि, माध्यिका उस व्यक्ति विशेष के अंक हैं जिसके नीचे कुल व्यक्तियों की आधी संख्या तथा उससे ऊपर व्यक्तियों की शेष आधी संख्या है इसलिए यह निर्णय किया गया कि और आगे अध्ययन के लिए दृष्टिकोण जांच में वर्णित प्रत्येक विवरण के लिए माध्यिका को लिया जाए।

(ख) दृष्टिकोण जांच का उत्तर देने वाले अध्यापकों की कुल संख्या 750 थी। अतः प्रत्येक विषय के लिए संभावित अंकों की संख्या 750 से 3750 के बीच है (क्योंकि अंक पांच सूत्री जांच के आधार पर लगाए गए थे)। अतः एक विषय के लिए सम्भावित तटस्थ क्षेत्र या मध्य अंक है : 3750-750/2 =1500+750 (न्यूनतम अंक या प्रारम्भिक बिन्दु)=2250।

(ग) माध्यिका अंक व्यक्तियों को दो आधे हिस्से में बांटता है। अतः वे सभी अंक जो माध्यिका अंक से ऊपर है, वे 50% या इससे अधिक सहमति दर्शाते हैं। जैसा कि ऊपर नं० 'ख' में चर्चा की गई है ऐसे सभी अंक (माध्यिका) जो 2250 की सीमा से ऊपर हैं, दृष्टिकोण जांच में दिए गए विषय या विवरण के संबंध में 50% या उससे अधिक सहमति दर्शाते हैं (अध्यापकों द्वारा दिए गए अंकों के हिसाब से)।

(घ) ऐसे सभी विवरणों को, जिनके बारे में आधे से अधिक अध्यापकों में इतनी सहमति है, 10+2+3 प्रणाली के प्रति अध्यापक समुदाय का स्पष्ट दृष्टिकोण समझा जाना चाहिए (क्योंकि नमूना एक प्रतिनिधितात्मक नमूना है)।

उपरोक्त मान्यताओं के आधार पर सभी विवरणों को, जिनका माध्यिका अंक 2250 या अधिक था, इकट्ठा किया गया। उनकी संख्या 36 थी तथा उन्हें तालिका 3 में दिखाया गया है।

तालिका 3

10+2+3 प्रणाली के प्रति अधिकांश अध्यापकों का दृष्टिकोण दर्शाने वाले विवरण

क्रम संख्या	परिशिष्ट 1 में नं०	विवरण	माध्यिका मूल्य
1	2	3	4
1.	2	यह मुख्यतः व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिये विद्यार्थियों को तैयार करती है, इस प्रकार साहित्य तथा ललित कलाओं के सौंदर्यपूरक मुल्यों की अवहेलना होती है।	2348
2.	3	कार्य-अनुभव के लिये अवसर प्रदान करती है जो इसके पक्ष में एक जोरदार तर्क है।	2568
3.	4	कार्यानुभव के लिये की गई व्यवस्था के कारण श्रम की प्रतीष्ठा को बढ़ाती है।	2256
4.	5	यह प्रणाली विद्यार्थियों के विभिन्न हितों को ध्यान में रखती है।	2359
5.	6	विद्यार्थियों पर काम का बोझ बढ़ जाता है।	2300
6.	8	पाठ आयोजन तथा यूनिट मूल्यांकन आदि के रूप में अध्यापकों का कार्य-भार बढ़ जाता है।	2562
7.	12	यह वर्तमान सामाजिक आवश्यकताओं को पूर्णतः पूरा नहीं करती क्योंकि यह योजना एक दशाब्दी पहले बनाई गई थी।	2560
8.	13	व्यक्तियों के नैतिक विकास का संतोषजनक प्रयास नहीं किया जाता।	2896
9.	14	यह बहुत खर्चीली तथा समय लेने वाली प्रणाली है।	2888
10.	17	कोई टिप्पणी करने से पहले इसे अजमाया जाना चाहिये क्योंकि यह एक महत्वपूर्ण प्रयत्न है।	2300
11.	18	अपनी एकरूप पद्धति के कारण यह राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देती है।	2876
12.	19	विज्ञान तथा गणित को दिया गया महत्व अन्य विषयों की तुलना में प्रतिकूल है।	2333
13.	20	आन्तरिक मूल्यांकन को शामिल करना एक प्रशंसनोय कदम है।	2865
14.	22	शैक्षिक प्रणाली में प्रायः परिवर्तनों के कारण छात्रों की प्रगति रुक जाने से उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।	2442
15.	24	यह प्रणाली विद्यार्थियों को अनेक व्यावसायिक पाठ्यक्रम उपलब्ध कराती है।	2766
16.	25	कुल मिलाकर यह शिक्षा प्रणाली बहुत मितव्ययी और आसानी से लागू करने योग्य है।	2456
17.	26	इस प्रणाली के लिये बेहतर शिक्षण स्टाफ की आवश्यकता है या स्टाफ के वर्तमान सदस्यों को कम-से-कम कुछ विशष प्रशिक्षण अवश्य दिया जाए।	2674
18.	27	सभी क्षेत्रों में सुझाई गई पाठ्यचर्या सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये संतोषजनक नहीं है।	2346
19.	29	यह प्रणाली स्वागत योग्य है क्योंकी इससे छात्रों के लिये लोक प्रिय तथा सात्विक दोनों ही लक्ष्यों की परिकल्पना है।	2469

1	2	3	4
20.	32	इस प्रणाली में रचनात्मक गतिविधियों तथा उत्पादकता की व्यवस्था है अतः यह पिछली प्रणाली से बेहतर है।	2312
21.	34	नई प्रणाली में कार्य और सीखने के अंतर को कम कर दिया गया है जो कि पहली प्रणाली में एक सुधार है।	2690
22.	35	विज्ञान अध्यापन के लिए इस प्रणाली में शामिल "प्रौद्योगिकी परियोजना" की योजना वास्तव में विद्यार्थियों में वैज्ञानिक रुचि पैदा करती है।	2356
23.	38	विज्ञान अध्यापन की "प्रौद्योगिकी परियोजना" प्रणाली, अपनी अंतर-विषयक नीति के माध्यम से विज्ञान तथा समाज के बीच अलगाव को समाप्त करने में सहायता देती है।	
24.	39	प्रत्येक छात्र को ग्रेडिंग प्रदान करने तथा 101 बिन्दु पैमाने पर परिणाम घोषित करने के रूप में परीक्षा सुधार बहुत सहायक है।	2500
25.	41	तथापि, इस नई प्रणाली में "चरित्र निर्माण" का कोई भी पहलू शामिल "नहीं" है।	2456
26.	42	सिद्धान्त तथा कार्यानुभव के लिये नियत समय अनावश्यक है इस पर पुनः विचार की आवश्यकता है।	2687
27.	43	विभिन्न कक्षाओं के लिये दी गई भिन्न-भिन्न समय-सारणी, स्कूलों में कुछ नई प्रशासनिक कठिनाइयां उत्पन्न कर सकती है।	2450
28.	44	कार्यशालाओं की गैर-मौजूदगी के कारण सभी अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकती।	2345
29.	45	समय-सारिणी में तीन घंटे स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा के लिये नियत है जिससे कार्यान्वियन कठिन हो जाता है।	2287
30.	46	तथापि, कार्यशालाओं तथा फार्म सामग्री आदि उपलब्ध न होने के कारण नई प्रणाली ग्रामीण विद्यार्थियों के लिए अधिक लाभदायक नहीं हो सकती।	2438
31.	47	विद्यार्थियों के लिए, शैक्षणिक पाठ्यक्रम से व्यावसायिक पाठ्यक्रम तथा इसके विपरीत आने-जाने की व्यवस्था संतोषजनक है।	2560
32.	50	इस प्रणाली में क्रेडिट प्रणाली, विद्यार्थियों को एक संस्था से दूसरी संस्था में तथा एक पाठ्यक्रम से दूसरे पाठ्यक्रम में जाने में, बिना समय तथा शक्ति खोय मदद देती है।	2765
33.	52	सेमेस्टर प्रणाली अध्यापकों में उलझन पैदा करती है और इससे अध्यापकों का कार्यभार बढ़ जाता है।	2268

1	2	3	4
34.	54	"सामाजिक आवश्यकताओं" या "स्थानीय आवश्यकताओं" को ध्यान में रखना, जो समय-समय पर बदलती रहती है नई प्रणाली के सफल कार्यान्वयन में एक समस्या है।	2348
35.	56	स्थानीय आवश्यकताओं के आधार पर किए गए आयोजन में, +2 स्तर पर काफी सामान तथा फार्म सामग्री की आवश्यकता है, जो बाद में बची रहती है।	2314
36.	59	नियोक्ता एजेन्सियों के बीच समुचित समन्वय के अभाव में, नई डिग्रियां तथा नये डिप्लोमा (नई प्रणाली में प्राप्त) लेने वाले विद्यार्थियों को ज्यादा कठिनाइयों तथा निराशा का सामना करना पड़ेगा।	2340

निष्कर्ष

अध्यापकों के दृष्टिकोण में, वर्तमान अध्ययन ने 10+2+3 प्रणाली के कुछ नकारात्मक पहलू स्थापित किए हैं। आशा की जानी चाहिये कि शैक्षिक नीति की नई प्रणाली में आवश्यक परिवर्तन करने के लिये इन पहलुओं पर ध्यान दिया जाएगा। सुझाव है कि और अधिकाधिक सकारात्मक परिणामों के लिए, शैक्षिक प्रणाली में रुचि रखने वाले अभिभावकों, विद्यार्थियों तथा अन्य लोगों के भी विचार, वर्तमान जांच (या किसी अन्य उपयुक्त उपाय द्वारा) द्वारा प्राप्त किए जाएं।

● ● ●

[पृष्ठ 31 का शेष]

और शहरों के चारों ओर के ग्रामों की देखभाल इन अध्यापकों द्वारा की जानी चाहिये तथा उनमें से प्रत्येक को सार्वजनिक कर्मचारियों की तरह गांव के पांच प्रौढ़ निरक्षरों को शिक्षित करने का कार्य सौंपा जाना चाहिए। अध्यापकों को भी, जब वे पांच प्रौढ़ों को शिक्षित बना दें, तो एक/दो अग्रिम वेतनवृद्धि दी जानी चाहिए।

इसके अतिरिक्त, इन अध्यापकों को सवारी खर्चे के लिए थोड़ी सी राशि भी प्रति माह दी जानी चाहिए। इस प्रकार का सवारी खर्च, साधारण तया एक साइकिल रखने के लिए अपेक्षित खर्च से अधिक नहीं होना चाहिए, जो केवल ग्राम पंचायत के प्रधान अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा यह प्रमाणित करने पर दिया जाये कि उस अध्यापक के स्कूल में नियमित रूप से आने का उचित रिकार्ड मौजूद है।

(2) नगर के निकटवर्ती ग्रामों में प्रौढ़ों को शिक्षित करने के लिए शहरी क्षेत्रों में उपलब्ध अध्यापकों की सेवाओं के अतिरिक्त प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के लिए ग्रामीण अध्यापकों, ग्रामीण डाक्टरों, कम्पाउंडरों पटवारियों आदि की सेवाओं का भी उपयोग किया जाना चाहिए।

ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों की सेवाओं का उपयोग भी, उन्हें प्रदत्त किये जाने वाले प्रमाण-पत्र अथवा डिग्री के लिए अनिवार्य समाज सेवा की आंशिक पूर्ति के एक भाग के रूप में प्रौढ़ शिक्षा के लिए किया जाना चाहिए।

क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध अध्यापकों तथा सार्वजनिक कर्मचारियों की संख्या, प्रौढ़ शिक्षा की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं होगी, अतः बड़ी संख्या में विद्यार्थियों की सेवाओं की आवश्यकता होगी। इस प्रयोजन के लिए यह जरूरी है कि ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूल/कालेज इन विद्यार्थियों के मार्गदर्शन के लिए एक उपयुक्त कार्यात्मक कार्यक्रम तैयार करें।

कक्षा में पढ़ाने इत्यादि के लिए सुविधाओं की व्यवस्था तथा पुस्तकों और लेखन-सामग्री पर होने वाला खर्च राज्य सरकार द्वारा वहन किया जाना चाहिए।

यदि ऊपर बताये गए ढंग के अनुसार प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम कार्यान्वित किया जाए तो कुछ-एक वर्षों में ही इसका परिणाम सामने आ सकता है। हमारे देश के लिए एक राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम की आवश्यकता है, जो निरक्षर प्रौढ़ों की बड़ी संख्या को ध्यान में रखते हुए जरूरी है। आज आवश्यकता दृढ़ राजनतिक संकल्प, निष्ठा तथा बड़ी संख्या में लोगों का सहयोग प्राप्त करने की है। यदि एक बार यह उपलब्ध हो जाये तो हमारी 20,000 करोड़ रुपये की समस्या का समाधान हो जाएगा।

● ● ●

मध्य प्रदेश में उच्च शिक्षा (1956-64)

—शम्सुद्दीन

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, 1948 ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि "हमने हर स्थान पर राष्ट्रीय कल्याण के लिये उच्च शिक्षा के महत्व के प्रति गहरी जागरूकता तथा वर्तमान पद्धति की अपर्याप्तता के प्रति असंतोष की भावना पाई। भविष्य के निर्माताओं के रूप में, विश्वविद्यालय अपनी पुरानी प्रणाली को जारी नहीं रख सकते।"[1]

मध्य प्रदेश की संघटित ईकाइयों में उच्च शिक्षा की प्रगति धीमी था। प्रणाली, संगठन तथा प्रशासन में अनेक विभिन्नताओं के अलावा उच्च स्तर पर संस्थाओं की कमी भी एक कारण था। तथापि, प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तरों पर शिक्षा के सामान्य विस्तार का उच्च स्तर पर विकास कार्यक्रमों और नीतियों पर प्रभाव पड़ा और 1956 में पुनर्गठन के बाद, उच्च शिक्षा के लिये संस्थाओं का अचानक तेजी से विस्तार हुआ।

पुनर्गठन के समय राज्य में केवल एक विश्वविद्यालय था। 1956 से, "सरकार ने प्रत्येक जिले में लड़के और लड़कियों दोनों के लिये नये डिग्री कालेज खोलने की नीति शुरू की और निजी संस्थाओं को नये कालेज खोलने के लिये प्रोत्साहन देना शुरु किया।"[2] इन प्रयत्नों के परिणामस्वरूप राज्य में कालेजों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। 1956–64 की अवधि के दौरान उच्च शिक्षा के विकास और प्रगति की संक्षिप्त समीक्षा नीचे दी गई है:

तालिका I

1956–64 की अवधि के दौरान उच्च शिक्षा की प्रगति*

मद	1956	1964
विश्वविद्यालयों की संख्या .	1	7
कालेजों की संख्या .	51	131
कुल दाखिला . .	13,145	66,047
लड़कियां . .	2,547	10,378

वर्ष 1956 में राज्य में केवल एक ही विश्वविद्यालय अर्थात् सागर विश्वविद्यालय था। वर्ष 1957, में तीन और विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। वे थे—उज्जैन में विक्रम विश्वविद्यालय, जबलपुर में जबलपुर विश्वविद्यालय तथा खैरागढ़ में इन्दिरा कला विश्वविद्यालय। हाल ही में, वर्ष 1964 में ग्वालियर, इन्दौर तथा रायपुर में तीन और विश्वविद्यालय खोले गए हैं। इन्हें क्रमशः जीवाजी विश्वविद्यालय, इन्दौर विश्वविद्यालय तथा रविशंकर विश्वविद्यालय के नाम से जाना जाता है। रीवा में एक अतिरिक्त विश्वविद्यालय खोलने की भी काफी मांग थी।[3]

इस प्रकार 1964 में, राज्य विधानमण्डल के अधिनियम द्वारा निम्नलिखित सात विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई :

विश्वविद्यालय का नाम	स्थापना का वर्ष
1. सागर विश्वविद्यालय, सागर .	1946
2. विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन .	1957
3. जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर .	1957
4. इन्दिरा कला विश्वविद्यालय, खैरागढ़ .	1957
5. जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर .	1964
6. इन्दौर विश्वविद्यालय, इन्दौर .	1964
7. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर .	1964

खैरागढ़ स्थित इन्दिरा कला विश्वविद्यालय केवल भारतीय संगीत में अनुसंधान तथा अध्ययन के कार्य में लगा हुआ है। शेष विश्वविद्यालय सम्बद्ध प्रकार के विश्वविद्यालय हैं और उनके अधिकार क्षेत्र में स्थित सरकारी तथा निजी दोनों प्रकार के कालेज उससे सम्बद्ध हैं। पहले, केवल सागर, विक्रम तथा जबलपुर विश्वविद्यालय ही अध्यापन कार्य करते थे परन्तु अब नए स्थापित अन्य विश्वविद्यालयों ने भी स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तरों पर अध्यापन कार्य शुरु कर दिया है।

*मध्य प्रदेश में शिक्षा का विकास, 1965, पूर्व संदर्भित।
1. भारत सरकार, विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, 1949 की रिपोर्ट, पृष्ठ 5-6।
2. शिक्षा आयोग को मध्य प्रदेश में शिक्षा पर दिया गया ज्ञापन, 1965, पृष्ठ 22।
3. राष्ट्रीय शैक्षिक तथा अनुसंधान प्रशिक्षण परिषद्, शिक्षा की भारतीय वार्षिक पुस्तक, भाग-II, 1961, पृष्ठ 63।

7—401 एज्युकेशन/77

सागर विश्वविद्यालय में, अवर-स्नातक तथा स्नातकोत्तर दोनों स्तरों पर विभिन्न संकायों में सुस्थापित विश्वविद्यालय अध्यापन विभाग हैं। राज्य सरकार ने उज्जैन में अपने स्नातकोत्तर कालेजों को स्थानांतरित कर दिया है।

इन विश्वविद्यालयों से व्यावसायिक कालेज तथा उनके अधिकार क्षेत्र में स्थित अन्य संस्थाएं भी सम्बद्ध हैं, जो स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर पर शिक्षा प्रदान करते हैं। इस प्रकार, मेडिकल तथा इंजीनियरी कालेज भी उनसे सम्बद्ध हैं।

ये विश्वविद्यालय, विश्वविद्यालयों के संकायों में दाखिल विद्यार्थियों को अवर-स्नातक, स्नातकोत्तर तथा शोध डिग्रियां प्रदान करते हैं।

उपरोक्त सात विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त जबलपुर में जवाहरलाल कृषि विश्वविद्यालय है जिसकी स्थापना 1964–65 में की गई थी। राज्य के सभी कृषि और पशु-चिकित्सा से सम्बन्धित कालेज अब इस नए कृषि विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हैं।

इस समय राज्य में उच्च शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं की संख्या इस प्रकार है :

तालिका II

सरकारी तथा गैर-सरकारी कालेजों की संख्या*

(1956–64)

वर्ष	सरकारी	गैर-सरकारी
1960–61 . . .	43	31
1961–62 . . .	53	41
1962–63 . . .	60	54
1963–64 . . .	64	55
1964–65 . . .	72	71

प्रत्येक जिला मुख्यालय में कम-से-कम एक सरकारी डिग्री कालेज तथा मण्डलीय मुख्यालय में लड़कियों का एक कालेज खोलने की सरकारी नीति का जहां तक संबंध है, इस समय तक यह लक्ष्य लगभग पूरा कर लिया गया है।

कालेजों में दाखिले की संख्या इस प्रकार है :—

तालिका III

कालेजों में विद्यार्थियों की संख्या*

(1956–64)

वर्ष	विद्यार्थियों की संख्या	
	लड़के	लड़कियां
1956 . .	13,145	2,547
1964 . .	66,047	10,378

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि कालेजों में लड़के और लड़कियों दोनों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में विशाल विस्तार के परिणामस्वरूप कालेजों में दाखिले के लिये काफी उत्सुकता हो गई है। कालेजों में दाखिले के बारे में सरकार द्वारा अपनाई गई खुली नीति के परिणामस्वरूप अधिकांश कालेजों के भवनों में स्थान की समस्या पैदा हो गई है। तथापि, लड़कियों के दाखिले की संख्या लड़कों की तुलना में कम है, यह अनुपात 1 : 6 है।

जहां तक उच्च शिक्षा पर खर्च का संबंध है निम्नलिखित तालिका में स्थिति दर्शाई गई है :

तालिका IV

उच्च शिक्षा पर खर्च[1]

(1956–64)

(लाख रुपयों में)

मद	1957–58	1960–61	1963–64
बजट प्राक्कलन . .	178	221	337
वास्तविक खर्च . .	147	210	उ० नहीं

उच्च शिक्षा पर खर्च में काफी वृद्धि हुई है, परन्तु इस स्तर पर ही शिक्षा की मांग और आवश्यकताओं को पूरा करना पर्याप्त नहीं है। 1957–58 में बजट प्रावधान 178 लाख रुपये का था परन्तु वास्तविक खर्च 147 लाख रुपये था। वर्ष 1960–61 में, मांग को पूरा करने के लिये 221 लाख रुपये के बजट प्राक्कलन की मांग की गई थी जबकि वास्तविक रूप से दी गई और खर्च की गई राशि 210 लाख रुपये थी। इसका कारण सरकार के पास आर्थिक संसाधनों की कमी थी।

* पूर्व संदर्भित।

1. चौथे वित्त आयोग से विचार-विमर्श के लिए ज्ञापन, 1965, पृष्ठ 33 पर उल्लिखित।

"तथापि, धन की कमी, मांग तथा इसकी प्राप्ती में बाधक रहती है । इन दोनों को पूरा करना शिक्षा विभाग का कर्त्तव्य होता है ।"[1]

कालेजों का स्टाफ

कालेजों में दाखिले में वृद्धि के साथ-साथ, कालेजों में अधिक स्टाफ की मांग बढ़ गई है । स्टाफ के एक सदस्य के लिये न्यूनतम अर्हता द्वितीय श्रेणी में एम०ए० या एम०एस्सी० की डिग्री है । भर्ती, लोक सेवा आयोग के माध्यम से की जाती है, यद्यपि 6 महीने के लिए आपातकालीन नियुक्तियां भी की जा सकती हैं । उच्च शिक्षा में काफी विस्तार होने के कारण कालेजों के लिए अर्हताप्राप्त, बुद्धिमान तथा निष्ठावान व्यक्तियों का स्टाफ प्राप्त करने की समस्या बढ़ गई है । शोध कार्य को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से स्टाफ के उस सदस्य को दो अग्रिम वेतन वृद्धियां दी जाती हैं जो पी०एच०डी० की डिग्री प्राप्त कर लेता है । तीव्र विस्तार तथा बड़ी संख्या में स्टाफ की आवश्यकता के कारण, कालेजों में लेक्चररों की नियुक्ति के लिए उपयुक्त व्यक्ति मिलना कठिन हो गया है।

तीन-वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम

1956 से पहले, मध्य प्रदेश में उच्च शिक्षा प्रणाली मुख्यत: स्वतंत्रता पूर्व अवधि के दौरान प्रचलित पुरानी पद्धति पर आधारित थी । 1948 में नियुक्त विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने उच्च शिक्षा का एक विस्तृत अध्ययन किया तथा देश की जरूरतों और आवश्यकताओं के अनुरूप सुधार तथा विस्तार का सुझाव दिया । अनेक अन्य सुधारों में एक सुधार 'तीन वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम' शुरू करना था ।

छात्रों द्वारा, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा आयोजित उच्चतर माध्यमिक परीक्षा पास कर लेने के बाद, पूरे राज्य में एक तीन वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम प्रारंभ किया गया है ।

हाई स्कुलों को उच्चतर माध्यमिक स्कुलों में बदलने तथा शिक्षा के उच्चस्तर से इण्टरमीडिएट कक्षा समाप्त करने के कारण ऐसा किया गया है । राज्य द्वारा, तीन वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम, दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान प्रारंभ किया था । उस समय तक लगभग सभी विश्वविद्यालयों ने अपने-अपने कालेजों में शिक्षा को इस नई पद्धति को प्रारम्भ कर दिया था । विश्वविद्यालय शिक्षा के पुनर्गठन की दिशा में यह पहला प्रमुख परिवर्तन था ।

पाठ्यचर्या

"शैक्षिक प्रणालियां किसी एक समय के लिए निर्धारित की जाती है न कि आने वाले हर समय के लिए । मानव प्रवृत्ति को शिक्षित करने के लिए अपरिवर्तनीय तरीके नहीं हैं । पुनरुत्थान के वैदिक काल में जो पाठ्यचर्या महत्वपूर्ण थी वह 20 वीं शताब्दी में बिना परिवर्तन के नहीं चल सकती ।"* एक स्वतंत्र तथा लोकतांत्रिक देश में परिवर्तित स्थिति और परिस्थितियों के कारण पाठ्यक्रम में सुधार तथा पुनर्गठन की आवश्यकता महसूस की गई । तीन वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम के लिए पाठ्यचर्या तथा पाठ्यक्रम विश्वविद्यालयों द्वारा निर्धारित और तैयार किया जाता है और राज्य का उन पर कोई नियंत्रण नहीं है ।

भवन तथा उपकरण

अब, कालेजों में दाखिले के लिए भारी भीड़ होने के कारण स्थान की समस्या गम्भीर हो गई है । अधिकतर कालेज दो पारियों में लगते हैं । 51 कालेजों के अपने भवन हैं । 16 कालेज ऐसे हैं जिनके अपने भवन नहीं हैं; और या तो वे किराये के भवन में कार्य करते हैं या दूसरी शैक्षणिक संस्थाओं के साथ उनका कोई अस्थाई प्रबंध हैं । जहां पर विज्ञान पाठ्यक्रम प्रारम्भ किए गए हैं वहां उपकरणों की समस्या गम्भीर है । "भवनों और उपकरणों की सुविधाओं की कमी का कालेजों में शिक्षा के स्तरों पर विपरित प्रभाव पड़ रहा है ।"[2]

सज्जित प्रयोगशालाओं तथा विज्ञान सामग्री की पर्याप्त आपूर्ति की अनुपस्थिति में, उच्च स्तर पर विज्ञान अध्ययन में बाधा पहुंचेगी । उच्च स्तर पर अध्यापन कार्य करने के लिए एक सुव्यवस्थित पुस्तकालय एक अन्य महत्वपूर्ण आवश्यकता है । धन के अभाव में कालेजों में पुस्तकालयों का समुचित विकास नहीं हो सका है ।

परीक्षा

"यदि विश्वविद्यालय शिक्षा में हमें केवल एक ही सुधार का सुझाव देना हो तो वह परीक्षा में सुधार के संबंध में होगा ।" ** विश्वविद्यालय परीक्षाओं में छात्रों के बड़ी संख्या में फेल होने के लिए उच्च स्तर पर परीक्षा की गलत प्रणाली जिम्मेदार है । अनेक आयोगों तथा समितियों द्वारा इस कमी की ओर ध्यान आकर्षित करने के बावजूद अब तक कोई सुधार नहीं हुआ है । इसका प्रभाव न केवल छात्रों और अभिभावकों के समय, शक्ति तथा साधनों पर पड़ता है बल्कि इससे उनको आशाओं और आकांक्षाओं में असंतोष में वृद्धि होने के कारण राज्य और सरकार के लिए अनेक समस्याएं भी पैदा होती हैं ।

1. मध्य प्रदेश सरकार, शिक्षा विभाग, मध्य प्रदेश में शिक्षा का विकास, 1965, पृष्ठ 45 ।

*भारत सरकार, विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की रिपोर्ट 1949, पृष्ठ-44 ।

2. चौथे वित्त आयोग से विचार-विमर्श के लिए तैयार किया गया ज्ञापन, 1965, पृष्ठ 11 से उद्धृत ।

**भारत सरकार, विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की रिपोर्ट, 1949, पृष्ठ 328 ।

"पहले वर्ष परीक्षा पास करने वाले विद्यार्थियों की प्रतिशतता में काफी कमी होती जा रही है और प्रथम वर्ष स्तर पर काफी अपव्यय होता है। राज्य सरकार तथा विश्वविद्यालय दोनों ही इस ओर ध्यान दे रहे हैं तथा परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन करना होगा।"[1]

सभी तरफ से एक ही आवाज उठ रही है कि उच्च स्तर पर शिक्षा का स्तर दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। अनुभव से ज्ञात होता है कि संख्या में तीव्र विस्तार से कोटि में गिरावट आई है। यह एक ऐसी समस्या है जो लोगों और सरकार को परेशान कर रही है और इसमें सुधार करने के लिए दीर्घकालीन आयोजन की आवश्यकता है। इस समय सबसे महत्वपूर्ण कार्य निम्नलिखितों को व्यवस्था करना है :–

(i) उपयुक्त कालेज तथा छात्रावास भवन,
(ii) विज्ञान अध्यापन के लिए उपकरण,
(iii) पर्याप्त पुस्तकालय,
(iv) अर्हता-प्राप्त स्टाफ
(v) अनुस्थापन पाठ्यक्रम, तथा
(vi) परीक्षा की बेहतर प्रणाली।

इन सभी प्रयत्नों तथा सरकार और लोगों के संयुक्त सहयोग से उच्च शिक्षा की कोटि में अवश्य ही सुधार होगा।

निष्कर्ष

(1) सामान्य शिक्षा के लिए कालेजों के मामले में विस्तार की दर सबसे ज्यादा रही।

(2) कालेजों में विद्यार्थियों के दाखिले की संख्या में वृद्धि का अनुपात संस्थाओं की संख्या में वृद्धि के अनुपात से कहीं अधिक है।

(3) उच्च शिक्षा के क्षेत्र में हुए पर्याप्त विस्तार को ध्यान में रखते हुए, धन का प्रावधान अपर्याप्त है। वास्तव में, कालेज भवनों के निर्माण तथा कालेजों को उपयुक्त उपकरणों की आपूर्ति के लिए काफी बड़ी मात्रा में राशि की आवश्यकता है।

(4) विश्वविद्यालय स्तर पर उच्च अर्हता-प्राप्त, बुद्धिमान तथा निष्ठावान अध्यापकों की कमी है।

(5) विश्वविद्यालय स्तर पर पाठ्यचर्या गतिशील नहीं है और उसमें समय की मांग तथा समाज और विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तन नहीं किया गया है।

(6) कालेज स्तर पर विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, कालेज भवन, प्रयोगशालाएं तथा पुस्तकालय अपर्याप्त हैं।

(7) उच्च शिक्षा स्तर पर परीक्षा प्रणाली काफी दोषपूर्ण है। विश्वविद्यालय परीक्षाओं में फेल होने वालों की ऊंची प्रतिशतता के रूप में इसके कारण काफी अपव्यय होता है।

(8) छात्रों के दाखिले में मात्रात्मक विस्तार के कारण उच्च स्तर पर शिक्षा की कोटि में काफी गिरावट आई है जिसके फलस्वरूप शिक्षा के स्तरों में गिरावट आई है।

(9) विश्वविद्यालय अब सभी प्रार्थियों के लिए खुले हैं चाहे उनकी योग्यता कुछ भी हो। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अन्धाधुंध भीड़ ही विश्वविद्यालय स्तर पर कोटि में गिरावट का मुख्य कारण है।

(10) इस संबंध में वैज्ञानिक रूप से निर्णय लेने के लिए, कि किसको विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त हो और किसको नहीं, कोई-न-कोई एजेंसी अवश्य होनी चाहिए।

(11) उपयुक्त छात्रावासों, मनोरंजन सुविधाओं तथा वास्तविक शैक्षिक वातावरण की कमी है।

सुझाव

(1) कालेजों की संख्या में विस्तार, माध्यमिक स्कूलों के विस्तार के अनुरूप नहीं हुआ है। अतः, कालेजों में दाखिले (विशेष कर सामान्य शिक्षा के लिए कालेजों में) की समस्या गम्भीर हो गई है। इस समस्या के समाधान के लिए, विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने वाले अन्य कालेजों की संख्या बढ़ाई जाए।

(2) कालेजों में दाखिले की वृद्धि का सामना करने के लिए नये भवनों का निर्माण या विद्यमान भवनों का विस्तार किया जाए।

(3) विश्वविद्यालय स्तर पर, उच्च अर्हता-प्राप्त, बुद्धिमान तथा रुचि रखने वाले अध्यापकों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए।

(4) समय की मांग और समाज व छात्रों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विश्वविद्यालय स्तर पर पाठ्यचर्या का अनुस्थापन व पुनर्गठन किया जाए।

[शेष पृष्ठ 50 पर]

1. मध्य प्रदेश में शिक्षा पर शिक्षा आयोग को दिया गया ज्ञापन, 1965, पृष्ठ 23 से उद्धृत।

शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय की गतिविधियाँ—संक्षेप में

शैक्षिक प्रौद्योगिकी परियोजना—

शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र

केन्द्र ने, राज्यों में शैक्षिक प्रौद्योगिकी सैलों के कर्मचारियों के लिए मूल्यांकन में एक दो सप्ताह का प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया। राज्य शैक्षिक प्रौद्योगिकी सैलों के सात अधिकारियों ने इस प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लिया।

यूनेस्को के तत्वावधान में शैक्षिक प्रौद्योगिकी में विशेषज्ञों के लिए एक प्रशिक्षण सेमिनार आयोजित किया गया। शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र, नई दिल्ली की प्रिंसिपल श्रीमती वी० मूले ने पैरिस में हुए सेमिनार में भाग लिया।

राज्यों में शैक्षिक प्रौद्योगिकी कार्यक्रम

हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू एवं काश्मीर में शैक्षिक प्रौद्योगिकी सैल स्थापित किये गये हैं।

उपग्रह शिक्षण टेलिविजन प्रयोग (साईट) के दौरान उड़ीसा में प्रसारित शैक्षिक टेलीविज़न कार्यक्रमों (उदयभानु) का अध्ययन शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा प्रकाशित किया गया है।

अध्यापकों को राष्ट्रीय पुरस्कार

अध्यापकों की प्रतिष्ठा बढ़ाने तथा प्राथमिक, मिडिल और उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के मेधावी अध्यापकों की प्रशंसनीय सेवाओं को सार्वजनिक मान्यता प्रदान करने के उद्देश्य से, अध्यापकों को राष्ट्रीय पुरस्कार की योजना 1968 में आरम्भ की गयी थी। 1967 से इस योजना के कार्यक्षेत्र में विस्तार करके इसके अन्तर्गत संस्कृत पाठशालाओं, टालों आदि के अध्यापकों को भी सम्मिलित कर लिया गया है। पारम्परिक ढंग से चलने वाले अरबी/फारसी मदरसों के अध्यापकों को भी 1976 में इस योजना के अन्तर्गत शामिल कर लिया गया है। प्रत्येक पुरस्कार के अन्तर्गत एक प्रशंसा प्रमाणपत्र, एक धातु का बिल्ला एवं एक हजार का नकद पुरस्कार दिया जाता है।

1976 तक 1,687 अध्यापकों ने पुरस्कार प्राप्त किये, जिनमें से 915 प्राथमिक विद्यालयों के, 683 माध्यमिक विद्यालयों के, 87 संस्कृत पाठशालाओं के तथा 2 अरबी/फारसी मदरसों के अध्यापक थे।

वर्ष 1977 के लिए 115 पुरस्कार हैं जिनमें से 101 पुरस्कार प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के लिए, 9 संस्कृत पाठशालाओं के अध्यापकों के लिए तथा 5 अरबी/फारसी अध्यापकों के लिए हैं। अभी तक 85 अध्यापकों का चयन किया गया है। शेष के संबंध में शीघ्र ही अन्तिम निर्णय ले लिया जायेगा।

उच्च शिक्षा—

पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

पंजाब विश्वविद्यालय के विकास के वास्ते वर्ष 1977-78 के लिए 20 लाख रुपए का ऋण स्वीकृत किया गया है।

संस्थाओं को अनुदान

जून से नवम्बर, 1977 तक की अवधि के दौरान निम्नलिखित संस्थाओं को अनुदान दिया गया है :—

क्र० सं०	संस्था का नाम	योजनेतर रु०	योजनागत रु०
1.	भारतीय विश्वविद्यालय संघ राउज एवेन्यु, नई दिल्ली	45,000	1,19,219.55
2.	गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद	12,72,000	3,419.90
3.	गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार	4,72,500	—
4.	कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, देहरादून	—	49,748.00
5.	गांधीग्राम ग्रामीण संस्थान, गांधीग्राम	4,66,000	—
6.	जामिया मिलिया, इस्लामिया, नई दिल्ली	3,07,000	—
7.	श्री अरविन्द अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र, पाण्डिचेरी	4,00,000	1,73,000.00
8.	भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला	21,51,845.49	2,29,629.78
9.	डा० जाकिर हुसैन मेमोरियल कालेज, दिल्ली	1,12,500	—

भारत में बरकले पेशेवर अध्ययन

वर्ष 1977-78 के दौरान विभिन्न भारतीय विश्व विद्यालयों/उच्च शिक्षा संस्थाओं में उच्च अध्ययन/शोध कार्य करने के लिए 17 अमरीकी विद्यार्थियों की परियोजनाओं को स्वीकृति दी गई है।

भारत में संयुक्त राज्य शैक्षिक प्रतिष्ठान

(क) संयुक्त राज्य अमरीका के शिक्षा विभाग/अमरीकी विश्वविद्यालयों द्वारा प्रायोजित अल्पकालिक अमरीकी सामूहिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत स्कूल प्रशासकों, अध्यापकों एवं विद्यार्थियों के दस दल, अवधि कार्यक्रमों के अन्तर्गत गर्मियों में भारत आये। ये कार्यक्रम भारत में सं०रा० शैक्षिक प्रतिष्ठान द्वारा चलाये गये थे और विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध थे। भाग लेने वाले विद्यार्थियों ने अपने-अपने सम्बद्ध विश्वविद्यालयों द्वारा आयोजित सेमिनारों/कार्यशालाओं में भाग लिया तथा भारत में विभिन्न ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व के स्थानों का दौरा भी किया।

(ख) प्रतिष्ठान, शिक्षा कार्यालय/अमरीका के अनुदान प्राप्तकर्त्ताओं के दौरों का भी प्रयोजन करता है। जिसके आधीन संकाय अनुसंधान छात्र एवं डाक्ट्रेट अनुसंधान छात्र, अनुसंधान एवं प्रशिक्षण हेतु भारत आते हैं। 1977 के दौरान 25 अनुसंधान विद्वान/छात्र, अनुसंधान/उच्च अध्ययन हेतु भारत आए।

(ग) **भ्रमणकारी व्याख्यान कार्यक्रम :** भारत में सं० रा० शै० प्र० के भ्रमणकारी व्याख्यान कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न भारतीय विश्व-विद्यालयों/संस्थानों में, शिक्षण कार्य करने हेतु अमरीकी विश्वविद्यालयों के 14 प्रोफेसर 1977-78 के दौरान भारत आये।

सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम

1977-78 में, विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों में 41 रूसी अध्यापक, रूसी भाषा एवं साहित्य पढ़ा रहे हैं।

शास्त्री भारत-कनाड़ा संस्थान

संस्थान के ग्रीष्म कार्यक्रम, 1977 के अन्तर्गत, कनाडा विश्वविद्यालय अध्ययन एवं हाई स्कूल अध्यापकों का एक 22 सदस्यीय दल जुलाई-अगस्त, 1977 में छह सप्ताह के लिए भारत आया। ग्रामों, कारखानों, स्कूलों संग्रहालयों के दौरे तथा नृत्य और संगीत पर प्रदर्शन व्याख्यान, शैक्षिक कार्यक्रम के अंग थे।

भारतीय अध्ययन व अमरीकी संस्थान

संस्थान ने, 1977-78 के शैक्षिक वर्ष में 87 छात्रों को संकाय फैलोशिप/अवर फैलोशिप/लघु-अवधि फैलोशिप प्रदान किये। उन्होंने सितम्बर, 1977 से भारत आना प्रारम्भ कर दिया है। इनके अतिरिक्त, संस्थान ने भारत आने के लिए अपने सदस्य संस्थानों से अमरीकी छात्रों के सात प्रार्थना-पत्र भी भेजे हैं। इन प्रत्याशियों की परियोजनाओं को स्वीकृति दे दी गई है।

ग्रामीण उच्च शिक्षा

कोयम्बतूर स्थित ग्रामीण संस्थान को तिमाही के दौरान खर्च के केन्द्रीय अंश को पूरा करने के लिए 5,45,000 रु० का केन्द्रीय अनुदान (दूसरी किश्त) स्वीकृत किया गया।

तकनीकी शिक्षा

देश की आगामी राष्ट्रीय योजना के निर्माण के सन्दर्भ में सभी स्तरों पर प्रबन्ध शिक्षा सहित तकनीकी शिक्षा के वर्तमान स्तरों का पुनरीक्षण करने और वर्तमान कार्यक्रमों के अनुस्थापन तथा उनमें सुधार सुझाने तथा साथ ही आगामी दशक के दौरान देश की आवश्यकताओं के सन्दर्भ में विकास के क्षेत्रों का पता लगाने के लिए एक कार्य दल स्थापित किया गया है।

दल की प्रथम बैठक 19-11-77 को हुई जिसमें विभिन्न क्षेत्रों में पांच अध्ययन दल स्थापित करने का निश्चय किया गया।

छात्रवृत्तियां—

बाहर जाने वाले छात्र

1. होटल प्रबन्ध तथा पर्यटन प्रबन्ध में पाठ्यक्रमों के लिए आस्ट्रियाई सरकार की छात्रवृत्तियां, 1977-78—चुने गए तीनों उम्मीदवार आस्ट्रिया चले गए और इन्होंने अपने पाठ्यक्रमों को आरम्भ कर दिया।

2. **बेल्जियम सरकार की छात्रवृत्तियां**

   अभी तक एक उम्मीदवार को अंतिम रूप से चुना गया है।

3. **कोमेकोन छात्रवृत्तियां**

   (1) कोमेकोन छात्रवृत्तियां, 1977-78 (पोलैंड सरकार द्वारा)
   2 उम्मीदवारों का अनुमोदन किया गया है, और वे अपने अध्ययन हेतु पोलैंड चले गए हैं।

   (2) कोमेकोन छात्रवृत्तियां, 1977-78 (चेकोस्लोवाकिया सरकार द्वारा)
   2 उम्मीदवारों का अनुमोदन किया गया है।

4. **फ्रांस सरकार की छात्रवृत्तियाँ, 1977–78**

20 उम्मीदवार अपने अध्ययन हेतु फ्रांस के लिए रवाना हो गये हैं।

5. **ग्रीक सरकार की छात्रवृत्तियाँ, 1977–78**

6 उम्मीदवारों का अनुमोदन किया गया है जिनमें 4 उम्मीदवार ग्रीस के लिए रवाना हो चुके हैं।

6. **ज० ज० ग० सरकार की छात्रवृत्तियाँ**

(1) **भारतीय खेल प्रशिक्षकों के लिए ज० ज० ग० सरकार की छात्रवृत्तियाँ, 1977**

आठ प्रशिक्षक ज०ज०ग० के लिए रवाना हो चुके हैं।

(2) **स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए ज० ज० ग० सरकार की छात्रवृत्तियाँ, 1977–78**

अभी तक 4 उम्मीदवारों के संबंध में अनुमोदन प्राप्त हुआ है।

7. **हंगरी सरकार की छात्रवृत्तियाँ, 1977–78**

अभी तक 6 उम्मीदवारों के संबंध में अनुमोदन प्राप्त हुआ है।

8. **ईटली सरकार (आई० एस० वी० ई०) की छात्रवृत्तियाँ, 1977–78**

तीन उम्मीदवारों का अनुमोदन किया गया है जिनमें से दो ने रोम में अपना अध्ययन आरम्भ कर दिया है।

9. **जापानी सरकार की छात्रवृत्तियाँ, 1977–78**

10 उम्मीदवारों (दो सुरक्षित समेत) को मनोनीत किया गया है।

10. **पोलिश सरकार की छात्रवृत्तियाँ, 1977–78**

5 उम्मीदवारों के संबंध में अनुमोदन प्राप्त हो चुका है। 4 उम्मीदवार अध्ययन के लिए रवाना हो चुके हैं।

11. **वर्ष 1977–78 के लिए स्वीडिश अन्तर्राष्ट्रीय विकास प्राधिकरण, उपस्ला फैलोशिप**

तीनों उम्मीदवार अध्ययन हेतु जा चुके हैं।

12. **तुर्की सरकार की छात्रवृत्ति योजना, 1977–78**

2 उम्मीदवारों को मनोनीत किया गया है।

13. **स्नातकोत्तर अध्ययन/अनुसंधान/उच्च विशेषज्ञता के लिए सोवियत रूस सरकार की छात्रवृत्तियाँ, 1977–78**

26 उम्मीदवारों का अनुमोदन किया गया है जिनमें से 9 जा चुके हैं।

पैट्रिस लुमुम्बा विश्वविद्यालय, मास्को में प्रवेश, 1977–78

पीपल्स फ्रैन्डशिप विश्वविद्यालय मास्को में 11 उम्मीदवारों ने अपना अध्ययन प्रारंभ कर दिया है।

14. **युगोस्लाविया सरकार की छात्रवृत्तियां योजना, 1977–78**

5 उम्मीदवारों को (दो सुरक्षित सहित) मनोनीत किया गया है।

15. **जर्मन शैक्षिक विनिमय सेवा फैलोशिप योजना, 1978**

12 उम्मीदवारों को मनोनीत किया गया है।

16. **ब्रिटिश परिषद छात्रवृत्तियाँ, 1978–79**

9 उम्मीदवारों को मनोनीत किया गया है।

17. **ब्रिटिश उद्योग महासंघ छात्रवृत्तियाँ, 1978–79**

11 उम्मीदवारों को (6 सुरक्षित सहित) मनोनीत किया गया है।

भारत आने वाले छात्र—

1. **राष्ट्रमण्डल छात्रवृत्तियां/फैलोशिप योजना**

राष्ट्रमंडल योजना के अधीन भारत में अध्ययन के लिए राष्ट्रमंडल नागरिकों को प्रत्येक वर्ष 50 छात्रवृत्तियां प्रदान की जाती हैं। अब तक, यू०के०, कनाडा, न्यूजीलैंड, मारिशस, मलेशिया, फिजी, घाना, केनया, युगांडा तथा श्रीलंका के 25 विद्यार्थियों ने भारत में अपने अपने विश्वविद्यालयों में प्रवेश ले लिया है।

2. **राष्ट्रमण्डल शिक्षा सहयोग योजना**

राष्ट्रमंडल शिक्षा सहयोग योजना के अधीन मारीशस सरकार के प्रमुख शिक्षा अधिकारी श्री एस० रामगुलाम, बारबडोस सरकार के शिक्षा अधिकारी श्री जी० एफ० मेडफोर्ड को भारत का दौरा करने के लिए आमंत्रित किया गया। दोनों अधिकारी 13-9-1977 को भारत आए तथा उन्होंने 30-10-77 तक भारत का दौरा किया। वे, कुलपतियों, राज्यों के शिक्षा अधिकारियों, राष्ट्रीय संस्थानों के अध्यक्षों से मिले तथा उन्होंने शैक्षिक विषयों पर विचारों का आदान-प्रदान किया। उन्होंने कुछ माडल स्कूलों का भी दौरा किया।

3. **भारत–अरब मिश्र गणराज्य सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम, 1977–78**

इस अवधि के दौरान एक मिश्री छात्र ने अपने पीएच० डी० कार्यक्रम के लिए कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया।

4. भारत-सोवियत सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम, 1977-78

इस अवधि के दौरान 17 सोवियत छात्र भारत आये और उन्होंने अपनी अपनी संस्थाओं में प्रवेश प्राप्त किया ।

5. भारत-पोलिश सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम, 1977-78

एक पोलिश छात्र ने, पीएच० डी० कार्यक्रम के लिए टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान, बम्बई, में प्रवेश प्राप्त किया ।

6. भारत-सेनगल सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम, 1977-78

सेनेगल के दो छात्रों ने भारत आकर अपनी अपनी संस्थाओं में प्रवेश प्राप्त किया ।

7. भारत ज० संघ गणराज्य सा० वि० का०

पश्चिम जर्मनी के 6 राष्ट्रिक भारत आए और उन्होंने अपनी अपनी संस्थाओं में प्रवेश प्राप्त किया ।

8. भारत-फ्रांस सा० वि० कार्यक्रम

फ्रांस के पांच राष्ट्रिक भारत आए और उन्होंने अपनी अपनी संस्थाओं में प्रवेश प्राप्त किया ।

9. विशेष राष्ट्रमण्डल अफ्रीकी सहायता योजना

इस अवधि में 6 अफ्रिकी राष्ट्रिक भारत आये एवं उन्होंने संस्थाओं में प्रवेश प्राप्त किया ।

10. पारस्परिक छात्रवृत्तियाँ

11 छात्र पहुँच चुके हैं एवं उन्होंने उत्तर-डाक्ट्रेट अध्ययन अनुसन्धान के लिए विभिन्न संस्थाओं/विश्वविद्यालयों में प्रवेश ले लिया है । दो और छात्रों के प्रवेश के लिए भी प्रबन्ध किये जा चुके हैं, एक छात्र के शीघ्र ही भारत आने की सम्भावना है जबकि दूसरे छात्र ने अगले वर्ष प्रवेश पाने की इच्छा व्यक्त की है ।

11. भारत-अफगाण सा० वि० का०

10 छात्रों ने, विभिन्न संस्थाओं में अवर स्नातक/स्नातकोत्तर अध्ययन हेतु प्रवेश ले लिया है ।

12. राष्ट्रमंडल शिक्षा सहयोग योजना—शिल्प प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण

5 शिल्प प्रशिक्षक—2 गयाना से एवं 3 केनया से —भारत आए हैं उन्होंने मद्रास और बम्बई में शिल्प शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रवेश ले लिया है ।

13. भारत-बेल्जियम सा० वि० का०

बेल्जियम से 5 छात्र भारत आये हैं—तथा उन्होंने विभिन्न संस्थाओं में प्रवेश प्राप्त कर लिया है ।

14. भारत-यूगोस्लाविया सा० वि० का०

भारत में अध्ययन के लिए तीन छात्र भारत आये । 2 और छात्रों के लिए प्रवेश प्रबन्ध किये गये थे परन्तु उन्होंने बाद में अस्वीकार कर दिया ।

15. टी० सी० एस० कोलम्बो योजना

इस योजना के अन्तर्गत हमें विभिन्न देशों से 72 मनोनयन प्राप्त हुए थे जिनमें से 47 छात्रों के मामलों को अन्तिम रूप दे दिया गया है और वे विभिन्न संस्थाओं में अध्ययन कर रहे हैं । शेष मामलों के संबंध में कारवाई जारी है ।

अनुमोदित रिहायशी माध्यमिक स्कूलों में भारत सरकार की छात्रवृत्ति योजना, 1977-78

1977-78 के दौरान 500 छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने के लिए 11-12 वर्ष के आयु वर्ग के इन बच्चों के लिए जिनके माता-पिता की आय 500/- रुपये प्रति माह से अधिक नहीं है, अखिल भारतीय योग्यता छात्रवृत्ति परीक्षा का आयोजन किया जा चुका है । परीक्षा के परिणाम दिसम्बर, 1977 के अन्त तक घोषित कर दिये जाएंगे ।

विदेश में अध्ययन के लिए राष्ट्रीय छात्रवृत्तियाँ, 1978-79

विदेश अध्ययन के लिए राष्ट्रीय छात्रवृत्तियाँ योजना, 1978-79 के अंतर्गत 50 छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने के लिए आवेदन पत्र आमंत्रित किये गए हैं । तीन छात्रवृत्तियाँ उन अवर स्नातक विषय पाठ्यक्रमों के लिए निर्धारित की गई हैं जिनके लिए डिग्री पाठ्यक्रम की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं जैसे मुद्रण प्रौद्योगिकी इत्यादि अथवा विदेशी (मुख्यतः एशियाई) भाषाएँ । 27 छात्रवृत्तियाँ पीएच० डी० हेतु, स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए तथा 20 छात्रवृत्तियाँ उत्तर-डाक्ट्रेट अनुसंधान/विशेषज्ञ प्रशिक्षण के लिए उपलब्ध होंगी । प्रार्थना-पत्र प्राप्त करने की अन्तिम तिथि 25 जनवरी, 1978 है ।

अरबी एवं फारसी के अध्ययन में लगे पारम्परिक संस्थाओं के छात्रों को अनुसंधान छात्रवृत्ति-योजना

अरबी तथा फारसी के अध्ययन में लगे पारम्परिक संस्थाओं के छात्रों को अनुसन्धान छात्रवृत्तियों की योजना के आधीन इन विषयों में 20 छात्रवृत्तियां प्रदान करने के लिए आवेदन पत्र आमंत्रित किये गए हैं ! आवेदन पत्रों के प्राप्त होने की अन्तिम तिथि 25 दिसम्बर, 1977 है ।

स्वैच्छिक हिन्दी संगठनों को अनुदान

18 स्वैच्छिक संगठनों को उनके हिन्दी प्रसार संबंधी कार्यों, अर्थात् निशुल्क हिन्दी अध्यापक कक्षाएं चलाने, प्रकाशन निकालने, हिन्दी पुस्तकालय चलाने, सम्मेलन, सेमिनार आदि का आयोजन करने के लिए 2,74,756 रु० का अनुदान मंजूर किया गया ।

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान

केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, श्री अरविंद आश्रम, नई दिल्ली के एक "भारतीय द्विभाषावाद" प्रकाशन का राज्य मंत्री श्रीमती रेणुका देवी बरकटकी द्वारा 18 अक्तूबर, 1977 को विमोचन किया गया।

हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों का निर्माण

हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्यपुस्तकों की रचना में हुई प्रगति पर विचार करने के लिए हिन्दी भाषी राज्यों के शिक्षा मंत्रियों तथा कुलपतियों का एक सम्मेलन, शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय में राज्य मंत्री श्रीमती रेणुका देवी बरकटकी की अध्यक्षता में विज्ञान भवन, नई दिल्ली में 19 नवम्बर, 1977 को आयोजित किया गया। सम्मेलन में शिक्षण माध्यम को बदलने के संबंध में भाषा नीति को कार्यान्वित करने के लिए वास्तविक रूप से ठोस कदम उठाने का संकल्प किया गया।

केन्द्रीय अंग्रेजी तथा विदेशी भाषा संस्थान, हैदराबाद

अंग्रेजी में ब्रिटिश विशेषज्ञ श्री के० डब्ल्यू० मूडी, अंग्रेजी के अध्यापकों के लिए ग्रीष्म संस्थान आयोजित करने के लिए, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्थापित सैल, में 28 सितम्बर, 1977 को एक विजिटिंग रीडर के रूप में शामिल हो गए।

भारत-सोवियत सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम 1976-78 के अंतर्गत, रूसी विशेषज्ञ कुमारी एल० पी० स्तिश्चना एवं श्रीमती जी० ए० कोटल्यारेवस्कया, संस्थान के रूसी विभाग में 1 अक्तूबर, 1977 से विजिटिंग रीडर के रूप में शामिल हो गईं।

मध्य प्रदेश में सभी विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी शिक्षण में सुधार करने के लिए, मध्य प्रदेश उच्च शिक्षा अनुदान आयोग द्वारा नियुक्त एक समिति ने संस्थान के निदेशक तथा अन्य संकाय सदस्यों से विचार-विमर्श करने के लिए संस्थान का दौरा किया।

सोवियत क्रांति की 60 वीं वर्षगाँठ मनाने के संबंध में संस्थान के रूसी भाषा विभाग द्वारा रूसी भाषा एवं साहित्य की पुस्तकों और फोटोग्राफों तथा "महान अक्तूबर क्रांति" "आज का सोवियत संघ" से संबंधित अन्य सामग्री की एक प्रदर्शनी आयोजित की गई।

भारतीय भाषा संस्थान

भारत की भाषाई एटलस के लिए 15 भाषाओं में मान-चित्रों के एक सैट का शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय में राज्य मंत्री श्रीमती रेणुका बरकटकी द्वारा 25 अक्तूबर, 1977 को विमोचन किया।

उर्दू पुस्तकों का निर्माण

उर्दू प्रोन्नति ब्यूरो को, जो तरक्की-ए-उर्दू बोर्ड के लिए सचिवालय का कार्य करता है, 5 नवम्बर, 1977, को शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय का एक अधीनस्थ कार्यालय घोषित किया गया। आलोच्य अवधि के दौरान 5 और पुस्तकें प्रकाशित की गयीं जिनसे उर्दू पुस्तक निर्माण योजना के अधीन प्रकाशित पुस्तकों की कुल संख्या 117 हो गई। इस अवधि के दौरान 18,000 रु० की पुस्तकें बेची गईं।

सिंधी पुस्तक निर्माण

सिंधी पुस्तक निर्माण योजना के अधीन दो संदर्भ कृतियाँ अर्थात्, एक सिंधी-अंग्रेजी शब्दकोष एवं एक सिंधी व्याकरण का, मुद्रण किया गया। कुछ अन्य पाण्डुलिपियां भी पूरी हो गई हैं जिनका मुद्रण हेतु सम्पादन किया जा रहा है। इस कार्यक्रम का पथ प्रदर्शन करने के लिए गठित सिंधी सलाहकार समिति की तीसरी बैठक दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में होगी।

युवा सेवाएँ—

राष्ट्रीय सेवा कर्मी योजना

उन युवकों को, जिन्होंने अपनी प्रथम डिग्री पूरी कर ली है तथा जो एक निश्चित अवधि तक, पूरे समय के लिए राष्ट्र निर्माण गतिविधियों में स्वेच्छा के आधार पर शामिल होना चाहते हैं, अवसर प्रदान करने के उद्देश्य में 1977-78 से राष्ट्रीय सेवा कर्मी योजना चलाई गई है। आरम्भ में, कम से कम एक वर्ष के लिए राष्ट्रीय सेवा कर्मियों को, स्वैच्छिक संगठनों तथा नेहरू युवक केन्द्रों के माध्यम से प्रौढ़ शिक्षा/अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों के प्रोत्साहन कार्य में लगाया जाएगा। क्षेत्र में कार्य प्रारम्भ करने के पहले कर्मियों को उपयुक्त प्रशिक्षण दिया जाएगा। प्रत्येक कर्मी को 175/- रु० प्रतिमास की वृत्तिका तथा वहन किया गया यात्रा तथा आकस्मिक व्यय प्रदान किया जाएगा।

"रा० से० क० योजना के अंतर्गत कर्मियों को प्रशिक्षण" पर एक कार्यशाला 14-16 नवम्बर, 1977 को आयोजित की गई, जिसमें प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में विशषज्ञ सात संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इन प्रतिनिधियों ने प्रशिक्षण कार्यक्रम में लगी संस्थाओं के उपयोग के लिए एक पुस्तिका को अंतिम रूप दिया। प्रशिक्षण कार्यक्रम को भी अन्तिम रूप दिया गया। आशा है कि कर्मियों का प्रशिक्षण जनवरी 1978 के अन्त तक पूरा हो जायेगा तथा उसके तुरन्त बाद कर्मी अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य करना प्रारम्भ कर देंगे।

यूनेस्को

शिक्षा मंत्री के विशेष सहायक श्री ए० के० बासु तथा यूनेस्को से सहयोग के लिए भारतीय राष्ट्रीय आयोग के सचिव को यूनेस्को द्वारा राष्ट्रीय आयोगों के नये सचिवों तथा अधिकारियों के लिए 31-10-77 से 18-11-77

तक पैरिस में आयोजित प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में भाग लेने के लिए प्रतिनियुक्त किया गया।

शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय में संयुक्त सचिव श्री अनिल बोदिया तथा भारतीय शिक्षा संस्थान, पूना की निदेशक श्रीमती चित्रा नायक को 15 से 28 नवम्बर, 1977 तक बकाक में आयोजित एशिया में साक्षरता पर क्षेत्रीय विशेषज्ञों तथा उसके पैनेल की बैठकों में भाग लेने के लिए प्रति-नियुक्त किया गया।

इस मंत्रालय में सचिव श्री एस० एन० पंडित को, 28 नवम्बर से 2 दिसम्बर 1977 तक पैरिस में आयोजित शारीरिक शिक्षा तथा खेलों के लिए यूनेस्को की अंतरिम अन्तर-सरकारी समिति के कार्यदल की बैठक में भाग लेने के लिए प्रति-नियुक्त किया। वे लंदन तथा तेहरान भी गये। लंदन में उन्होंने राष्ट्रमंडल-खेलों के आयोजन के बारे में मुख्य अधिकारियों के साथ बातचीत की।

शैक्षिक आयोजकों एवं प्रशासकों के लिए राष्ट्रीय स्टाफ कालेज—

राज्य शिक्षा आयोजन अधिकारियों के लिए प्रथम प्रशिक्षण कार्यक्रम

राष्ट्रीय स्टाफ कालेज ने, राज्य शिक्षा आयोजन अधिकारियों के लिए 12 से 24 सितम्बर, 1977 तक प्रथम प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया।

कार्यक्रम में, जिसका उद्घाटन भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय में राज्य मंत्री श्रीमती रेणुका देवी बरकटकी ने 12 सितम्बर 1977 को किया था, जम्मू व काश्मीर, महाराष्ट्र तथा तामिलनाडु से आये 8 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य राज्य शिक्षा आयोजन अधिकारियों की, शिक्षा की छठी पंचवर्षीय योजना तैयार करने के कार्य को निपटाने की तकनीकी क्षमता में सुधार करना था।

मध्य प्रदेश के श्रेणी-1 शिक्षा अधिकारियों के लिए अनुस्थापन कार्यक्रम

जन शिक्षा निदेशालय, मध्य प्रदेश सरकार के अनुरोध एवं सहयोग से स्टाफ कालेज ने मध्य प्रदेश के श्रेणी-1 के शिक्षा अधिकारियों के लिए, 3 से 13 अक्तूबर, 1977 तक राज्य शिक्षा संस्थान, भोपाल में, दो सप्ताह का एक अनुस्थापन कार्यक्रम आयोजित किया गया।

20 अधिकारियों ने इस कार्यक्रम का लाभ उठाया, जिनमें 6 प्रभागीय शिक्षा अधीक्षक, 1 उप जनशिक्षा निदेशक तथा शिक्षा महाविद्यालयों के 13 प्रिंसिपल एवं प्राध्यापक थे। कार्यक्रम का उद्घाटन मध्य प्रदेश सरकार के शिक्षा मंत्री श्री हरिभाऊ जोशी ने 3 अक्तूबर, 1977 को किया।

कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य थे :—

— भाग लेने वालों को शिक्षण योजना एवं प्रशासन की कुछ संकल्पनाओं, तकनीकी एवं समस्याओं से परिचित कराना ;

— उन्हें नई शिक्षा प्रवृत्तियों तथा कोटि सुधार कार्यक्रमों से उन्हें परिचित कराना ; तथा

— शैक्षिक पर्यवेक्षक के रूप में उन्हें अपनी तकनीकी क्षमता एवं प्रभाव-शीलता में सुधार करने के योग्य बनाना।

अन्दमान तथा निकोबार द्वीप समूहों के शिक्षा अधिकारियों तथा स्कूलों के प्रिंसिपलों के लिए अनुस्थापन कार्यक्रम

राष्ट्रीय स्टाफ कालेज ने, अन्दमान तथा निकोबार द्वीप समूहों के शिक्षा निदेशालय के सहयोग से अन्दमान तथा निकोबार द्वीप समूहों के शिक्षा अधिकारियों तथा स्कूलों के प्रिंसिपलों के लिए 26 अक्तूबर से 7 नवम्बर, 1977 तक शैक्षिक आयोजन एवं प्रशासन पर एक अनुस्थापन कार्यक्रम आयोजित किया।

इस कार्यक्रम में जिसका उद्घाटन श्री बी० आर० टमटा, मुख्यायुक्त, अन्दमान तथा निकोबार द्वीप ने 26 अक्तूबर, 1977 को किया था, 28 प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य थे :—

— भाग लेने वालों को शैक्षिक आयोजन तथा प्रशासन की कुछ संकल्पनाओं, तकनीकों एवं समस्याओं से परिचित कराना ;

— उन्हें नई शैक्षिक प्रवृत्तियों तथा कोटि सुधार के कार्यक्रमों से परिचित कराना; तथा

— उन्हें शैक्षिक पर्यवेक्षकों के रूप में उन्हें अपनी तकनीकी क्षमता एवं प्रभावशीलता में सुधार करने के योग्य बनाना।

संस्कृति विभाग

शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति मंत्री के निमंत्रण पर जर्मन जनवादी गणराज्य के ड्रेसडेन में ललित कला महाविद्यालय के रैक्टर, प्रो० फ्रेडरिक आइजेल, 18 नवम्बर से 25 नवम्बर, 1977 तक भारत आए। इस समय के दौरान वे दिल्ली, वाराणसी तथा कलकत्ता गए तथा उन्होंने पुस्तकालयों और संग्रहालयों आदि समत कला एवं संस्कृति से संबंधित संस्थाओं और संगठनों का दौरा किया।

भारत सरकार के शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति मंत्री के निमंत्रण पर श्री लंका के सांस्कृतिक मामलों के मंत्री महामहिम ई० एल० बी० हुरुले, श्रीमती हुरुले, सांस्कृतिक मंत्रालय के सचिव, श्री नलिन रत्नायके तथा श्रीमती रत्नायके,

और सांस्कृतिक मामलों के मंत्री के निजी सचिव (योजना) सहित 25 नवम्बर से 1 दिसम्बर 1977 तक भारत आए।

भारत सरकार तथा श्री लंका के बीच एक सांस्कृतिक करार पर नई दिल्ली में 29 नवम्बर, 1977 को हस्ताक्षर किये गये। करार पर, भारत सरकार की ओर से शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति मंत्री डा० पी० सी० चन्द्र द्वारा तथा श्री लंका की ओर से बंध के सांस्कृतिक मामलों के मंत्री महामहिम श्री ई० एल० बी० हुरुले द्वारा हस्ताक्षर किये गए।

करार के आधीन दोनों देशों के बीच सूझबूझ तथा सम्बंधों की, विशेषत: कला, संस्कृति, शिक्षा, खेल-कूद, छात्रवृत्तियों और डिग्रियों/डिप्लोमाओं की समकक्षता आदि के मामले में, सांस्कृतिक तथा बौद्धिक विनिमयों, शिक्षा, साहित्य तथा खेल संगठनों के प्रतिनिधियों की पारस्परिक यात्राओं विचार-गोष्ठियों तथा सेमिनारों, एक-दूसरे देश के फिल्म-समारोहों में भाग लेने, शैक्षिक, सांस्कृतिक तथा खेल प्रकाशनों के विनिमय, कला प्रदर्शनियों के विनिमय, पुरातत्वीय महत्व की वस्तुओं के परिरक्षण और प्रदर्शन तथा नमूनों प्रतिकृतियों अथवा आकृतियों के विनिमय द्वारा प्रोन्नति और विकास की परिकल्पना की गई है।

सांस्कृतिक शिष्टमंडल (भारत आने वाले)—

पूर्व यूरोपीय प्रभाग—

जर्मन जनवादी गणराज्य

ज०ज० ग० की एक संगीत मंडली— "बर्लिन आक्टेट" ने 30 अक्तूबर से 10 नवम्बर, 1977 तक भारत का दौरा किया। मंडली ने कलकत्ता, मद्रास, बम्बई तथा दिल्ली में प्रदर्शन किया।

यू० एस० एस० आर०

महान अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति की 60 वीं वर्ष गांठ के उपलक्ष में भारत में 15 नवम्बर से 3 दिसम्बर, 1977 तक एक सोवियत कला तथा सांस्कृतिक समारोह का आयोजन किया गया। यह सोवियत रूस में इसी प्रकार मनाई गई भारतीय स्वतंत्रता की 30वीं वर्ष गांठ (15सितम्बर से 5अक्तूबर, 1977 तक) के प्रत्युत्तर में था।

निम्नलिखित अभिनय तथा गैर-अभिनय दल इस समारोह में भाग लेंगे :

(1) 70 सदस्यीय लोक नृत्य मंडली
(2) 50 सदस्यीय बोलशोई लोक नृत्य रंगमंच दल
(3) 20 सदस्यीय कठपुतली दल
(4) 5 सदस्यीय कवियों का एक दल
(5) 3 सदस्यीय एकल-गायन दल
(6) सदस्यीय/सरकारी प्रतिनिधिमंडल
(7) छ कलाकारों के साथ दो सोवियत प्रदर्शनियां (चित्र तथा फोटोग्राफी)
(8) 7–8 रुपक फिल्मों का सोवियत फिल्म कलाकार प्रतिनिधि मंडल, सोवियत फिल्म समारोह तथा इतनी ही संख्या में अंग्रेजी उप-शीर्षकों वाले वृत्तचित्र।

इस समारोह का उद्घाटन दिल्ली में 15 नवम्बर को बोलशोई रंग मंच तथा लोक मंडली के संयुक्त प्रदर्शन के साथ किया गया। दल, भारत के अन्य भागों में प्रदर्शन करने के पश्चात 4 दिसम्बर, 1977 को सोवियत रूस वापस लौट गया। भारतीय कला एवं संस्कृति समारोह का उद्घाटन 15 सितम्बर, 1977 को बोलशोई रंगमंच, मास्को में भारत के शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति मंत्री द्वारा किया गया। इस में 4 अभिनय दल, फिल्म समारोह, 3 प्रदर्शनियां (लघुचित्र, शिल्प-वस्तुएं तथा फोटोग्राफी) 3 लेखक तथा भारतीय भोजनों का प्रदर्शन करने के लिए 5 भारतीय रसोइयों का एक दल सम्मिलित था।

साहित्य अकादमी—

राष्ट्रीय शरत्चन्द्र सेमिनार

प्रसिद्ध बंगला उपन्यासकार शरत्चन्द्र चटर्जी के जन्म शताब्दी समारोहों के समापन अवसर पर साहित्य अकादमी ने शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति मंत्रालय के सहयोग से 27 अगस्त, 1977 को नई दिल्ली में आधुनिक भारतीय साहित्य तथा नवीन नैतिकता पर एक राष्ट्रीय सेमिनार का आयोजन किया। सेमिनार का उद्घाटन प्रो० उमाशंकर जोशी ने किया। साहित्य अकादमी के कार्यवाहक अध्यक्ष प्रो० के० आर० श्रीनिवास आयंगर ने पहले अधिवेशन की अध्यक्षता की और अध्यक्षीय भाषण दिया। विभिन्न भारतीय भाषाओं के लगभग 40 विशिष्ट लेखकों तथा आलोचकों ने सेमिनार में भाग लिया।

महाकवि उल्लूर परमेश्वर आयर की जन्म शताब्दी

मलयालम के विख्यात साहित्यकार महाकवि उल्लूर परमेश्वर आयर की जन्म शताब्दी के अवसर पर, महाकवि उल्लूर शताब्दी समारोह समिति द्वारा आयोजित शताब्दी समारोह के साथ-साथ साहित्य अकादमी ने 10-11 सितम्बर, 1977 को त्रिवेन्द्रम में "समकालीन भारतीय काव्य : आध्यात्मिक मूल्यों की एक खोज" पर एक राष्ट्रीय सेमिनार का आयोजन किया।

अकादमी के कार्यवाहक अध्यक्ष प्रो० के० आर० श्रीनिवास आयंगर की अध्यक्षता में 27 सितम्बर, 1977 को मद्रास में भी महाकवि उल्लूर परमेश्वर आयर की जन्म शताब्दी मनाई गई। मद्रास विश्वविद्यालय में मलयालम के सेवानिवृत्त प्रोफेसर डा० एस० के० नायर ने उल्लूर की कविताओं पर व्याख्यान दिया।

दयाराम की द्वि-शताब्दी

प्रसिद्ध मध्यकालीन गुजराती कवि, दयाराम की द्वि-शताब्दी मनाने के लिए बड़ौदा में 22 और 23 अक्तूबर 1977 को एक दो-दिवसीय प्रादेशिक सेमिनार आयोजित किया गया।

विद्यार्थियों को रियायती दरों पर पाठ्यपुस्तकों तथा कापियों की आपूर्ति

विभिन्न शैक्षिक प्रयोजनों के लिए अक्तूबर-दिसम्बर की तिमाही के वास्ते राज्य सरकारों तथा संघ शासित प्रदेशों को 28,414 टन सफेद कागज आबंटित किया गया।

विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों में पुस्तक बैंक खोलना

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता से विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों में कुल 2623 पुस्तक बैंक खोले गये हैं।

शैक्षिक सांख्यिकी

त्वरित कार्यक्रम के भाग के रूप में 1975–76 वर्ष तक की शैक्षिक सांख्यिकी के संग्रह और प्रकाशन के बकाया कार्य को समाप्त करने और उसमें लगने वाले समय को कम करने के लिए शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय के सांख्यिकी तथा आयोजन प्रभाग के अधिकारियों ने वहीं पर शैक्षिक सांख्यिकी को अन्तिम रूप देने के वास्ते मध्य प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल राज्यों का दौरा किया।

दादरा तथा नागर हवेली प्रशासन के शिक्षा विभाग द्वारा इस मंत्रालय में प्रतिनियुक्त दो अधिकारियों को सांख्यिकी तथा आयोजन प्रभाग द्वारा शैक्षिक सांख्यिकी एकत्र करने की संशोधित पद्धति में प्रशिक्षण दिया गया।

प्रकाशन

इस अवधि के दौरान निकाले गये प्रकाशन हैं :—

(1) दस वर्षीय स्कूल पद्धति के लिए पाठ्यचर्या पर पुनरीक्षण समिति की रिपोर्ट।

(2) संघशासित क्षेत्र, दिल्ली में जमा 2 स्तर पर कार्य-क्रम-शिक्षा-कार्यक्रम के आयोजन पर कार्यदल की रिपोर्ट।

(3) चुनी हुई शैक्षिक सांख्यिकी, 1976–77।

● ● ●

[पृष्ठ 42 का शेष]

(5) इस स्तर पर विद्यार्थियों की बढ़ती हुई संख्या की आवश्यकता को पूरा करने के लिए कालेज पुस्तकालयों तथा प्रयोगशालाओं का विस्तार तथा सुधार किया जाए।

(6) परीक्षा प्रणाली के कारण होने वाले अपार अपव्यय को देखते हुए शिक्षा के उच्च स्तर पर परीक्षा सुधार अत्यंत आवश्यक है।

(7) कालेज स्तर पर विद्यार्थियों के ज्ञान तथा क्षमताओं को परखने के लिए परीक्षा के स्थान पर मूल्यांकन की कोई और बेहतर प्रणाली अपनाई जाए।

(8) अध्यापकों को अपनी शैक्षिक तथा व्यावसायिक अर्हताओं में वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उन्हें अपनी ही संस्थाओं में अनुसंधान कार्य करने के लिए भी प्रेरित किया जाना चाहिए।

(9) एक कलाकार, दार्शनिक तथा साहित्यकार की तरह अध्यापक को, अपनी आंतरिक सृजनशीलता द्वारा प्रेरित व्यक्ति के रूप में कार्य करना चाहिए न कि किसी बाहरी शक्ति के दबाव और चापलूसी के अंतर्गत।

(10) अध्यापक का उद्देश्य छात्रों का चरित्र निर्माण, व्यावसायिक तथा व्यावहारिक कार्यकुशलता में सुधार तथा उनमें साहित्यिक, कलात्मक और सांस्कृतिक रुचियों का विकास करना होना चाहिए ताकि वे धर्मनिरपेक्ष भारत गणराज्य के प्रशिक्षित नागरिक बन सकें।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि शैक्षिक संरचना का निर्माण कठिन तो है परन्तु असंभव नहीं है। इसमें किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं है, सिर्फ खून, पसीना, मेहनत तथा आंसुओं की आवश्यकता है। यदि हम विश्वास के साथ तथा निश्चयपूर्वक शुरूआत करें तो यात्रा चाहे कितनी भी कठिन क्यों न हो, इसका कोई कारण नहीं है कि हम उसे पूरा न कर सकें। निश्चय ही रास्ता लम्बा है तथापि लम्बा सफर पूरा करना ही है।

● ● ●

भा०स०मु०ना—वि० 7—401 एम० आफ० एज्यूकेशन/77—6-5-78—570

शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति मंत्रालय की अन्य त्रैमासिक पत्रिकाएं

1. 'संस्कृति' (हिंदी)

इस पत्रिका मे भारत तथा देश-विदेश के सांस्कृतिक कार्यक्रमों, गतिविधियों और प्रयोगों के सम्बन्ध में अधिकृत सूचना दी जाती है। सभी लेख निष्पक्ष होते हैं।

2. दि एज्यूकेशन क्वार्टरली (अंग्रेजी)

इस पत्रिका में वर्तमान और महत्वपूर्ण शैक्षिक समस्याओं का विवेचन किया जाता है और मंत्रालय की शैक्षिक गतिविधियों के बारे में जानकारी दी जाती है।

3. इण्डियन एज्यूकेशन एब्सट्रेक्ट्स (अंग्रेजी)

इस पत्रिका में भारतीय शिक्षा से संबंधित महत्वपूर्ण साहित्य की विषय-वस्तु का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है। इस पत्रिका से पाठकों को, आवश्यकता पड़ने पर, मूल लेखों तथा प्रकाशनों का हवाला देने में मदद मिलती है।

मूल्य :

'संस्कृति'	एक प्रति	1.00 रुपया
	वार्षिक चन्दा	4.00 रुपए
'दि एज्यूकेशन क्वार्टरली'	एक प्रति	4.50 रुपए
	वार्षिक चन्दा	18.00 रुपए
इंडियन एज्यूकेशन एब्सट्रेक्ट्स	एक प्रति	3.90 रुपए
	वार्षिक चन्दा	15.60 रुपए

इन सभी पत्रिकाओं की प्रतियों, वार्षिक चन्दे इत्यादि की पूछताछ के लिये प्रकाशन नियंत्रक, सिविल लाइन्स, दिल्ली-54 को या निम्नलिखित पते पर लिखिये। चन्दा भी इस पते पर भेजा जा सकता है।

निदेशक (हिन्दी प्रकाशन),
शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति मंत्रालय,
102-सी, 'सी' विंग, शास्त्री भवन,
नई दिल्ली–110 001.

PED.462-1-78
570

Registration No. 25556/73

मूल्य : एक प्रति : 4.50 रुपए अथवा 0.53 पौंड या 1 डालर 62 सेंट्स

वार्षिक : 18 रुपए अथवा 2.10 पौंड या 6 डालर 48 सेंट्स

प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, नासिक 422 006 द्वारा मुद्रित और नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली-110 006 द्वारा प्रकाशित
1978

अप्रैल, 1978

शिक्षा विवेचन



इस अंक में

शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय - भारत सरकार

शिक्षा विवेचन

● यह पत्रिका प्रत्येक वर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई और अक्तूबर में त्रैमासिक रूप में छापी जाती है।

● इस पत्रिका में, इस मंत्रालय की अंग्रेजी की त्रैमासिक 'दि एज्यूकेशन क्वार्टरली' में छपे लेखों का हिन्दी अनुवाद छापा जाता है। इनमें शिक्षा संबंधी विचारों, समस्याओं और सामयिक विषयों की व्याख्या होती है। पत्रिका में शैक्षिक रुचि के महत्वपूर्ण प्रश्नों और भारत तथा विदेश में हो रही शैक्षिक और युवा कल्याण की गतिविधियों और प्रयोगों की जानकारी देने का प्रयास किया जाता है। लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने विचार होते हैं और यह आवश्यक नहीं कि वे सरकार के विचार और दृष्टिकोण के अनुरूप हों।

● इस पत्रिका की बिक्री के संबंध में पूछताछ और वार्षिक चन्दा व मनीआर्डर आदि प्रकाशन प्रबंधक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110 006 को भेजा जाना चाहिये। पत्रिका की प्रतियां, मंत्रालय के विक्रय डिपो, ग्राउण्ड फ्लोर, डी-विंग, शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110 001 से भी खरीदी जा सकती हैं।

● विज्ञापनों आदि के बारे में जानकारी, विज्ञापन एजेन्ट, भारत सरकार के प्रकाशन, 5 ए/10, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली से मिल सकती है।

शिक्षा विवेचन

(त्रैमासिक)

वर्ष - सात

अंक - एक

(अप्रैल, 1978)

विषय वस्तु

इस अंक में —

1—77 ऐजूकेशन/78

इस अंक में

शिक्षा विवेचन के इस अंक के विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत, शिक्षा क्षेत्र की ज्वलंत समस्याओं तथा ऐसे प्रश्नों की चर्चा की गई है जिनके तत्काल समाधान की आवश्यकता है और जिन पर उन सभी व्यक्तियों का ध्यान केन्द्रित है जो हमारे देश को शैक्षिक प्रगति से सम्बन्धित हैं तथा जो राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। उदाहरणार्थ, श्री डी० पी० नायर के लेख का विषय है—ग्रामीण विकास में औपचारिक शिक्षा के प्रबन्ध में क्या समस्याएं हैं। परिवर्तनशील विश्व में शिक्षा के प्रति एक विस्तृत दृष्टिकोण का सुझाव श्री अशोक सेन ने दिया है जो इस पक्ष में नहीं है कि शैक्षिक दृष्टि से प्रतिभाशाली व्यक्तियों को उन व्यक्तियों की तुलना में ऊँचा दर्जा दिया जाए, जिन्हें अन्य क्षेत्रों में दक्षता प्राप्त है। वस्तुतः इस वर्ग के व्यक्तियों को इतना उँचा दर्जा दिए जाने का कारण हमारी शिक्षा प्रणाली है जो हमें विरासत में प्राप्त हुई, इसका उल्लेख डी० पी० दास के लेख में किया गया है। श्री सुन्दरराजन के विचार में वास्तविक प्रश्न यह नहीं है कि क्या शिक्षा आवश्यक है, बल्कि यह है कि किस प्रकार की शिक्षा प्रदान करने की आवश्यकता है। इसका अर्थ होगा ऐसी परिस्थिति में विभिन्न दक्षताओं और अभिरूचियों को सम्पन्न बनाने के लिए सुविधाएं उपलब्ध करना होगा जहाँ किसी व्यक्ति की नागरिकता के संघटकों में से शिक्षा एक वास्तविक घटक हो।

यदि हम शिक्षा के लाभ अनुसूचित जातियों तक पहुँचाना चाहते हैं तो इसके लिए क्या प्रक्रिया अपनाई जाये, इस बात का विश्लेषण श्री जी० खुराना ने अपने लेख "अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण" में किया है।

इसके अतिरिक्त, इस अंक में, जनसंख्या शिक्षा, रोजगारोन्मुख शिक्षा, तथा राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के प्रति शिक्षक-प्रशिक्षण का अनुस्थापत्त संबंधी लेख है, जो हमारे शैक्षिक आयोजकों तथा प्रशासकों के लिए तात्कालिक महत्व के है।

—सम्पादक

लेखक परिचय

डी० पी० नायर
शैक्षिक आयोजकों तथा
प्रशासकों के लिए राष्ट्रीय स्टाफ कालेज,
17-बी, श्री अरविंद मार्ग,
नई दिल्ली 110016

डी० पी० दास
ए-24 डी, डी० डी० ए० फ्लेट्स,
मुनीरका, नई दिल्ली 110057

जी० खुराना
शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय,
शास्त्री भवन, नई दिल्ली

वीरेन्द्र अग्रवाल
22 लेडी हार्डिंग रोड,
नई दिल्ली 110001

बी० के० मट्टू
शिक्षक शिक्षा विभाग,
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा
प्रशिक्षण परिषद,
श्री अरविंद मार्ग,
नई दिल्ली 110016

अशोक सेन
65 राष्ट्रगुरु एवेन्यू,
कलकत्ता 700028

टी० एस० सुन्दरराजन
शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय,
शास्त्री भवन, नई दिल्ली

रमेश चन्द्र
जनसंख्या शिक्षा यूनिट,
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
एवं प्रशिक्षण परिषद,
श्री अरविंद मार्ग,
नई दिल्ली 110016

ग्रामीण विकास के लिए औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था

— डी० पी० नायर

समस्याएं तथा नीतियां

'ग्रामीण विकास के लिए शिक्षा' का अर्थ एक तरफ तो शिक्षा की परस्पर शक्तिवर्धक क्षमताओं को पहचानना और उनका अनुकूलतम उपयोग करना और दूसरी ओर अन्य विकासात्मक तत्वों का उपयोग करना है। यह एक दुतरफी प्रक्रिया है। शिक्षा अपनी विशिष्टताओं की सीमा में तथा अपने लक्ष्य को प्रभावी रूप से प्राप्त करने की दृष्टि से स्वयं को परिष्कृत करती है ताकि विकास में मदद मिल सके। इसी प्रकार अन्य तत्व भी इस बात को समझ कर कि समुचित रूप से अभिव्यक्त शिक्षा से उन्हें क्या-क्या सहायता मिल सकती है, उस अभिव्यक्ति को प्रभावित करने में अपनी सामग्री तथा तकनीकी सहायता से उसमें मदद कर सकते हैं। नीति-स्तर पर भी, इस प्रकार की जानकारी एक-सी नहीं होती हैं, कार्यान्वियन के स्तर पर तो इसका जिक्र ही नहीं किया जा सकता है। दूसरी ओर, यह काम बहुत व्यापक है और इसका प्रभाव औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों प्रकार की ही शिक्षा के सभी स्तर पर पड़ता है और नीति-निर्माण के उच्चतम स्तर से कार्यान्वियन निम्नतम स्तर तक जो अनेक विकासात्मक एजेन्सियां हैं उन पर भी यह प्रभाव पड़ता है। विभिन्न चरणों पर समस्याएं विभिन्न प्रकार की होती हैं और इसी प्रकार वे नीतियों भी विभिन्न होती हैं जिनको अपनाया जाता है अथवा जिनकी जरूरत होती है। मोटे तौर पर, इस विषय पर औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा नामक दो मुख्य शीर्षकों से और उनके विभिन्न उप-शीर्षकों से विचार किया जा सकता है। उसके बाद, कुछ समग्र समस्याओं तथा नीतियों पर विचार किया जा सकता है। इस लेख में हम केवल औपचारिक शिक्षा पर विचार करेंगे जिस पर हम प्रति वर्ष लगभग 2500* करोड़ रुपये खर्च करते हैं और जो विभिन्न क्षेत्रों में हमें अधिकांशतः उच्च नेतृत्व प्रदान करते है।

स्कूल-पूर्व शिक्षा

सबसे महत्वपूर्ण विकासात्मक तत्व एक ऐसा विकासोन्मुख व्यक्ति होता है जिसे स्वस्थ, उत्पादक तथा सामाजिक रूप से उपयोगी जीवन जीने के लिए जानकारी हो। इसके अतिरिक्त उसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण, पहल शक्ति तथा साधन-सम्पन्नता का विकास करना चाहिए। पूर्व-स्कूल स्तर पर ठीक-ठीक पोषण का सर्वोच्च महत्व है क्योंकि आधुनिक अनुसंधान से यह सिद्ध हो गया है कि इस आयु में आहार की कमी से दिमाग पर स्थायी कुप्रभाव पड़ता है। भारतकी समस्या इतनी बड़ी है कि इसे सामुदायिक और खाद्य तथा कृषि विभागों के पूरे-पूरे सहयोग से हल किया जा सकता है। विभागों को इस बात पर अनुसंधान करना है कि बच्चों की खाद्य संबंधी कमी को पूरा करने के लिए स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री का उपयोग कैसे किया जाए। इस सहयोग का ही परिणाम यह है कि भारत में बालाहार का तथा मिलटोन, विटामिनयुक्त रोटी इत्यादी जैसी उन अनेक वस्तुओं का उत्पादन हुआ है जो पूर्व-स्कूल आयु के बच्चों की जरूरतों को पूरा कर रही हैं। समाज अनेक स्थानों पर बच्चों को परम्पर गत खाद्य-सामग्री प्रदान करता है जो अनुसंधान द्वारा उपलब्ध की गई वस्तुओं की पोषण शक्ति संबंधी तत्वों की कमी को पूरा करती है। यदि स्कूल प्राधिकारी फसल के समय खाद्यान्न जमा कर लें तो ऐसा करना आसान हो जाता है। अनेक स्थानों पर स्वास्थ्य विभाग इस छोटी आयु-वर्ग के बच्चों के स्वास्थ्य की देखभाल करने में शिक्षकों को सहयोग दे रहे हैं क्योंकि बच्चों की देखभाल का अधिकतर कार्य माता द्वारा किया जाता है, इसलिए भारत में प्रायोगिक आधार पर समेकित बाल देख-रेख सेवा योजना ('इंटीग्रेटिड चाइल्ड केयर सर्विस स्कीम') नामक योजना शुरु की गई है। इस योजना में "पूरक आहार, प्रतिरक्षण, स्वास्थ्य की जांच, परामर्श सेवा तथा आहार संबंधी शिक्षा पर बल दिया जाता है..... योजना में गर्भवती महिलाओं तथा धाय (नर्सिंग मदर) की जरूरतों को ध्यान में रखा जाएगा। विशेष रूप से उन महिलाओं की जरूरतों को जो समाज के कमजोर वर्गों से संबंधित हैं। योजना का उद्देश्य शिशुओं तथा माताओं की मृत्यु-दर को भी कम करना होगा"।*

*पांचवीं पंचवर्षीय योजना प्रारूप, भारत सरकार, योजना आयोग, 1974, पृ० 279

प्रारम्भिक शिक्षा

प्रारम्भिक स्तर पर (कक्षा I से VII/VIII तक) बच्चे को स्वास्थ्य तथा आहार और प्रथम-उपचार संबंधी प्रारम्भिक जानकारी अवश्य दी जानी चाहिए। उसे हस्त-कौशल (फिंगर स्किल्स), मांसपेशियों के तालमेल का विकास करना चाहिए तथा आधुनिक कृषि और कुछ अन्य कला (ओं) की विस्तृत तथा बुनियादी जानकारी हासिल करनी चाहिए ताकि यदि प्राथमिक शिक्षा की समाप्ति पर ही उस जीवन में प्रवेश करना पड़े तो वह ऐसा कर सके और उस बच्चे से ज्यादा अच्छा काम कर सके जो उसी काम को बिना स्कूल गए करता है। बच्चे को स्कूल में सहकारी गतिविधियों के आयोजन तथा सहकारी समितियों और पंचायतों को चलाने का भी पर्याप्त अभ्यास करना चाहिए। ये कार्य हमारे आर्थिक और राजनीतिक जीवन के बुनियादी अंग हैं। उसे सहयोगी दृष्टिकोण का भी विकास करना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसे कार्यात्मक साक्षरता, अंक शास्त्र तथा प्रौद्योगिकी अथवा पर्यावरण संबंधी सामान्य वैज्ञानिक सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। उसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए जिसके लिए अदम्य जिज्ञासु स्वभाव, तथ्यों के विलक्षण तथा विस्तृत अवलोकन की शक्ति तथा निगमन क्षमता की आवश्यकता होती है।

सर्वप्रथम इस बात की जरूरत है कि इन लक्ष्यों को शिक्षा पद्धति में व्यापक समर्थन प्राप्त हो। भारत में, शिक्षा के कुछ क्षेत्रों में राज्य ने अपने अधिकार स्थानीय संस्थाओं को सौंप दिए हैं। इसके अलावा प्राइवेट संस्थाओं द्वारा चलाए जा रहे अनेक स्कूल तथा कालेज हैं। लेकिन हम केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड, जिसमें सभी राज्य सरकारों का प्रतिनिधित्व है तथा राज्य शिक्षा सचिवों और जन शिक्षा निदेशकों के सम्मेलनों के जरिए शिक्षा संबंधी मामलों में राष्ट्रीय सम्मति ले सकते हैं। हाल ही में शिक्षा को समवर्ती विषय घोषित किए जाने से राष्ट्रीय नीतियों तथा कार्यक्रमों के निर्धारण और कार्यान्वयन में तालमेल बैठाने में और अधिक सहायता मिलेगी। तकनीकी स्तर पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने अपने विभिन्न सम्मेलनों के जरिए सर्वसम्मति प्राप्त कर ली है। पिछले पैराग्राफ में बताए गए लक्ष्य शिक्षा आयोग (1964-66) की सिफारिशों, इन सिफारिशों पर आधारित शिक्षा संबंधी राष्ट्रीय नीति संकल्प (1968) तथा पांचवीं योजना के मसौदे के अनुरूप हैं। इन्हें राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा प्राप्त की गई राष्ट्रीय सर्वसम्मति तथा उनकी पुस्तिका: "दी क्यूरिकलम फार दी टेन इयर स्कूल" में भी सम्मिलित कर लिया गया है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् विकासात्मक जरूरतों के संबंध में पाठ्यचर्या नवीकरण संबंधी अनेक प्रायोगिक परियोजनाएं भी चला रही है।

तथापि, इन लक्ष्यों को कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं में सम्मिलित करने से पहले अभी काफी काम करना बाकी है। इसके लिए पाठ्यचर्या तथा पद्धति और साधनों को ध्यान में रखकर इनमें सुधार के लिए काफी प्रयोग करने होंगे। इसके बाद देशव्यापी विस्तार पद्धति तथा उन लाखों स्कूलों में कार्यक्रमों को लागू करने की जरूरत होगी जिनकी वित्तीय तथा संसाधन क्षमता संबंधी परिस्थितियां विभिन्न हैं। इसके लिए 10 से 20 लाख शिक्षकों को प्रशिक्षण देने तथा मार्गदर्शन और प्रोत्साहन के जरिए इस कार्यक्रम को जारी रखने के लिए स्कूल के हजारों निरीक्षकों तथा उप-निरीक्षकों को उपयुक्त अनुस्थापन देने की आवश्यकता होगी। भारत में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, राज्य शिक्षा संस्थान तथा बड़ी संख्या में प्रशिक्षण स्कूल हैं, इनमें से कुछ के विस्तार विभाग हैं। रा० शै० अनु० और प्रशि० परिषद् के भी चार क्षेत्रीय कालेज हैं जहां प्रत्येक क्षेत्र में प्रमुख व्यक्तियों को प्रशिक्षित किया जा सकता है। उनके पास अनुसंधान तथा प्रशिक्षण के लिए राज्य सरकारों तथा राज्य एजेन्सियों से सम्पर्क के लिए क्षेत्रीय सलाहकार भी हैं। राष्ट्रीय स्टाफ कालेज प्रमुख प्रशासकों तथा आयोजकों को उनके नए कामों में प्रशिक्षण दे सकता है। तथापि समूचे संगठन का एक ही उद्देश्य होना चाहिए तथा इसके विभिन्न भागों के बीच सक्रिय तालमेल होना आवश्यक है। इस दायित्व को केवल शिक्षा मंत्रालय के स्कूल प्रभाग द्वारा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् तथा राष्ट्रीय स्टाफ कालेज के सहयोग से निभाया जा सकता है। यदि सारे काम पर दृष्टि रखने के लिए उस प्रभाग में एक सैल स्थापित किया जाए तो यह अच्छा होगा। संगठनात्मक दृष्टि से एक ऐसा ही सैल, राष्ट्रीय स्टाफ कालेज में तथा पाठ्यचर्या, प्रणाली, पाठ्य पुस्तकें इत्यादि के लिए एक अन्य सैल रा० शै० अनु० और प्रशि० परिषद् में स्थापित करना भी अच्छा होगा ताकि इस सैल की उपलब्धियों पर संगठन द्वारा विचार किया जा सके और सभी संबंधित विभागों में एक साथ ही कार्यवाही की जा सके। प्रत्येक सैल सीधे ही अपने-अपने निदेशक के अधीन होगा।

दूसरी समस्या अपेक्षित परिवर्तनों के लिए आवश्यक संसाधनों की खोज करना है। इसके लिए सबसे पहले इस बात की जरूरत है कि सरकार अधिक साधन उपलब्ध करे जिसे शिक्षा की बढ़ती हुई अनुरूपता तथा प्रभाव द्वारा न्यायसंगत ठहराया जा सकता है। दूसरे, बढ़े हुए साधनों को स्थानीय संस्थाओं को उचित प्रोत्साहन देकर स्थानीय कराधान के जरिए गतिशील बनाना आवश्यक होगा। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र राज्य में प्रत्येक जिला परिषद् को (जिला स्तरीय स्थानीय संस्था) उतना ही अनुदान दिया जाता है जितना जिले को उस समय दिया जाता था जब प्रशासन स्थानीय संस्थाओं

को हस्तांरित किया गया था। इसके बाद से जितनी वृद्धि स्थानीय संस्था संसाधनों में करती है उतनी ही सहायता राज्य सरकार देती है। इससे विभिन्न जिला स्तरीय संस्थाओं के बीच स्थानीय कर में वृद्धि करने की होड़ लग गई है। क्योंकि स्थानीय जरूरतों को पूरा करने के लिए, कर लगाना आवश्यक है अतः करों को व्यापक समर्थन मिला है। भारत में स्थानीय करों के मामले में यह सबसे सफल प्रयोग रहा है। तीसरे, सामुदायिक साधनों को श्रम, नगदी तथा वस्तुओं के रूप में तदर्थ चंदे के जरिए गतिशील बनाया जा सकता है। भारत में, तमिल नाडु राज्य में 1957-58 और 1976-77 के बीच ऐसे तदर्थ चंदों के द्वारा चौदह-पंद्रह करोड़ रुपये जमा किए गए थे। स्कूलों कि जरूरतों से समाज को अवगत करा दिया जाता है और विभिन्न प्रकार के लोग उन जरूरतों को पूरा करने के लिए नगद तथा जिंसों के रूप में अपना-अपना योगदान देते हैं। उपयुक्त समय पर इन सभी वस्तुओं को प्रदर्शित किया जाता है और स्थानीय लोगों का सम्मेलन आयोजित किया जाता है जिसमें राज्य तथा केन्द्र के उच्च अधिकारी तथा राजनीतिक नेता भाग लते हैं, तथा वहां औपचारिक रूप से यह चंदा जमा किया जाता है तथा जनता को इसके संबंध में बताया जाता है। स्कूल सुधार संबंधी ये सम्मेलन अब राज्य की नीति का सामान्य अंग बन गए हैं। अन्य राज्यों ने भी इसका अनुसरण करने का प्रयास किया है और उन्ह विभिन्न स्तरों पर सफलता मिली है। अधिकांश राज्यों में स्थानीय समुदाय ने अपने स्वयं के स्कूल भवन तैयार कर लिए हैं अथवा सरकार से आनुपातिक आधार पर प्राप्त सहायता से बना लिए हैं। चौथे, स्कूल का विकास एक उत्पादक तथा विकासात्मक एजेन्सी के रूप में किया जा सकता है। वर्ष 1978–79 में भारत में लगभग दस करोड़* बच्चे कक्षा I से VIII तक को कक्षाओं में पढ़ रहे होंगे जिनकी आयु 5-18 वर्ष के बीच होगी (छोटी आयु तथा अधिक आयु के बच्चों की उपस्थिति के कारण)। यदि शिक्षा उत्पादन-केन्द्रित हो और छोटी तथा बड़ी उम्र के बच्चों को उचित ढंग से इकट्ठा किया जाए तो स्कूल ऐसी अनेक गतिविधियाँ शुरु कर सकते हैं जो उन्हें श्रेष्ठ शिक्षा देने के अतिरिक्त स्कूल के लिए उन अतिरिक्त संसाधनों में वृद्धि कर सकती है जिनसे स्तर को ऊँचा उठाया जा सके तथा उचित अनुस्थापन किया जा सके। इसका एक अतिरिक्त लाभ यह होगा कि इससे बच्चों में आत्म-निर्भरता की आदत डाली जा सकती है तथा उन्हें इसके योग्य बनाया जा सकता है और स्कूल जाने वाले लाखों बच्चों को यदि आत्म-निर्भरता के महत्व के संबंध में इस छोटी आयु में ही समझा दिया जाए तो इससे हमारे राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में सहायता मिलेगी। पांचवें, प्रसार में लगी अन्य विकासात्मक एजेन्सियों की विस्तार श्रृंखला में एक कड़ी के रूप में सेवा प्रदान करके प्रत्येक परिवार को उपयुक्त प्रौद्योगिकी का संदेश पहुंचाने में स्कूल इन एजन्सियों के भौतिक तथा जानकारी के ससांधनों पर दावा कर सकता है। तथापि, इस काम के लिए अत्यधिक चतुराई की आवश्यकता है। अन्य विकासात्मक एजेन्सियां इसे शिक्षा द्वारा चतुराई से उन संसाधनों को हथियाना समझती हैं जो विकासात्मक कार्यकलापों के लिए उनके अधीन होते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे स्कूलों में, जिनकी सहायता ये विकासात्मक एजेन्सियां नहीं करती, उनमें विस्तार श्रृंखला की सफल कड़ी के रूप में काम करने की क्षमता तथा सामर्थ्य नहीं होता। तथापि, इस दृष्टिकोण का मूल आधार यह है कि आज विस्तार श्रृंखला की अंतिम कड़ी गांव का वह श्रमिक होता है जो अधिकतर कृषि संबंधी कामों में लगा होता है। यहां तक कि उसे दस गांवों की जरूरतों को पूरा करना होता है। अतः स्पष्ट है कि गांव के परिवारों से उसका सम्पर्क दूर का होता है तथा उसमें परिवर्तन एजेन्ट (चेंज एजेन्ट) के रूप में काम करने का सामर्थ्य नहीं होता। दूसरी ओर, स्कूल प्रत्येक गांव अथवा तीन या चार गांवों के क्षेत्र में हैं। गांव का सम्पर्क स्कूल से बहुत घनिष्ट होता है और स्कूल के फार्म अथवा स्कूल के कारखाने में होने वाले किसी भी काम की ओर तत्काल गांव के लोगों का ध्यान चला जाता है। नए धर्म-परिवर्तित लोगों की तरह बच्चे विस्तार का संदेश उत्साहपूर्वक अपने घरों तक पहुंचाते हैं। अतः स्कूल के फार्म तथा स्कूल में दस्तकारी को सहायता करना विकासात्मक एजेन्सियों के प्रभावी रूप से सहायक होगा तथा यह उनके अपने ही हित में होगा। उन्हें कृषि तथा बागवानी संबंधी प्रभावी कार्यो तथा उन्नत दस्तकारी तकनीकों के विकास में स्कूल की सहायता करनी चाहिए। इसी प्रकार स्वास्थ्य संबंधी कार्यों में सहायता करनी चाहिए। स्कूल तथा स्वास्थ्य विभागों के बीच सम्पर्क स्थापित किया जा चुका है। इससे सहकारिता आंदोलन को भी काफी मदद मिलेगी यदि बच्चों के मन में इस छोटी उम्र में ही उनके स्कूलों में छोटी-छोटी सहकारी समितियां चलाकर सहकारिता की भावना भर दी जाए। यह ठीक ही है कि इस देश में सहकारिता आंदोलन में सहकारिता की भावना का अभाव है जिसके परिणामस्वरूप यह आंदोलन स्वतः प्रेरित होकर उभर कर सामने आने के बजाय एक कृत्रिम उपाय बन जाता है। यद्यपि यह दृष्टिकोण सरकारी नीति नहीं बन पाया है तथापि स्कूल की विस्तार संबंधी क्षमताओं को आजमाया गया है और भलीभांति चल रहे बुनियादी स्कूलों में यह प्रयास काफी सफल रहा है स्थानीय स्तर पर

*पांचवीं पंचवर्षीय योजना, योजना आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली

भी विस्तार एजेन्सियों ने उन मामलों में सहयोग दिया है जहां जिज्ञासु शिक्षक और कल्पनाशील विस्तार एजेन्ट के बीच समता कायम की गई है। लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर स्कूल तथा विकासात्मक एजेन्सियों के बीच सहयोग तथा तालमेल के महत्व को उनके संस्थागत रूप को ध्यान में रखते हुए अभी समझना है। अतः दिसम्बर, 1976 में ग्रामीण विकास के लिए शिक्षा पर राष्ट्रीय सेमिनार तथा सम्मेलन ने सिफारिश की थी :

"इस प्रयास में (शिक्षा को विकास संबंधी कार्यक्रमों से जोड़ना) स्कूल को सामाजिक-आर्थिक विस्तार के लिए एक प्रभावी आधार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इस भूमिका से स्कूल को अनेक लाभ हैं तथा स्कूल उस कमी को सफलतापूर्वक पूरा कर सकता है जो आज ब्लाक स्तर तथा ग्राम स्तर पर विस्तार एजेन्सी के बीच विद्यमान है। तथापि, विकासात्मक एजेन्सियों को इसका उपयोग करना होगा तथा स्कूल को आवश्यक तकनीकी तथा भौतिक सहायता देनी होगी ताकि स्कूल विस्तार श्रृंखला की एक कड़ी के रूप में काम कर सके। काम के साथ-साथ शिक्षण तथा व्यावहारिक कलाओं में शिक्षकों की सुविज्ञता के विकास हेतु सुविधाएं प्रदान करने के लिए सभी उत्पादक एजेन्सियों का सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता है।"

पिछले पैराग्राफों में बतायी गई समस्याओं के समाधान के लिए दिए गए विभिन्न सुझावों के संबंध में स्थानीय स्तर पर पहल करने की काफी जरूरत है जिसके लिए प्राधिकार को विकेन्द्रित करना आवश्यक होगा ताकि स्थानीय स्कूल का प्रधानाध्यापक, अन्य विभागों के स्थानीय प्रतिनिधि तथा स्थानीय समाज को सहयोग और तालमेल का समुचित स्वरूप निर्धारित करने में पर्याप्त स्वतंत्रता और अनाग्रह मिल सके। दूसरे, परिवर्तन एक सतत् प्रक्रिया है, अतः बदलती परिस्थिति में जिन नयी बातों की जरूरत है उन पर निरंतर निगरानी रखने के लिए किसी व्यवस्था की जरूरत होगी। इस व्यवस्था के द्वारा उन नवीन बातों को मोटे तौर पर स्वीकार कराना होगा और उनको प्रयोग में लाना होगा, छोटे पैमाने पर उनको सम्पूर्ण बनाना होगा और बड़े पैमाने पर उनके अनुप्रयोग के लिए तैयारी करनी होगी। इसके साथ-साथ उनको लागू करने से प्राप्त अनुभव से भी सीखना होगा।

उन मामलों में जहां नवीनता संबंधी सभी नीतियों पर एक साथ अथवा एक उचित क्रम में कार्यवाही की जाती है और जहां नवीनता एक आम बात हो गयी है, वहां इस व्यवस्था के बिना विचाराधीन नवीन बातों का वही हाल होगा जो बुनियादी शिक्षा का हुआ है। बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शुरु किया गया हमारा एक सब से बड़ा तथा आशाजनक अभिनव कार्यक्रम था। यद्यपि बुनियादी शिक्षा की संकल्पना का "विश्व के बड़े योगदानों में से एक" के रूप में स्वागत किया गया था (पृ० 558)* तथा शुरु में इस कार्यक्रम को "कम-से कम कुछ मामलों में एक योग्य तथा प्रेरक कदम" समझा गया था तथापि राष्ट्रीय स्तर पर इस कार्यक्रम को चलाने के लिए आवश्यक बातों पर सावधानीपूर्वक विचार नहीं किया गया था तथा न ही इसके लिए उचित योजना तैयार की गई थी। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की निम्न चेतावनियों पर ध्यान नहीं दिया गया था :—

"इस अभियान (बुनियादी शिक्षा) के संबंध में विकृत और गलत अभिव्यक्ति को दूर करके इसे सफल बनाने और प्रभावी कौशलों तथा पद्धतियों का विकास करने के लिए काफी समय तथा महान प्रयास की आवश्यकता होगी।" (पृ० 558)

इस कार्यक्रम के संबंध में पर्याप्त अनुसंधान नहीं किया गया। राजनैतिक दृष्टि से इसे पूरी तरह नहीं समझा गया था। नौकरशाही ने इसे चालाकी से नाकारा कर दिया। दूरगामी सामाजिक परिवर्तन शैक्षिक, नौकरशाही तथा राजनीतिक क्षेत्रों के बीच समन्वय से ही सम्भव है।

माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा के पुनर्विन्यास की तत्काल आवश्यकता है क्योंकि आज स्थिति यह है कि वर्तमान माध्यमिक शिक्षा पाने वाले अधिकांश छात्र शहरों की ओर जाते हैं, गांवों को भूल जाते हैं तथा उनमें से अधिकांश शहर के बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए भी उपयुक्त विकास संबंधी योजनाओं की जरुरत होगी ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में ही रोजगार के अवसरों तथा जन-शक्ति संबंध जरुरतों में वृद्धि की जा सके। भारत की योजना के परिणामस्वरूप तैयार की गई रोजगार की पद्धति अर्द्ध-शहरी विकास केन्द्रों का विकास करना तथा प्रमुख रूप से इन केन्द्रों के जरिए ग्रामीण क्षेत्रों को सेवाएं उपलब्ध करना है। ग्रामीण क्षेत्रों में सहायक तथा कृषि उद्योगों के विस्तार के कार्यक्रम चल रहे हैं। पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रोत्साहन देने से संबंधित कार्यक्रम भी हैं। ग्रामीण क्षेत्रों के विकास

*विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, 1949

के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा तथा आज की स्थिति और आगामी 15–20 वर्षों के बाद की स्थिति के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित किया जाए।

इस समय दो प्रकार के छात्रों को माध्यमिक स्तर पर शिक्षा दी जानी है। कुछ छात्र नियमित पद्धति के अंतर्गत शिक्षा प्राप्त करना बंद कर देते हैं और अपनी प्रारंभिक स्कूल शिक्षा के बाद पैतृक व्यवसायों में लग जाते हैं। अपनी बेहतर शिक्षा के कारण विकासात्मक एजेन्सियों के लिए ये सबसे ज्यादा लाभदायक होते हैं। ये प्रगतिशील किसानों, कारीगरों आदि का नेतृत्व कर सकते हैं। विशेषरूप से यदि विस्तार एजन्सियों इनकी सहायता करना जारी रखें। ऐसे छात्र इन एजेन्सियों के संदेश को अपनाने और उसका प्रचार करने की सबसे उपयुक्त स्थिति में होंगे। मन्दी के दौरान, संस्थागत सामान्य शिक्षा प्रदान करने तथा पत्राचार के जरिए अनुवर्ती शिक्षा प्रदान करने के लिए शैक्षिक संस्थाओं को विस्तार एजेन्सियों के साथ सहयोग करने की आवश्यकता है। दूसरी प्रकार के छात्र वे होते हैं जो औपचारिक पद्धति के अंतर्गत शिक्षा जारी रखते हैं। इनके मामले में पहला काम पढ़ाई के प्रति उनकी रुचि का और अधिक विकास करना है और उसके द्वारा विकासात्मक दृष्टि से उचित व्यक्तित्व का निर्माण करना है। यह काम आस-पास की परियोजनाओं का चुनाव करके तथा छात्रों के ज्ञान तथा क्षमता के जरिए उन्हें चलाने के योग्य बनाकर किया जा सकता है। इसका अर्थ यह होगा कि 'समाज सेवा' के नाम पर ही केवल काम करना पर्याप्त नहीं हैं क्योंकि यह तो पाठ्यचर्या का एक आवश्यक अंग है, बल्कि स्थानीय समस्याओं से संबंधित अधिक-से-अधिक विषयों को भी जानना होगा। तथापि, स्थानीय समस्याओं का यह अध्ययन बहुत विशिष्ट तथा गहन होगा और यह अध्ययन छात्रों को प्रारम्भिक स्तर पर शिक्षा की अपेक्षा और अधिक उच्च स्तर पर तथा परिष्कृत रूप में ज्ञान प्रदान करने का साधन बन जाएगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि इस स्तर पर छात्रों का दृष्टि-कोण व्यापक होना चाहिए और उन्हें स्थानीय समस्याओं को समस्त विश्व के परिवेश में देखना होगा। दूसरे, जिस कार्य अनुभव का चयन इस आयु वर्ग के लिए करना होगा वह भी अधिक परिष्कृत होगा और उसे प्रारम्भिक स्तर की अपेक्षा और अधिक समुचित रूप से लागू करना होगा। छात्र को इसमें कम-से-कम इतनी योग्यता हासिल कर लेनी चाहिए कि जो काम उसने कार्य-अनुभव के दौरान किया है उसे वह व्यवसाय के रूप में अपना सके। उसे ऐसा इसलिए करना चाहिए क्योंकि वह उस काम को अप्रशिक्षित तथा परम्परागत रूप से प्रशिक्षित व्यक्तियों की अपेक्षा काफी आसानी से तथा अच्छी प्रकार कर सकता है। तीसरे, +2 स्तर पर इस बात की संभावना होती है कि बड़ी संख्या में छात्र व्यावसायिक विषय लेंगे अतः यह आवश्यक है कि जनशक्ति संबंधी जरुरतों और रोजगारों के अवसरों के संबंध में गहन सर्वेक्षण किए जाएं। सरकार के अधीन तथा निजी प्रबंध के अधीन स्थानीय प्रशिक्षण संसाधनों के संबंध में भी सर्वेक्षण करना आवश्यक है। भारत में, अनेक एजेन्सियों ने—रोजगार और प्रशिक्षण निदेशालय, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, आदि ने—समाप्त हो रहे तथा उभरते हुए व्यवसायों के संबंध में व्यावसायिक सर्वेक्षण किए हैं। महाराष्ट्र में शिक्षा विभाग ने अन्य विभिन्न विभागों के सहयोग से ऐसे अनेक जिला सर्वेक्षण किए हैं, विशेष—तथा उस्मानाबाद में किए हैं तथा जिले में विभिन्न प्रबंधों के अधीन प्रशिक्षण संसाधनों का समन्वय समितियों के जरिए उपयोग करने का प्रयास किया है।

जबकि भारत अभी तक +2 स्तर के व्यावसायीकरण की प्रक्रिया के बहुत ही प्रारंभिक अवस्था में है किन्तु इस संबंध में अनेक संस्थाओं में छोटे पैमाने पर एक उपयोगी प्रयोग किया गया था जहां बच्चों ने बेसिक स्तर के बाद उत्तर-बेसिक स्कूलों में प्रवेश लिया था। डेरी–उद्योगों, कृषि, पशु–चिकित्सा इत्यादि जैसे विभिन्न ग्रामीण व्यवसाय शैक्षिक परियोजनाएं बन गए थे। तथापि, गांधीजी के निधन से इस प्रयोग को गहरा धक्का पहुंचा। सरकारी समर्थन और सुव्यवस्थित पद्धति के अभाव में अधिकांश स्थानों पर इस प्रयोग को बंद कर दिया गया था। अतः यह प्रयोग पर्याप्त समय तक नहीं किया जा सका जिससे कि इसके संबंध में कोई लाभदायक अनुमान लगाया जा सके। तथापि, इन उत्तर-बेसिक स्कूलों की कार्य-पद्धति के संबंध में गहन अनुसंधान तथा प्रयोग करने की आवश्यकता है। इन स्कूलों में शिक्षा समस्या–केन्द्रीत होती थी और चुने गए व्यवसाय ग्रामीण विकास के अनुरूप होते थे तथा वे आनेवाले उचित समय के लिए भी उपयुक्त होंगे।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1949) ने इसे उत्तर-बेसिक स्कूलों से ही अपनाया था तथा इसका

और विकास किया था। आयोग की संकल्पना के अनुसार ग्रामीण माध्यमिक स्कूल का लक्ष्य इस बात को दर्शाना था कि "उचित उपलब्ध वित्तीय तथा सामाजिक साधनों" से गांवों का पुनर्निर्माण संभव है (पृष्ठ 562)। उक्त स्कूल अनेक गांवों के बीच में स्थित होगा। उक्त स्कूल आवासीय और उसका स्वरूप एक गांव के स्वरूप जैसा होगा। उक्त ग्रामीण स्कूल का निर्माण तकनीकी विशेषज्ञ के मार्गदर्शन में स्थानीय सामग्री से और शिक्षकों तथा छात्रों के सहयोग से किया जाएगा। इसका डिजाइन कम मूल्य और कार्य कुशलता का एक नमूना होगा और यह ग्रामीण विश्वविद्यालय द्वारा तैयार किया जाएगा जिस पर बाद में चर्चा की जाएगी। इस स्कूल में जीवन गांवों के जीवन के समान सरल और कम खर्चीला होगा तथा यह छात्र तथा शिक्षक समुदाय द्वारा स्वयं-सहायता पर आधारित होगा। इसका उद्देश्य यह दर्शाना होगा कि ऐसा जीवन कितना स्वच्छ, स्वस्थ, रोचक तथा सांस्कृतिक रूप से समृद्ध हो सकता है। परिसर में किए जाने वाले विभिन्न कार्य स्वयं छात्र करेंगे। परिसर की सफाई, फसलों का उत्पादन, खाना पकाने आदि जैसे कुछ काम सभी छात्रों के लिए सामान्य होंगे। प्रत्येक लड़के और लड़की को अधिकांश सभी सामान्य, आवश्यक कार्यों को करने के योग्य होना चाहिए तथा उन्हें प्रत्येक काम को अच्छी तरह करने के महत्व को समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रत्येक छात्र को वह विशिष्ट कार्य भी करना चाहिए जो विशेष रूप से उसकी अपनी रुचि का हो। स्कूल में एक प्रभावी औद्योगिक एकक होगा जिसमें छात्रों को प्रशिक्षित करने के अलावा गांव के सभी प्रकार के मैकेनिकों, कारीगरों तथा तकनिशयनों को उन अधिक सफल तकनीकों की जानकारी दी जाएगी जो ग्रामीण क्षेत्र के लिए लाभप्रद हों। इस कार्यशाला का उद्देश्य उद्योग के "पूर्ण संतुलित प्रगतिशील विकेन्द्रीकरण" के लिए गांव वालों को प्रशिक्षण देना होगा। स्कूल परिसर अन्य सभी विकास संबंधी विभागों का भी अधिष्ठान होना चाहिए ताकि विभिन्न विभागों को एकीकृत सहकारी काम के लिए मानसिक रूप से तयार किया जा सके तथा स्कूल समाज के लिए विस्तार का एक केन्द्र होगा। परिसर अथवा गांव रूपी स्कूल का लक्ष्य छात्र की अधिक से अधिक सफल जीवन बिताने में सहायता करना होगा जो उसके उन साथियों के लिए एक उदाहरण तथा प्रेरणा बन सकता है जिन साथियों को प्रशिक्षित करने के लिए वह वचनबद्ध होगा। वास्तव में शिक्षा का उद्देश्य समाज के प्रति निष्ठावान दृढ़निश्चयी ऐसे अग्रहणी व्यक्ति तैयार करना होना चाहिए जो समाज से पलायन करने के बजाय समाज के बीच रह कर सेवा करें।

विश्वविद्यालय शिक्षा

विश्वविद्यालय शिक्षा के रुपान्तरण के संबंध में सब से अधिक व्यापक और साहसिक कदम यह होगा कि इसे ग्रामीण विकास का साधन बना दिया जाए। यह विचार विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, 1949 ने ग्रामीण विश्वविद्यालय नामक अपने अध्याय में हमारे सामने रखा था। संक्षेप में, इसका अर्थ यह था कि कालेजों से घिरा विश्वविद्यालय पूर्व स्नातकों को सामान्य शिक्षा प्रदान करेगा जिसमें मानविकी, भौतिकी विज्ञान तथा जीव विज्ञान से संबंधित विषय सम्मिलित होंगे तथा इसके अलावा, विश्वविद्यालय प्रत्येक छात्र को व्यावसायिक रुप से ऐसा विशिष्ट प्रशिक्षण प्रदान करेगा जो उसकी क्षमता तथा अभिरूचि के अनुरुप हों। कोई व्यक्ति कुछ विषयों में पूर्व स्नातक हो सकता है . . . तथा अन्य कुछ विषयों में स्नातकोत्तर हो सकता है। समस्त पद्धति में पर्याप्त गुंजाइश होनी चाहिए थी। छात्र का आधा समय अध्ययन में लगना चाहिए और आधा व्यवहारिक काम में। शारीरिक और मानसिक कामों को इकट्ठा करना चाहिए तथा प्रत्येक को समान महत्व दिया जाना चाहिए। विशिष्टीकरण को समाप्त नहीं किया जाएगा, बल्कि वे सुविधाएं भी प्रदान की जाएंगी जो ग्रामीण जीवन से संबंधित हों। व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को बहुविषयी बनाया जाना चाहिए और छात्र को सभी प्रकार से इस योग्य बना देना चाहिए कि वह किसी भी क्षेत्र में किसी भी काम को अच्छी प्रकार तथा सफलता से कर सके। पाठ्यक्रम आज की जरूरतों को ही पूरा करने वाले नहीं होने चाहिए बल्कि भविष्य की जरुरतों के भी अनुरुप होने चाहिएं। विश्वविद्यालय को सृजनात्मक शिक्षा के संबंध में पर्याप्त स्वतंत्रता होनी चाहिए जिसकी जरुरत उसे अपने कायक्रमों को लचीला तथा अनुकूल बनाने में पड़ेगी। छात्रों को उन अनेक चुनौतियों का सामना करने के लिए शिक्षा, कृषि तथा उद्योग संबंधी विभिन्न क्षेत्रों में प्रशासन तथा नेतृत्व के लिए तैयार करना होगा जो ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के समय उनके सामने आएंगी। ग्रामीण विश्वविद्यालय का उद्देश्य विकास के उस स्वरुप का "विकास, विस्तार तथा परिमार्जन" करना होगा जिसका देश ने चुनाव किया है।

ग्रामीण शिक्षा न केवल परम्परागत व्यवसायों के लिए लोग तैयार करेगी बल्कि यथासंभव ऐसे उपयोगी व्यवसायों को बढ़ावा देगी जिनमें "सेवा करने का दृष्टिकोण, योग्यता तथा भावना" हो। ग्रामीण विश्वविद्यालय

द्वारा तैयार किए गए व्यावसायिक लोगों का जीवन" "सादा तथा आडम्बररहित होगा और वह समाज पर बोझ न होगा।" उनका "जीवन स्तर ऐसा नहीं होगा जिसकी कल्पना सुव्यवस्थित समाज में भी आम जनता नहीं कर सकती।" ऐसी भावना सभी शैक्षिक संस्थाओं में व्याप्त होनी चाहिए परन्तु ग्रामीण विश्वविद्यालय को इस संबंध में पहल करनी चाहिए। ऐसे विश्वविद्यालय को ऐसे व्यक्तियों की जरूरत होगी जिन्होंने परम्परागत ज्ञान को पूरी तरह हासिल कर लिया हो तथा जो "अपने जीवन और जो कुछ उन्होंने पाया हो उसे अपने साथियों की सेवा में लगाने" के लिए तैयार हों। रिपोर्ट में आगे कहा गया है : "क्योंकि ऐसे व्यक्ति एक दूसरे को समझ लेते हैं और मिलकर काम करते हैं अतः ये बुनियादी प्रारंभिक स्कूल, ग्रामीण माध्यमिक स्कूल तथा ग्रामीण विश्वविद्यालय का तथा इनके जरिए नए भारत का सृजन कर सकते हैं।"*

शिक्षा का एक महत्वपूर्ण साधन सामान्य जीवन और उसकी परम्पराओं को समझना तथा उसमें हिस्सा लेना होगा। इस प्रकार छात्र तथा शिक्षक इन परम्पराओं का सुधार तथा विस्तार करेंगे।

स्वतंत्र, आलोचनात्मक तथा सार्थक अन्वेषण की भावना विश्वविद्यालय जीवन के प्रत्येक पहलु में व्याप्त होगी और इस भावना का विकास ग्रामीण विश्वविद्यालय में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य होगा। ऐसा करना अनुसंधान की दृष्टि से प्रमुख निवेश होगा और ग्रामीण विश्वविद्यालय में अनुसंधान के लिए भवनों तथा उपस्कर की अपेक्षा इस भावना के विकास पर बल दिया जाएगा।

ग्रामीण विश्वविद्यालयों और इसके कालेजों का प्रशासन उन लोगों के हाथ में होगा जिनका ग्रामीण जीवन और ग्रामीण शिक्षा से सीधा संबंध रहा हो और उनमें कुछ थोड़े से लोग इस क्षेत्र से बिल्कुल बाहर के होंगे ताकि वे निष्पक्ष निर्णय तथा आलोचना कर सकें। शुरु-शुरु में ग्रामीण शिक्षा को अपने प्राधिकार तथा संचालन को तब तक स्वतंत्र बनाए रखना चाहिए जब तक कि इसका पूरी तरह विकास न हो जाए तथा इसमें आत्म-विश्वास और परम्परागत शिक्षा की बराबरी की भावना न भर जाए। ऐसा होने पर ही इसे शिक्षा के प्रमुख विषय से जोड़ा जा सकता है और यह इस स्थिति में हो सकती है कि परम्परागत शिक्षा से दबने की अपेक्षा यह उसके साथ मिलकर चल सके। विश्वविद्यालय को अपने पाठ्यचर्या, मूल्यांकन के तरीके आदि में स्वायत्तता होनी चाहिए। कोई बाह्य परीक्षा नहीं होनी चाहिए। प्रारंभिक स्तर पर यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जबकि तकनीकों का निर्धारण तथा विकास किया जाता है।

आयोग ने सिफारिश की थी कि शुरु में नया विश्वविद्यालय स्वतंत्र हो सकता है परन्तु अच्छा होगा यदि आवासीय ग्रामीण माध्यमिक स्कूल को इसका आधार बनाया जाए।

विभिन्न विकासात्मक एजन्सियों और शैक्षिक व्यवस्था के बीच यथासंभव पूर्ण सहयोग कायम करने के लिए यह उचित होगा कि विभिन्न विकास संबंधी विभागों के प्रयासों के समन्वय के लिए शैक्षिक संस्थाओं का उपयोग प्रमुख केन्द्र के रूप में किया जाए।

यदि ये सभी एजेन्सियां ग्रामीण शैक्षिक संस्थाओं के जरिए काम करें तो इसका बहुत लाभ होगा। जैसा कि पहले कहा गया है माध्यमिक स्कूल गांव अथवा ग्रामीण माध्यमिक स्कूल की परिसर इन सभी सेवाओं के लिए अच्छा स्थानीय केन्द्र हो सकते हैं। इस प्रकार रहने तथा जीने की उपयुक्त सुविधाएं प्रदान की जा सकेंगी, सचिवालय सम्बन्धी सहायता, यातायात इत्यादि की व्यवस्था की जा सकेंगी तथा कुछ अन्य एजेन्सियों से सम्पर्क रखने वाले स्थानीय अधिकारियों को एक ही स्थान पर इकट्ठा किया जा सकेगा। इन किफायतों के अतिरिक्त अधिक महत्वपूर्ण बात यह होगी कि माध्यमिक स्कूल छात्रों का इन एजेन्सियों से निरंतर सम्पर्क बना रहेगा। नर्सें, पुस्तकाध्यक्ष, कृषि सम्बन्धी एजेन्ट तथा उद्योगों के समर्थक शिक्षण तथा व्यावहारिक कार्य के संचालन में हिस्सा ले सकते हैं। इस प्रकार आवासीय माध्यमिक ग्रामीण स्कूल गांवों के एक समूह का शैक्षिक तथा सांस्कृतिक केन्द्र बन जाएगा।

इसी प्रकार, ग्रामीण विश्वविद्यालय ऐसी सभी ग्रामीण सेवा एजेन्सियों के लिए क्षेत्रीय केन्द्र हो सकता है। ग्रामीण श्रमिक तथा संचालक ग्रामीण विश्वविद्यालय से सहयोग के जरिए लाभ उठा सकेंगे, विश्वविद्यालय के संकाय सदस्य क्षेत्र-कार्य (फील्ड-वर्क) का संचालन करने वालों के निरंतर सम्पर्क से लाभ प्राप्त करेंगे, तथा विश्वविद्यालय के छात्र अपने अंशकालिक कार्य में ग्रामीण श्रमिकों की सहायता कर सकते हैं तथा ऐसे ही कामों का प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं। यह देश की बहुत हानि होगी यदि विभिन्न ग्रामीण सेवाओं का विकास ग्रामीण शिक्षा से इस प्रकार के तालमेल के बिना किया गया। जिस तालमेल का जिक्र किया गया है उसके लिए केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की प्रशासन व्यवस्था में कुछ परिवर्तन करने होंगे। इसके लिए यह भी आवश्यक होगा कि ग्रामीण

*विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1947-49) की रिपोर्ट, भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 581।

सेवाओं के लिए जिन व्यक्तियों का चुनाव किया जाए वे समक्ष तथा ग्रामीण जीवन में रुची रखने वाले होने चाहिये तथा उनका चुनाव राजनीतिक आधार पर न करके केवल योग्यता के आधार पर किया जाना चाहिए। यह बहुत दुःख की बात होगी यदि माध्यमिक स्कूल तथा विश्वविद्यालय के छात्रों का जीवन उन मामूली ग्रामीण समाज सेवकों से प्रभावित हो जिनका चुनाव राजनीतिक कारणों अथवा पक्षपातपूर्ण ढंग से किया जाता है।

ग्रामीण विश्वविद्यालय संबंधी योजना को कार्यरुप देने के लिए शिक्षा मंत्रालय ने एक अन्य समिति गठित की थी जिसने ग्रामीण विश्वविद्यालयों के बजाय ग्रामीण संस्थानों की स्थापना की सिफारिश की थी। ऐसे चौदह संस्थान स्थापित किए गए थे। ये संस्थान ग्रामीण क्षेत्रों के छात्रों को दाखिल करते हैं और उन्हें ग्रामीण विकास से संबंधित पाठ्यक्रमों के जरिए शिक्षण देते हैं। दुर्भाग्यवश, इन संस्थानों के स्नातकों को अपनी ओर आकर्षित करने वाली शैक्षिक संस्थाओं तथा नियोक्ताओं पर कोई प्रतिबंध नहीं था। इसी प्रकार, संस्थानों तथा विश्वविद्यालय पद्धति पर कोई प्रतिबंध नहीं था। जब भी कोई रोक लगायी गई तभी विश्वविद्यालय पद्धति ने इन संस्थानों द्वारा अपनाये गए पाठ्यक्रमों की मौलिकता को दबाने का प्रयास किया और उन्हें विश्वविद्यालय पाठ्यक्रमों के समनुरुप बनाने का यत्न किया। अतः छात्रों को न तो रोजगार मिलता और नही वे उच्च शिक्षा में प्रवेश कर पाते। इसका परिणाम यह हुआ कि इन संस्थानों में दाखिला कम हो गया। अन्ततः एक संस्थान को छोड़ कर सभी संस्थानों को मौजूदा विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध कर दिया गया तथा शेष एक को विश्वविद्यालय समझी जाने वाली संस्था का दर्जा दिया गया है। यद्यपि इस बात का कोई वैज्ञानिक मूल्यांकन नहीं किया गया है तथापि ऐसा लगता है कि इन संस्थानों को वर्तमान विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध करने से इन संस्थानो को विशिष्ट भूमिका के विकास के लिए आवश्यक मौलिकता तथा सृजनात्मकता को इस से कोई सहायता नहीं मिलेगी। य संस्थान इस बात के श्रेठ उदाहरण हैं कि परिवर्तन न तो ऊपर से थोपा जा सकता है और न ही थोपा जाना चाहिए। सफल प्रबंध के लिए परिवर्तन को जरुरत पर आधारित होना चाहिए। शुरु में इसे अनुप्रयोग की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। विद्यार्थियों का भविष्य सुनिश्चित होना चाहिए। सावधानीपूर्वक निवेश के जरिए प्रयोग को सम्पूर्ण बनाना चाहिए तथा वर्तमान पद्धति से उसे तब तक नहीं जोड़ना चाहिए जब तक यह अपने पैरों पर न खड़ा हो जाए। इसे वर्तमान प्रणाली के समान ही महत्व दिया जाना चाहिए ताकि इसकी विशिष्टता पर कुप्रभाव न पड़े।

उच्च शिक्षा को ग्रामीण क्षेत्रों के विकास और सामाजिक रुपांतरण का उपयुक्त साधन बनाने के लिए यद्यपि उच्च शिक्षा पद्धति में बुनियादी परिवर्तन को महत्व नहीं दिया गया है तथापि कालेजों और विश्वविद्यालयों द्वारा ग्रामीण विकास में अपना सीमित सहयोग देने के अनेक प्रयास किए गए हैं। ऐसी ही एक योजना **आयोजना मंच** (प्लानिंग कोरम) थी जिसके अंतर्गत छात्रों ने गांवों की समस्याओं का सर्वेक्षण तथा अन्वेषण किया। **राष्ट्रीय सेवा योजना** के अंतर्गत साक्षरता, सड़क निर्माण, कुंओं की सफाई आदि जसे कार्यकलाप भी शुरु किए गए थे। कुछ कालेजो ने एक ऐसे विशेष गांव को भी चुना जिसके विकास में उनको रुचि थी। स्थानीय विकास समितियों ने कालेज तथा विश्वविद्यालय के कुछ शिक्षकों का सहयोग प्राप्त किया। कृषि कालेजों तथा तकनीकी संस्थाओं ने स्थानीय कृषि तथा उद्योग के अनुसंधान तथा विकास प्रयासों में काफी सहायता की। उदाहरण के लिए, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, खड़गपुर ने धान जमा करने के लिए धानियों (बिन्स), धान के भूसे आदि से तेल निकालने के संबंध में अनुसंधान किया है। कुछ पालिटेक्निकों ने कृषि संबंधी उपकरणों में सुधार करने तथा कृषि उद्योगों की स्थापना में सहायता देने का यत्न किया। इन प्रयत्नों की सामान्य विशेषताएं हैं :—

1. सीमित शिक्षकों तथा छात्रों का विकास संबंधी कार्य में भाग लेना।
2. यह कार्य सह-पाठ्यचर्या कार्यकलाप की तरह होता है।
3. ये प्रयास तदर्थ हैं जो इस काम में लगे कुछ छात्रों तथा शिक्षकों की रुचि तथा क्षमता पर निर्भर करते हैं।

इस प्रकार के काम में जिन समस्याओं का सामना करना पड़ा है वे हैं—नेतृत्व, भाग लेने वालों को प्रेरणा, स्थायी सम्पत्तियों के सृजन के लिए दीर्घकालीन प्रयास अथवा आशाजनक परिणाम प्राप्त करने के लिए गांव वालों से सम्पर्क तथा इस क्षेत्र में लगी अन्य एजेंसियों से समन्वय कायम करने के लिए सतत सेवा प्रदान करना जिसका गांव पर गहरा प्रभाव पड़े। संसाधनों की कमी एक अन्य समस्या है।

किसी विशेष परियोजना की सफलता अथवा असफलता नेता की योग्यता, उसकी कल्पनाशक्ति, अपने दल के सदस्यों के संबंध में उसके निर्णय, विश्वास तथा निष्ठा को प्रेरणा देने की उसकी क्षमता इत्यादि पर निर्भर करती है। स्वयं को लोगों को परिचित कराने और उनकी जरुरतों का पता लगाने की टीम की क्षमता पर भी सफलता निर्भर करती है। संसाधनों की कमी को देखते हुए उन

मामलों में सफलता मिली है जहां कम खर्च का दृष्टिकोण अपनाया गया और जहां स्थानीय संसाधनों का उपयोग किया गया। अंत में, सफलता टीम के निश्चय तथा इसके सदस्यों के सहयोगी-दृष्टिकोण पर भी निर्भर रही।

एक अन्य आदर्श जिसका विकास किया गया है वह है मैसूर विश्वविद्यालय को "आपरेशन भारती" जिसके अंतर्गत विश्वविद्यालय तथा सरकार के अंतर-विभागीय सहयोग के जरिए ग्रामीण विकास संबंधी आशाजनक परिणाम हासिल करने का पूरा दायित्व राज्य सरकार का है। इसमें समन्वय तथा अनुकूलतम परिणाम प्राप्त करने के लिए नीतियां अपनाए जाने से संबंधित समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। क्योंकि यह कार्यक्रम हाल ही में शुरू किया गया है अतः इस अनुभव के आधार पर इसका साधारणीकरण करना संभव नहीं है।

हाल ही में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने प्रत्येक विषय को सामाजिक उपयोगिता तथा व्यवहारिकता से जोड़ना नाम एक अन्य कार्यक्रम शुरु किया है। इसकी सिफारिश पांचवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में की गई थी। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने प्रत्येक विषय में इस संकल्पना को कार्यान्वित करने के तरीकों का पता लगाने के लिए अनेक विषय पेनल स्थापित किए हैं। ऐसे कार्यक्रम का लाभ यह है कि इसमें प्रत्येक छात्र सम्मिलित होगा और राज्य पर वित्तीय भार भी कम पड़ेगा क्योंकि खर्च का काफी बड़ा भाग समस्त छात्र समुदाय के बीच बट जाएगा।

कृषि विश्वविद्यालय का अपना अलग महत्व है। शिक्षण, विस्तार तथा अनुसंधान उनके काम का प्रमुख अंग है न कि अतिरिक्त कार्य जैसा कि सामान्य विश्वविद्यालयों के मामले में होता है। तीनों कार्यकलापों के बीच निकट का संबंध है जिस पर कृषि संबंधी शिक्षा को क्षेत्र स्तर की जरुरतों के अनुरूप बनाने की सफलता निर्भर करती है। प्रत्येक विश्वविद्यालय में अलग अलग होता है।

औपचारिक शिक्षा पर बहुत बड़ी राशि खर्च की जाती है और संभवतः विकास का यह अत्यंत महत्वपूर्ण साधन है। इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। औपचारिक शिक्षा पर प्रति वर्ष लगभग 2,500 करोड़ रुपये खर्च किए जाते हैं तथा कक्षा I से VIII तक में 6–14 आयु वर्ग के लगभग दस करोड़ बच्चे तथा कक्षा X-XI/XII में 14-17 आयु वर्ग के एक करोड़ बीस लाख बच्चे, कला तथा विज्ञान कालेजों में 17–23 आयु वर्ग में 40 लाख से अधिक छात्र, लगभग चार लाख व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित कृषि, चिकित्सा तथा इंजीनियरिंग स्नातक/डिप्लोमाधारी तथा बीस लाख से अधिक शिक्षक इसमें भाग लेते हैं। विकास के एक साधन के रूप में स्वयं शैक्षिक विकास के लिए यह और भी महत्वपूर्ण है—वास्तव में इसके लिये यह अत्यंत आवश्यक है। ऐसे विकासशील देशों में जहां मानवीय संसाधन बड़ी मात्रा में उपलब्ध हैं, मानव संसाधनों के विकास को उच्चतम प्राथमिकता दी जानी चाहिए। अतः सार्वजनिक हित में शिक्षा तथा अन्य विकासात्मक एजेन्सियों की क्षमताओं के उपयोग से संबंधित कार्यक्रम को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। तथापि, इस तथ्य को नीति निर्धारित करने वाले उच्च अधिकारियों को समझना होगा तथा उन्हें इसे सुव्यवस्थित ढंग से निचले स्तर पर अंतः एजेन्सी संचार व्यवस्था के जरिए संप्रेषित करना होगा। विभिन्न स्तर पर अधिकार का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए ताकि अधिकारियों को प्रभावी समन्वय के लिए अपने स्टाफ के दृष्टिकोण को पुनः अनुस्थापित करने तथा पद्धतियों को कारगर बनाने का पर्याप्त अभ्यास हो सके। इसके लिए शैक्षिक पद्धति में आमूल परिवर्तन करने होंगे जिसके लिए सावधानीपूर्वक परीक्षण की आवश्यकता होगी ताकि उन मार्गदर्शी रुपरेखाओं का निर्धारण किया जा सके जो इन परिवर्तनों को सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति में लागू करने में सहायक हो सकें। इसके लिए परिश्रम तथा अत्यंत सतर्कता की आवश्यकता होगी। दूरदर्शी व्यक्तियों को खोजना तथा उन्हें नियुक्त करना होगा तथा विभिन्न स्तरों पर प्रशासन में नीति संबंधी दृढ़ निर्णय लेने होंगे। इस प्रकार के सुधार के लिए राजनीतिक, नौकरशाही तथा समुदाय के बीच समुचित तालमेल तथा सहयोग की आवश्यकता होगी। यह एक बहुत बड़ी चुनौती है लेकिन हम आशा करते हैं कि हम इस पर खरे उतरेंगे।

● ● ●

परिवर्तनशील विश्व में शिक्षा : शिक्षा के नये आयाम

—अशोक सेन

पिछले दशकों के दौरान हमने शिक्षा कि मात्रात्मक व्यवस्था में तीव्र विस्तार का अनुभव किया है। छात्रों कि संख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप शैक्षिक प्रणाली का रेखीय विकास हुआ जिसका स्वरूप अधिजातवर्गीय है। परन्तु हमारे इर्द-गिर्द के संसार में बहुत परिवर्तन हुए है और मानव विचारों में नये क्षितिजों का उदय हुआ है। तथापि, पुरानी शिक्षा पद्धति आज भी विद्यमान है और एक स्वच्छ समीकरण को खोजने का आवश्यकता है जिससे वास्तविकता की सभी समृद्ध जटिलताएं स्पष्ट हो सकें। परन्तु जितना जादा हम परम्पराओं से बंधते है उतने ही अधिक हम जीवन में नई रुचियों के प्रति अनुपयुक्त होते जाते है। वर्तमान संकट का कारण यहां असंतुलन है। पुरानी प्रणाली के विस्तार के फलस्वरूप विद्यमान संस्थाओं पर केवल स्थान दाखिले तथा शिक्षण कार्मिकों की दृष्टि से दबाव पड़ता है जबकि नई संस्थाएं, जो कि मूल संस्थाओं का दूसरा रूप ही है अधिक संख्या में छात्रों को दाखिल करने के लिए स्थापित की जाती है। आम जनता तथा समाज के वर्गों से आने वाले छात्र केवल कुछ अन्य शक्तियों के शिकार होते है। जिसमें उन्हें कोई प्रतिफल नहीं मिलता। वे पास हो जाते है, परन्तु वे कुछ हो कार्यों के लिए उपयुक्त होते है।

अनुपयोगी

यह संतुलन पारंम्परिक शिक्षा की संकल्पना और प्रकृति में ही निहित है। अब समय है कि हम यह समझ ले कि छात्रों के घटकों में काफी परिवर्तन हो गया है, परन्तु उन्हें दी जाने वाली शिक्षा, उनकी रूचि, लाभ या उनके व्यावसायिक प्रश्नों का उत्तर नहीं देती। परिवर्तन स्थितियों में पैदा तथा पली, नई पीढ़ी नई वस्तुओं, नये विचारों तथा नई जीवन पद्धती को खोजती है। परन्तु दुर्भाग्यवश वही अध्ययन प्रक्रिया तथा वहीं शिक्षा नई पिढ़ी पर थोपि जा रहीं है ऐसी प्रणाली से निकलने वालों को उत्पादक स्थितियों में नहीं लगाया जा सकता। परिणाम यह है कि उनमें डिप्लोमा के प्रति विरक्ति और निराशा पैदा होती है जिससें उन्हें जीवन में कोई स्थान नहीं मिलता और न ही वे किसी लाभप्रद कार्य करने के लिए योग्य बन पात हैं।

विविध क्षमताएं

यही कारण है कि पारम्परिक शिक्षा की कठोर जांच तथा पुनर्मूल्यांकन किया जा रहा है। हमें यह ज्ञात है कि स्कूल प्रणाली मानव सक्षमता के संकीर्ण क्षेत्र पर जोर देती है जिससे छात्र केवल शैक्षिक कार्यों के ही योग्य बन पाते है। परन्तु यह आधुनिक शोध के आधार पर तथ्य है कि आने वाले दशकों में केवल 20% छात्र ही शैक्षिक अध्ययन का प्रयोग कर सकेंगे। निःसंदेह, बौद्धिक उत्कृष्टता का शैक्षिक योजना में एक सम्मानीय तथा प्राथमिकतापूर्ण स्थान होगा परन्तु यदि हम लाखों व्यक्तियों को इसमें शामिल करलें तो हम मानव प्रतिभाओं के विभदों का उपेक्षा करेंगे और व्यक्ति तथा समाज दोनों को ही उनके हिस्से से वंचित करेंगे।

प्रसार और पढ़ाई

योग्यता, जैसा कि आम तौर पर विश्वास किया जाता है कोई ऐसा मानसिक उपहार नहीं है जिसका विकास अलग-अलग हो, बल्कि एक ऐसा संकाय है जिसका प्रसार करने की आवश्यकता है और जिसे समाज के विविध हितों के अनुसार पढ़ाना है। अभिजातवर्गीय योग्यता परीक्षा, जो केवल अमूर्त विषयों के लिए ही उपयुक्त है। विस्तृत शैक्षिक कार्यक्रम के लिए उपयोगितारहित है। सामाजिक न्याय की मांग है कि बच्चे अपनी रूचि के अनुसार ही विषय चुनें और कमियों को या तो क्षमा कर दिया जाए या उनमें सुधार किया जाए। हमारे विचार में

शैक्षिक स्तर हमारे उद्देश्य को मापने के लिए कुछ अनुपयुक्त मापदण्ड हैं क्योंकि वे केवल विद्यार्थियों की क्षमता और कार्य को जनशक्ति कि आवश्यकताओं तथा विद्यार्थियों की आकांक्षाओं पर ध्यान दिये बिना मापते है। तथापि, बौद्धिक दृष्टि से सोचने वाले व्यक्ति गैर-शैक्षिक आधारों पर स्तरों को दूषित नहीं करना चाहगे। परन्तु जो-जो सामाजिक न्याय अभिजात वर्ग से हटकर विस्तृत आधार वाली शिक्षा को ओर अग्रसर होता है, तो वास्तव में, योग्यता परीक्षा उन दाघकालिन निर्धारकों में से एक बन जाती है जो यह सीमा निर्धारित करते हैं कि कोई शिक्षित समुदाय समाज को मांगों के कितना अनुरूप है।

योग्यता परीक्षा

अतः आज अधिकतर शिक्षाविद् इस मानव प्रतिभा की अव्यवस्थित धारणा के पक्ष में नहीं है, क्योंकि इससे मानवीय तथा सामाजिक साधनों का अपव्यय होता है। इसके बजाय वे मानवीय योग्यताओं को बहुमुखी आधार देते हैं ताकि विभिन्न प्रतिभाओं का विकास हो सके और समाज की भिन्न-भिन्न आवश्यकताएं पूरी हो सकें। यहां यह चर्चा करना प्रसंगानुकूल होगा कि विशेषज्ञों ने मानवीय मूल्यों तथा सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से प्रतिभाओं का किस प्रकार विश्लेषण किया है। उनका मत है कि यदि मानव क्षमता के किसी एक पहलू पर विचार किया जाए तो आधे से अधिक विद्यार्थी निम्न स्तर के होंगे।

तीन आयाम

समानता का सिद्धान्त निचले आध व्यक्तियों को उपर उठाने की दलील पेश कर सकता है। परन्तु नीचले आधे के आकार को कम किया जा सकता है यदि हम प्रतिभाओं को विभिन्न आयामों से देखें। यदि प्रतिभा का मूल्यांकन दो अलग परीक्षणों के अनुसार किया जाए तो 75 प्रतिशत व्यक्ति एक या दूसरे परीक्षण स्तर तक पहुंचेंगे। परन्तु तीन आयामों के आधार पर, आशा है कि 87.5 प्रतिशत व्यक्ति तीनों में से किसी एक के स्तर तक पहुंचेंगे।

एक-तरफा परीक्षण — एक अपव्यय

उपरोक्त आधार पर, हमारे देश में अथवा किसी अन्य स्थान के छात्रों के सर्वेक्षण से मानवीय प्रतिभाओं की अवश्य ही एक निश्चित पद्धति का पता लगेगा। जो छात्र अपना नाम तक नहीं लिख सकता, हो सकता है व यान्त्रिक कार्य में अत्यन्त कुशल हो, अथवा गणित में प्रविण छात्र अंग्रेजी में कमजोर होने के कारण स्कूल भी छोड़ सकता है। हम किसी असम्भव बात को संभव नहीं बना सकते। यदि हम प्रतिभा का समुचित प्रयोग करने में असफल रहते है तो हम इसका अलाभकारी श्रम में अपव्यय हो करते हैं। हमारी शिक्षा प्रणाली जो कि एक स्थिर आधार वाली है सभी को एक ही रस्सी से बांधने का प्रयत्न करता है विशेषकर निम्न स्तर पर कोई विकल्प नहीं है, परन्तु विभिन्न विषयों को पढ़ने की मजबूरी है।

प्रतिभा का दुरूपयोग

अभिजात वर्गीय शिक्षा के प्रति हमारी एक सामाजिक सनक भी है जिससे सभी प्रतिभाओं को एक ही स्वरूप प्राप्त होता है। उच्चतर माध्यमिक तथा उससे अगले स्तर पर छात्र विज्ञान विषयों की ओर ही दौड़ते है जिसका उनकी प्राकृतिक रुचि और अभिरुची से कोई सम्बन्ध नहीं होता। केवल कुछ प्रतिशत छात्र ही उच्च अध्ययन के लिए योग्य पाये जाते हैं; बाकी सभी की दुर्दशा हो होती है। यह केवल इस कारण से होता है कि हम सही व्यक्ति को सही कार्य में नहीं लगा पाते। लाखों लोगों की प्रतिभा के दुरुपयोग के कारण राष्ट्रीय प्रतिभा का अपव्यय होता है।

अतः, हमें अपनी नई शिक्षा को मानवीय प्रतिभा और योग्यता के विस्तृत क्षेत्रों पर आधारित करना होगा तथा अधिकतम सामाजिक हित कि दृष्टि से इन संकायों के विकास की व्यवस्था करनी होगी चाहे वे किसी भी क्षेत्र में हों।

व्यावसायिक दक्षताएं

हम अभिरुची को शैक्षिक आधार पर मापते हैं तथापि कुछ शक्षिक मनोवैज्ञानिक इसे मानवतावाद के आधार पर मापना चाहेंगे। समाज में दोनों की प्रतिष्ठा और मान्यता एक समान होनी चाहिए। अतः उनका मत है कि प्रतिभा का मूल्यांकन एक ही आयाम से नहीं किया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका से प्रकाशित व्यावसायिक शीर्षकों की निर्देशिका में, किसी व्यवसाय के लिए आवश्यक दक्षताओं के आधार पर एक तीन आयामों वाली प्रणाली का उल्लेख किया गया है—आंकड़े और कार्य, लोग और कार्य, वस्तुएं और कार्य। तथापि, प्रत्येक क्षेत्र को अन्य क्षेत्रों की दक्षताओं की आवश्यकता होती है। प्रत्येक कार्य के लिए न्यूनाधिक सभी तीनों दक्षताओं की आवश्यकता होती है।

विस्तृत आधार पर शिक्षा

शिक्षा का उद्देश्य इनमें से किसी एक में छात्रों की संभावित अभिरुची का सर्वोत्तम और शेष दो क्षेत्रों में कुछ सामर्थ्य का विकास करना है ताकि वह व्यापक जीवन क योग्य भी बन सके। हां, वैचारिक प्रतिभा वाला बच्चा स्वाभाविक रूप से शैक्षिक विषयों को अपना सकता है किन्तु उसमें लोगों और वस्तुओं के सम्बन्ध में थोड़ी बहुत दक्षता अवश्य होनी चाहिए। अतः हमें शैक्षिक श्रेष्ठता के अपने विचारों को उदार बनाना होगा और साथ ही व्यापक शैक्षिक श्रेष्ठता की दृष्टि से भी विचार करना होगा। एक लेखक के शब्दों में, "कालजों में सुगम प्रवेश का अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि भिन्न प्रतिभाओं वाले भारी संख्या में छात्र दाखिल कर लिए जाए फिर संकुचित दृष्टि अपनाकर पास थोड़े ही किए जायें।"

भारत के प्रसंग में

हमारे देश में, हमारी नई पीढ़ि के लिए इस कार्यक्रम की जो एक विशिष्ट दृष्टिकोण तथा अपनी आयु के एक विशेष पूर्वाग्रह के साथ पनप रही है। समाजार्थिक शक्तियों में फेर-बदल के बाद, नवयुवक नए आयाम ढूंढ़ने के इच्छुक है जो कि उनके पूर्वजों को ज्ञात नहीं थे। वे अब, मनुष्यों और वस्तुओं के साथ अपनी योग्यता का अच्छा उपयोग करने के लिए परम्परागत शैक्षिक सीमाओं से हटकर विस्तृत जीवन कि ओर बढ़ रहे हैं। आज, समाज भी प्रतिभा के अनेक स्तर देखने का इच्छुक है जो बिलकुल नए हों। यदि यह शैक्षिक कार्य को महत्व देता है तो इसे मानव शक्ति के अन्य क्षेत्रों में होन वाले कार्यों को भी महत्व देना चाहिए।

हमारी बाध्यता

परन्तु परम्पराएं आसानी से समाप्त नहीं होती हैं। हमारे सुधार प्रयोगों के बावजूद भारत में हमें अभी यह सीखना है कि किसी भी शिल्पकला को दूसरी शिल्पकला से अच्छा या बेहतर नहीं समझा जायेगा। प्रत्येक शिल्पकला, यदि वह राष्ट्रीय विकास में योग देती है, महत्वपूर्ण है। हमें अभिजातवर्गीय शिक्षा के प्रति अपने मोह को छोड़ना होगा और उनको सहन करना होगा जो शैक्षिक स्तरों तक नहीं पहुंच पाते। यदि हम एक आयाम वाले परीक्षण के अनुसार चले तो पहली चीज यह होगी हमें पास/फेल या दर्जे को समाप्त करना होगा ताकि समाज का निचला आधा भाग अक्षमता के लिए शर्म महसूस न करे।

जैसा कि स्थिति है, हमारे समाज का निचला आधा भाग भी सामाजिक सीढ़ी पर शैक्षिक सफलता द्वारा ऊंचा चढ़ना चाहता है। परन्तु इससे दूसरे क्षेत्रों में प्रतिभा की हानी होगी। अच्छा तो यह होगा कि हम पुराने ढंग से सोचना छोड़ दें और अपने शैक्षिक सुधारों को एक बहुमुखी परीक्षण पर आधारित करें। हमारी शैक्षिक धाराओं और पद्धतियों में विशाल और विविध मानव साधन परिलक्षित होने चाहिए।

विविधता की आवश्यकता

हमें शैक्षिक योग्यता से सम्बन्धित इस वर्तमान विश्वास के बारे में कोई भ्रांति नहीं होनी चाहिए कि उच्च शैक्षिक योग्यता वाले व्यक्ति उनसे अधिक योग्य होते हैं जिनमें अन्य क्षेत्रों की प्रतिभाएं मौजूद हैं। यदि हम शैक्षिक श्रेष्ठता को मानवीय गुणों के विकास का मापदण्ड स्वीकार करते हैं तो हम "हीन भावना वालों" का एक नया वर्ग बनाएंगे। परन्तु अन्य परीक्षणों की दृष्टि से तथाकथित शिक्षित व्यक्तियों की भी कुछ कठिनाइयां हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी प्रशासन का वातानुकूलित कक्ष खराब हो जाये तो वह उसी तरह निस्सहाय हो जाता है जिस प्रकार कोई कम पढ़ा लिखा व्यक्ति कम्पनी के तुलन-पत्र को देख कर निस्सहाय हो जाता है। दोनों में से कोई भी अपने जीवन की महत्वपूर्ण वास्तविकताओं के बारे में निर्णय करने की स्थिति में नहीं है। अतः सुधार संबंधी हमारे सभी उपायों में, हमारे विशाल समाज की मांगों को पूरा करने के लिए इस शैक्षिक विविधता का समावेश होना चाहिए।

• • •

भारतीय शैक्षणिक समस्याएं : एक समग्र दृष्टिकोण

—डी० पी० दास

ब्रिटिश शासकों ने दो शताब्दियों तक अपने औपनिवेशिक शासन के दौरान हमारे देश के लोगों के जीवन तथा रहन-सहन स्तर को सुधारने के लिए बहुत कम कार्य किया । वे, अपने शासन को सुदृढ़ बनाने के दौरान पैदा हुई ''शान्ति एवं स्थिरता'' से संतुष्ट थे । उन्होंने यहां 'कानून और व्यवस्था' बनाये रखना ही अपना उद्देश्य समझा । यही सब कुछ था। अतः, ब्रिटिश राज में भारतीय शिक्षा फलने-फूलने के बजाए उस पर बहुत कम ध्यान तथा संरक्षण दिया गया ।

जब हमें स्वतंत्रता प्राप्त हुई तो हमारी चिर-प्रतीक्षित भाग्य निर्माण की घड़ी आई । अनेक बातों को जिनकी ब्रिटिश शासकों ने उपेक्षा की थी, पूरा करना था तथा जल्दी पूरा करना था । भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में हमारी प्रगति और अभियान सही दिशा में प्रारम्भ हुआ । हमारा विचार था कि हमें अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा प्रदान करनी चाहिए जो विश्व में श्रेष्ठ शिक्षा के समान हो ।

असाधारण प्रगति

पिछले तीस वर्षों के दौरान भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में हुई प्रगति निश्चय ही उल्लेखनीय रही है । प्रगति के इस दृष्टिकोण के संबंध में देश में प्रकाशित विशाल साहित्य से इस तथ्य की स्पष्ट झलक मिलती है । चार्टों तथा आंकड़ों से भारतीय शिक्षा की सुदृढ़ स्थिति का पता चलता है जिसने साहस, उत्साह तथा शक्ति प्राप्त करने के लिए एक के बाद एक अनेक बाधाएं पार की ।

निरन्तर तथा व्यापक राज्य संरक्षण के अन्तर्गत सभी प्रकार की संस्थाएं प्रारंभ की गई । उस समय विद्यमान स्थिति का सर्वाधिक प्राप्त करने के लिए अनेक समितियां तथा आयोग नियुक्त किये गये ताकि देश में उपयुक्त शिक्षा पद्धति कायम की जा सके जिससे कि स्तरों को सुधारने में मदद प्राप्त हो । देश के लिए उपयुक्त राष्ट्रीय शिक्षा नीति का सुझाव देने के लिए, राधाकृष्णन आयोग, मुदलियार आयोग, कोठारी आयोग तथा अन्य लघु समितियां व उप-समितियां अथवा कार्यदल गठित किए गए । अनेक मार्गदर्शी रूपरेखाएं तयार की गई तथा उनकी जांच की गई। जब प्रत्येक वर्ष भारतीय संसद में केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के बजट अनुदान की मांगें अनुमोदित की जाती हैं तो शिक्षा तथा शिक्षा की समस्याओं पर बहस एक वार्षिक प्रवृत्ति बन गई है । राज्य स्तर पर, विधान सभाओं में होने वाली बहसों के दौरान भी समस्याओं पर प्रकाश डाला जाता है ।

संस्थात्मक स्तर पर, विशेष तथा भारतीय शिक्षा की प्रोन्नति के लिए हमने काफी संख्या में केन्द्र स्थापित किये हैं । इन संस्थाओं से, हमारे राष्ट्र के पुनरुत्थान में शिक्षा के महत्व के बारे में सम्पूर्ण देश में जागृति की एक बड़ी चिन्ताकर्षक स्थिति आती है। विश्वविद्यालयों, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों, विभिन्न प्रबंध संस्थानों, मौलिक अनुसंधान, विश्लेषणात्मक अनुसंधान इत्यादि, राज्य स्कूल शिक्षा बोर्डों, शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों, शैक्षणिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण संस्थानों ने देश के शैक्षिक स्वरूप को पूरी तरह से परिवर्तित कर दिया है ।

हमारे शैक्षणिक आयोजकों ने, भारतीय शिक्षा को आधुनिक रूप देने के लिए संस्थात्मक साधनों का विकास करने में बड़ी प्रवीणता प्रदर्शित की है । पिछले तीस से अधिक वर्षों से हमने, 10 वर्षीय स्कूल पद्धति को 11 वर्षीय तथा अब 10+2 पद्धति में संशोधित करके कार्रवाई योजना तथा कार्यक्रम में काफी प्रगति की है । प्रत्येक बार, परिवर्तन उचित था,

मनोहारी कल्पनाओं के साथ बड़े पैमाने पर प्रस्तावना तैयार की गई थी ।

जहां तक संस्थात्मक क्षेत्रों का संबंध है हमें इस बात का गर्व है कि हमने ऐसी संस्थाओं का निर्माण किया है जो एशिया, अफ्रीका तथा लटिन अमरीकी देशों में एक नेतृत्व का भूमिका निभाने का दावा कर सकती हैं ।

II

विशाल अन्तर को दूर करना

परन्तु, इन सभी विशिष्टताओं—उत्कर्ष तथा उफान—द्वारा भारतीय शिक्षा के केवल ऊपरी अंश को ही साज-संवारा गया । निम्न वर्ग का 9/10 वां भाग अभी भी साधारण स्तर से नीचे है तथा उन्हें शिक्षा के क्षेत्राधिकार में लाने के हमारे प्रयत्नों को सफलता नहीं मिली है । एक जिले (गुजरात के केरा जिला) में लोगों को उपलब्ध शैक्षणिक अवसरों के एक विशेष अध्ययन में यह पाया गया कि "माध्यमिक स्कूल के लगभग 80 प्रतिशत विद्यार्थी तीन या चार उच्च जातियों से सम्बन्ध रखते थे जबकि पिछड़ी जातियों के छात्रों की संख्या, जो जिले की जनसंख्या का लगभग 60 प्रतिशत थ, दाखिले का केवल 4 प्रतिशत थे... विश्वविद्यालय स्तर पर 70 प्रतिशत से अधिक स्थान सामाजिक स्तर की चोटी के 5 प्रतिशत लोगों ने प्राप्त कर रखे थे" (जे०पी० नायक गुन्नार मृदल द्वारा उद्धृत: एशियन ड्रामा, खण्ड III, पृ० 1800)

यह सम्पूर्ण देश का वास्तविक चित्र है । देश में शिक्षा की दुखद स्थिति को देखते हुए कोठारी आयोग ने निराश होकर लिखा था कि वर्तमान प्रणाली समानतावादी आदर्शों के अनुकूल नहीं है तथा अधिकांश लोगों को घटियां दर्जे की शिक्षा से अथवा बिना शिक्षा के ही संतुष्ट रहना पड़ता है जबकि अल्प-संख्या में कुछ लोग अपने बच्चों के लिए बहुत अच्छी शिक्षा जुटा सकते हैं (रिपोर्ट, पृ० 112) ।

यह एक दुखद घटना है कि अधिकाधिक शैक्षिक निवेश के बावजूद "ह्रास के नियम" का बड़ा भयावह परिणाम प्राप्त हुआ है । ऐसा क्यों हुआ है ?

III

प्रश्न—ऐसा क्यों हुआ है ? —का उत्तर हमें अपने इतिहास परम्परा के संदर्भ में देना है । प्राचीन भारत में शिक्षा ब्राह्मणों का जन्म अधिकार था तथा क्षत्रियों और वैश्यों के लिए यह एक रियायत थी । जातियों के इस कुलीन तन्त्र में शूद्र इस परिधि से बाहर थे और इस प्रकार शिक्षा से बहिष्कृत कर दिये गए । यह प्रथा हमारी धार्मिक परम्परा का एक अभिन्न अंग थी तथा शताब्दियों के मुस्लिम शासन द्वारा इसे बिना किसी परिवर्तन के आधुनिक समय तक जारी रखा गया । जब ब्रिटेन ने भारत को एक उपनिवेश शक्ति बताया तो उस समय यह प्रथा ज्यों की त्यों थी । वस्तुतः शिक्षा की पारम्परिक प्रणाली को वारेन हेस्टिंग्स तथा अन्य शासकों द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया । ईस्ट इंडिया कम्पनी ने ब्रिटिश नागरिकों को भारतीय जीवन पद्धति के अनुरूप बनाने में सहा-यता देने के वास्ते पण्डितों और मौलवियों को भर्ती किया ।

राजा राम मोहन राय तथा धर्म-प्रचारकों के संयुक्त दबाव के अन्तर्गत अंग्रेजों ने जब आधुनिक वैज्ञानिक तथा नम्य शिक्षा प्रणाली प्रारम्भ की तो उसका लाभ पारम्परिक उच्च जातियों के उभरते हुए मध्य-वर्ग को मिला । . कुछ वर्षों में ही इस वर्ग के पास पूरे भारत में उच्च जातियों का एक बढ़ता हुआ संघ 18वीं शताब्दी के मध्य से ब्रिटिश शासन के अधीन आधुनिक शिक्षा का पूरा लाभ उठाने के लिए सभी पूर्वापेक्षाएं उपलब्ध थी ।

यदि इतिहास तथा परम्परा ने हमारी शैक्षणिक प्रणाली को उच्च जाति उन्मुख बनाया तो इसी दृढ़ तर्क के आधार पर सार्वजनिक कार्यों में मध्यम वर्ग की व्यापक श्रेष्ठता स्वीकार की । अतः इसी कारण से समाज विज्ञान के क्षेत्र में और अनुसंधान कार्य करने के लिए पर्याप्त गुंजाइश है । इसके कारण ही स्वतन्त्रता के शुरू के वर्षों में हमारी शैक्षिक प्रणाली को एक विरोधाभासात्मक मोड़ मिला । ब्रिटिश शासन काल के दौरान देश में जीवन की एक समानतावादी प्रणाली निर्माण करने की कोई बाध्यता नहीं थी । अंग्रेजों के चले जाने के पश्चात् हमने एक प्रजा-तान्त्रिक कल्याण प्रणाली स्थापित करने का इरादा किया । यही बात हमारे संविधान में भी स्पष्ट की गई । परन्तु, शिक्षा प्रणाली में कोई आमूल परिवर्तन करने की बजाए, हमने एक सुगम लघु-मार्ग चुना और इस प्रकार परम्परागत स्कूली पद्धति को नया जीवन मिला तथा उसे अधिक शैक्षणिक बल प्रदान करके बनाए रखा गया । उन्नत देशों के साथ ज्ञान के अन्तर को पूरा करने के उद्देश्य से, हमने प्राथमिक स्तर से ही विविध विषय प्रारम्भ किये । ब्रिटिश शासन के दौरान, प्राथमिक स्तर पर बच्चे वही बातें सीखा करते थ जिनका संबंध उनकी आयु, मानसिक क्षमता, निकटवर्ती वातावरण इत्यादि से सीधे

ही होता था । अब मिडिल स्कूल में एक बच्चे को, भाषाओं, इतिहास, भूगोल, नागरिक-शास्त्र के अतिरिक्त गणित, बीजगणित तथा ज्यामिति, भौतिकी, रसायनशास्त्र, जीव विज्ञान पढ़ना पड़ता है ।

बुनियादी शिक्षा की संकल्पना को, जिसका गांधीजी ने अपने जीवन काल में प्रचार किया था, बिना किसी औपचारिक घोषणा के, त्याग दिया गया । हमने उन्नत पश्चिमी देशों के बाह्य नमूनों पर आधारित औपचारिक शिक्षा पद्धति को अपनाया ।

परिणाम यह हुआ कि समय, शक्ति तथा धन के अधिकाधिक निवेश से हमने ऐसे कार्यक्रम प्रारम्भ किये जिनसे केवल उन्हीं अल्प संख्या वाले वर्गों को लाभ प्राप्त हुआ जो इतिहास तथा परम्परा की उदारताओं द्वारा पहले से ही फलफूल रहे थे । शिक्षा उन्हीं को प्राप्त हुई जो पारम्परिक रूप से शिक्षा प्राप्त कर रहे थे । जिनके पास शिक्षा नहीं थी व अशिक्षित ही रहे ।

IV

भारतीय ग्रामीण जनता, निर्धनता, कुपोषण तथा अशिक्षा से त्रस्त है । योजना आयोग के अनुसार देश के लगभग 40 प्रतिशत लोग निर्धनता की सीमा से नीचे जीवन व्यतीत करते हैं । निरक्षरता भी उनमें सबसे अधिक है । यदि उनकी घोर निर्धनता को दूर नहीं किया गया तो क्या उन्हें और उनके बच्चों को सफलतापूर्वक एवं पर्याप्त मात्रा में आधुनिक स्कूलों अथवा अनौपचारिक कार्यात्मक साक्षरता कार्यक्रम के अधीन लाया जा सकता है ? अगर उनकी निरक्षरता समाप्त नहीं होती तो क्या उनकी निर्धनता को दूर किया जा सकेगा ? अब हम एक दुष्चक्र पर आते हैं जिसे वृदालियन के "आदर्श चक्र" में बदला जाना चाहिए । निर्धनता सीमा के धीरे-धीरे विस्तार के साथ-साथ शिक्षा का खर्च भी व्यय तीव्र गति से बढ़ रहा है । अतः, विशाल संख्या में लोगों को किसी औपचारिक स्कूल प्रणाली के अन्तर्गत लाना एक असम्भव कार्य होगा । इसलिए अनौपचारिक शिक्षा ही एक मात्र ऐसा रास्ता प्रतीत होता है जिससे उन्हें ज्ञान अर्जन के इस सुखद क्षेत्र में लाया जा सकता है । इस बात को ध्यान में रखते हुए गुन्नार मुडाल ने लिखा :—

"निर्धन बच्चों के लिए शिक्षा प्राप्त करने में यह आर्थिक अवरोध, एक सामाजिक व्यवस्था में इस प्रकार कार्य करता है कि कई अन्य कई तरीकों से शिक्षा पर उच्च-वर्ग का एकाधिकार जारी है । क्योंकि निम्न-वर्ग अभिभावकों को आमतौर पर या तो अल्प अथवा बिलकुल शिक्षा प्राप्त नहीं होती तथा वे अशिक्षित होते हैं वे अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने या स्कूल में दाखिल कराने के बाद उन्हें स्कूल में ही रखने में दिलचस्पी नहीं लेते । गांवों में "शिक्षा की भूख" की बात एक काल्पनिक भ्रम है, विशेषकर क्षेत्र के सबसे गरीब देशों में ...... (एशियन ड्रामा खण्ड III, पृष्ठ 1801) ।

एक अन्य मौलिक कारण, दूध पिलाने वाली माताओं के निम्न पोषण के परिणामस्वरूप मस्तिष्क कोशिकाओं की आपदाएं हैं तथा इस दृष्टि से शिशु के प्रथम दस मास अत्याधिक महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि इस स्तर के पश्चात मस्तिष्क कोशिकाओं का और आगे विकास नहीं होता । शिक्षा के विकास पर अन्तर्राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट (यूनेस्को) में भी इस पहलू पर स्पष्ट शब्दों में प्रकाश डाला गया है । अतः आयोग ने समाज से सिफारिश की कि वह ऐसी "प्रभावी पोषण पद्धति अपनाएं, जिससे इसकी शैक्षिक प्रणाली के अनुपालन में सुधार हो" । (लर्निंग टू बी, पृ० 108) ।

V

ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिति

इन दुखद कारणों को ध्यान में रखते हुए हमें सर्वाधिक पिछड़े राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों के स्कूलों में उपलब्ध सुविधाओं का नमूने के तौर पर सर्वेक्षण करना चाहिए । सर्वेक्षण दल में, ग्रामीण जीवन का निकट अनुभव रखने वाले काफी संख्या में देश के ग्रामीण क्षेत्रों के अध्यापक, समाज-वैज्ञानिक तथा पोषण विशेषज्ञ तथा सामाजिक कार्यकर्ता शामिल किए जाने चाहियें । इस दल में इन विशेषज्ञों को शामिल नहीं किया जाना चाहिए जो भारत में वर्तमान समय में स्कूल शिक्षा की पाठ्यचर्या तथा नीति निर्माण से सम्बद्ध हों । सर्वेक्षण में, अध्यापकों की कोटि तथा उनकी शिक्षण क्षमता का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाना चाहिये।

दल को पिछड़े राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में कम से कम एक सौ स्कूलों में जाना चाहिए तथा सामग्री की सूची तथा मानव-कारणों का अध्ययन करना चाहिए । उसके पश्चात् उन्हें वर्तमान पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, शिक्षण का स्तर तथा शिक्षकों की कोटि पर एक रिपोर्ट तैयार करनी चाहिये । इससे, अशिक्षा अथवा अर्द्ध-प्रशिक्षित अध्यापक वर्ग द्वारा, शिक्षा के प्रति उदासीन रहने वाले परिवारों से संबंध रखने वाले और निर्धनता से पीड़ित विद्यार्थियों को प्रदान की

[शेष पृष्ठ 29 पर]

शिक्षा की एक धारणा

—टी० एस० सुन्दरराजन्

एक समय था जब शिक्षा को मध्य वर्ग का एक अंग माना जाता था। धनवान लोग इसकी परवाह नहीं करते थे तथा आर्थिक रूप से पिछड़े लोग इसे ग्रहण करने के लिए निराश रहते थे। अधिकाधिक, शिक्षा एक ऐसी सामाजिक चमक थी जिसे प्राप्त करने के लिए केवल वही व्यक्ति सोचते थे जो अपनी भौतिक समृद्धि तथा आर्थिक शक्ति को सुदृढ़ बना लेते थे। आज स्थिति आमूल रूप से बदल चुकी है। जीवन के एक मूल्य के रूप में शिक्षा हमारे मस्तिष्क में अब इतनी गहराई तक पहुंच चुकी है कि हमारे शैक्षिक विकास में त्रुटियों पर, अन्य क्षेत्रों की तुलना में, अधिक गम्भीर रूप से विचार किया जाता है। शिक्षा से अनेक वस्तुओं की प्राप्ति की आकांक्षा की जाती है जैसे लाभकारी तथा बेहतर प्रतिष्ठित रोजगार, तथा सामाजिक सुधार अथवा, इसे संक्षेप में सामाजिक इंजीनियरिंग के लिए अन्य अवसर कहा जा सकता है।

हमारे गणराज्य में दस वर्षों के अन्दर 14 वर्ष आयु तक के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए राज्यों को दिया गया संवैधानिक निर्देश, खेद है कि इस दिशा में हुई कम उपलब्धियों का, एक मूक स्मरण मात्र बनकर रह गया है। अतः शैक्षिक आयोजना के लिए एक स्वतः आलोचना की प्रवृत्ति द्वारा नम्रता से ओतप्रत दृढ़ निश्चय की आवश्यकता है। इसका उत्साहवर्धक प्रमाण, भावी छठी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक, अर्थात् 1982-83 तक सर्वव्यापी प्रारम्भिक शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कदम हैं।

किस प्रकार का प्रश्न

वास्तविक प्रश्न

शिक्षा एक ऐसी वस्तु नहीं है जिसका मूल्यांकन उपभोगिता अर्थ व्यवस्था के तौर पर किया जाए और इसकी योजना थोड़े से विशेषज्ञों तथा विचारकों द्वारा तैयार नहीं की जा सकती और उसका व्यापक उपभोग के लिए प्रचार नहीं किया जा सकता। समकालीन दार्शनिक ईवान इलिच (जो हाल ही में भारत में थे) द्वारा की गई अराजक घोषणाओं (जो केवल ऊपरी तौर से अराजक हैं) में, शिक्षा को एक मूल्य न मान कर एक वस्तु मानने से शैक्षिक प्रणाली में आई विकृतियों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। शिक्षा की मांग स्वतः है जिसका अनुभव प्रत्येक नागरिक करता है तथा जैसे जैसे मांग की तीव्रता में वृद्धि होगी वैसे-वैसे नागरिक उसे पहचानेंगे तथा अपनी इच्छानुसार शिक्षा की मांग करेंगे। इस प्रकार शिक्षा एक मूल्य नहीं है जिसे प्राप्त करके नागरिक राज्योन्मुख नीतियों की ओर बेहतर कार्य-क्रमबद्ध व्यक्ति बने बल्कि शिक्षा का महत्व इसमें है कि वे इसे एक अनिवार्य वैयक्तिक आवश्यकता के रूप में आत्मसात करें। जैसा कि वास्तविकता के बारे में एक विदूषक ने कहा था, आज धर्मशास्त्रीय समस्या यह सिद्ध करना नहीं है कि क्या ईश्वर विद्यमान है बल्कि यह बताना है कि किस प्रकार का ईश्वर विद्यमान है। समकालीन धर्मशास्त्रीय सिद्धान्त, ईश्वर की परम्परागत तथा सीमित मानवीय संकल्पना का वर्णन करते हैं तथा उसमें अभिवृद्धि के लिए अन्य आयामों की ओर देखते हैं। इसी प्रकार जो प्रश्न आज हमारे सामने है वह यह नहीं कि क्या आवश्यक है बल्कि यह है कि किस प्रकार की शिक्षा प्रदान एवं प्रचारित की जाए। यहां तक कि "प्रदान करने" तथा "प्रचार करने" की अभिव्यक्ति इलिचियाई कथन के अनुसार सन्देहास्पद होगी जो प्रतिपादित करता है कि शिक्षा की शिक्षण पर वरीयता होनी चाहिये, और शिक्षा, एक समृद्ध समाज के ढांचे में व्यक्ति के स्वैच्छिक चयन के आधार पर प्रदान की जानी चाहिये।

अब, शिक्षा के विभिन्न चरणों की आवधिक पद्धति के विषय में गम्भीर विचार-विमर्श महत्वपूर्ण नहीं

होगा क्योंकि अधिकांश राज्य सरकारों द्वारा 10+2+3 प्रणाली को, सामान्यतः कार्यान्वयन के लिए स्वीकार कर लिया गया है। उपयुक्त प्रश्न शिक्षा के शैक्षणिक तत्व में सुधार करना तथा शिक्षण समुदाय को यह विश्वास दिलाना होना चाहिए कि शिक्षा एक बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यक्रम द्वारा और शिक्षा चाहने वाले व्यक्तियों के महत्व के अनुसार दी जा सकती है। सर्वाधिक विवेकपूर्ण शैक्षिक पद्धति, सर्वोत्तम सहायक सुविधाएं जैसे कि अध्यापकों की लाभकारी प्रगति, स्कूल भवनों का निर्माण, पाठ्य-पुस्तकों का कम कीमत पर प्रकाशन तथा वितरण इत्यादि वास्तविक लक्ष्य से तब तक अपर्याप्त रहेंगी जब तक कि प्रत्येक अध्यापक को, बच्चों को पर्याप्त स्पष्ट ढंग से समुचित ज्ञान प्रदान करने के लिए समझाया नहीं जाता। जैसा कि स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, हम में से केवल कुछ ही लोग ऐसे हैं जो विश्वास के साथ यह दावा कर सकते हैं कि हम पूर्ण मनुष्य हैं, तथ्य यह है कि हममें से अधिकतर केवल मानवता के अभ्यार्थी हैं। यह मुख्यतया अध्यापकों के लिए है कि वे अपना व्यवसाय इस मनोवृत्ति से आगे बढ़ाएं कि शिक्षा, संस्कृति का एक मुख्य कड़ी के रूप में है जो ऐसी उम्मीदवारी को बढ़ाने में पर्याप्त योग देती है। शिक्षा के क्षेत्र में उत्तरदायित्व केवल अध्यापकों द्वारा ही नहीं निभाया जाता। जलाई, 1977 में संसद में अपने भाषण में केन्द्रीय शिक्षा मंत्री, डा० प्रताप चन्द्र चन्द्र ने कहा था, शिक्षा वास्तव में एक पंचकोणीय प्रक्रिया है, इसमें पांच वर्गों का परस्पर सहयोग शामिल है, अर्थात् अध्यापक, "छात्र, परिवार, समाज तथा सरकार"।

तथापि, शैक्षणिक गतिविधि की वैध प्रमुखता अध्यापकों पर निर्भर करती है जिनका प्रशासन राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है। अतः शैक्षिक गतिशीलता का सबसे अधिक दायित्व राज्य सरकारों पर आता है जिन्हें शिक्षा के लिए राष्ट्रीय नीतियां बताने के सभी विचार-विमर्श में ठीक ही सम्मिलित किया जाता है। इसके साथ ही, केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने भी पहल की है जो प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष ही है। जब शैक्षिक विकास का समस्त चित्र जनता के सामने रखा जाता है तो सुधारात्मक उपाय अथवा मार्गदर्शी सुझाव देने के लिए सारा देश केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय को ही अपनी मांग प्रस्तुत करता है। राजनीति विज्ञान के छात्रों में भी एक दुर्भाग्यपूर्ण मिथ्या घर किए हुए है कि केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों से अलग है तथा उनपर थोपी हुई वस्तु है। इसी गलतफहमी के कारण यह विचार उत्पन्न हुआ है कि केन्द्रीय और राज्य सरकारों के बीच दायित्वों को दर्शाने के लिए संविधान में तथा कौन सी सूची में शिक्षा को शामिल किया जाए। यदि यह विवाद एक पाण्डित्य-प्रदर्शन नहीं तो शैक्षिक अवश्य प्रतीत होता है। शिक्षा का दायित्व राज्यों पर अथवा केन्द्र पर अथवा संयुक्त रूप से हो, यह बात एक साधारण व्यक्ति के लिए केवल उसी सीमा तक वैध है कि प्रत्येक सरकार शैक्षिक विकास के लिए अपने दायित्वों को स्वीकार करे तथा अपने कार्य के लिए सर्वसाधारण जनता के प्रति उत्तरदायी रहे।

केन्द्र तथा राज्य सरकारें—कोई विवाद नहीं

इस बात को समझते हुए शैक्षिक विकास के प्रयोजन के लिए एक ओर तो राज्य सरकारों तथा दूसरी ओर केन्द्र के बीच हितों में कोई विवाद नहीं होना चाहिए। 1935 में, जबकि केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड का गठन हुआ था, भारतीय उप-महाद्वीप में सरकारों ने अपने कार्यक्रमों तथा नीतियों में सर्वसम्मति के मान्य सिद्धान्तों के आधार पर शिक्षा के हितों को बोर्ड द्वारा लिए गए निर्णयों के अनुसार आगे बढाया। शैक्षिक गतिविधियों के क्षेत्र में राज्य सरकारों की भूमिका निर्धारित करने के अतिरिक्त बोर्ड के प्रस्तावों में, नीति मार्गदर्शिकाएं तैयार करके, सर्वेक्षण, अध्ययन तथा अनुसंधान आयोजित करके केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के सहयोग के लिए नए उपायों का सुझाव दिया गया है ताकि राज्यों को उनके प्रयत्नों में मार्गदर्शन प्रदान किया जा सके और राष्ट्रीय कार्यक्रमों के कार्यान्वयन आदि का पर्याप्त प्रचार किया जा सके। प्रणाली ने शिक्षा जैसी सामाजिक सेवा के प्रसार के लिए, जो समाज की विकासात्मक शक्ति पर निर्भर करती है, एक उपयुक्त पद्धति के रूप में कार्य किया है।

तीन प्राथमिकताएं

सरकार ने तीन प्राथमिकताएं निर्धारित की हैं जिनके लिए आगामी दस वर्षों के दौरान संगठित एवं तीव्र प्रयत्नों की आवश्यकता है। ये प्राथमिकताएं हैं: प्रारम्भिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण, प्रौढ़ शिक्षा तथा माध्यमिक शिक्षा स्तर का व्यावसायीकरण। उद्देश्यों की विशालता को देखते हुए स्वभावतः विशाल धन की आवश्यकता होगी। यहां फिर, साक्षरता के प्रसार के लिए आवश्यक सार्वजनिक धन की परिसीमा के बारे में विवाद है, तथा कई बार मांग हुई है कि सरकारी बजट का 10 प्रतिशत भाग केवल शिक्षा के लिए ही निर्धारित किया जाए। शैक्षिक विकास को केवल अधिकाधिक वित्तीय निवेशों के साथ जोड़ना प्रत्यक्षतः शंका का विषय प्रतीत होता है

(अगर हमें इलिच को समृद्ध शिक्षा को एक अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार करना है) यह ऐसा होगा कि वृक्षों को पहचानने के लिए वनों को छोड़ देना, शिक्षा को मुख्य विषय-वस्तु को छोड़कर शिक्षा के संस्थानात्मक तथा लागत संबंधी पहलुओं को प्राथमिकता देना। योजना आयोग के उपाध्यक्ष, प्रो० डी० टी० लाकड़ावाला के अनुमान के एक उद्धरण के अनुसार केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के बजटों में शिक्षा पर कुल सरकारी व्यय 1950-51 में 61 करोड़ से बढ़कर 1975-76 में 1865 करोड़ रुपये हो गया है, जबकि 1960-61 से कुल सरकारी व्यय की वार्षिक-वृद्धि दर केवल 6.2 प्रतिशत है, शिक्षा के संबंध में यह दर 8% थी। यद्यपि सुनिर्धारित शैक्षिक कार्यक्रमों के लिए विवेकपूर्ण ढंग से अधिक निवेश की आवश्यकता है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा के हित को बढ़ाने के लिए केवल सार्वजनिक धन व्यय करना ही पर्याप्त नहीं होगा।

वित्तीय स्थिति के बावजूद, यह कहना व्यर्थ नहीं होगा कि देश में शिक्षा से वंचित लाखों बच्चों को शिक्षा प्रदान करने का महत्व कोई दान नहीं बल्कि एक ऐसा बोध है कि नागरिकता की प्रतिष्ठा के लिए शिक्षा सर्वाधिक व्यवहार्य घटक है। जैसा कि अठारहवीं शताब्दी के विचारक एडमंड बर्क ने सावधान किया था कि किसी नागरिक के लिए अन्य अव्यावहारिक बातों की तरह अव्यावहारिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं है बल्कि इसका कोई व्यवहार्य अर्थ होना चाहिए। अतः सरकार ने सामाजिक तथा सांस्कृतिक संदर्भ में हमारे अधिकांश देशवासियों द्वारा सक्रिय भूमिका निभाने के लिए निरक्षरता के विरूद्ध एक सुनियोजित तथा अनवरत संघर्ष छेड़ने का उचित ही निश्चय किया है। प्रौढ़ शिक्षा के संबंध में सरकार की नीति संबंधी घोषणा के अनुसार है व्यक्ति के विकास तथा देश की सामाजार्थिक प्रगति में निरक्षरता एक गम्भीर बाधा है तथा शिक्षा केवल स्कूल छोड़ देने से ही समाप्त नहीं हो जाती अपितु अधिकतर कार्य स्थितियों तथा जीवन संदर्भों में जारी रहती है। कहने का तात्पर्य है कि शिक्षा मानव के विकास के लिए एक प्रकार का क्रमविकासवाद है। निरक्षरता उन्मूलन की तत्कालिकता तथा साथ ही औपचारिक शिक्षा प्रणाली की प्रक्षित अपर्याप्ताओं के कारण अनौपचारिक शिक्षा के एक विशाल राष्ट्रीय कार्यक्रम की आवश्यकता है, जिसका 2, अक्तूबर, 1978 से प्रारम्भ करने का प्रस्ताव है। इसका उद्देश्य शिक्षा की वर्तमान, प्रणाली का बिलकुल अवमूल्यन करना नहीं है बल्कि अनुपूरक प्रयत्नों का पता लगाना है। अनौपचारिक कार्यक्रम को प्रोत्साहित करने के लिए इस बात को सुनिश्चित करना है कि इसके परिणाम-स्वरूप दो प्रकार के नागरिकों का निर्माण न हो: साधन सम्पन्न वर्ग जो औपचारिक, सुमान्य, संस्थानात्मक प्रणाली का लाभ उठाए तथा एक ऐसा साधन हीन वर्ग, जिसे अनौपचारिक कार्यक्रमों पर निर्भर रहना पड़े। अतः यह महत्वपूर्ण है कि अनौपचारिक शिक्षा से वही स्तर प्राप्त होना चाहिए जैसा कि औपचारिक प्रणाली से आशा की जाती है तथा इसे केवल स्थानीय परिकल्पनाओं तथा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इसको अधिक नम्यता के कारण दूसरे दर्जे का नहीं समझा जाना चाहिये।

चेतावनी

माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के नये कार्यक्रम की लोकप्रिय आशाओं के संबंध में एक चेतावनी देना उचित होगा। व्यावसायिकरण के पीछे यह धारणा है कि इस कार्यक्रम से, स्कूल शिक्षा में कुछ मात्रा में कार्यात्मिकता प्रारंभ करने से परम्परागत उदार शिक्षा की अस्पष्टता दूर हो सकेगी। यह एक भारी भूल होगी यदि व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाले अपनी पिछली धारणा पर ही विश्वास करें कि व्यावसायिक प्रमाण-पत्र से उन्हें स्वतः ही रोजगार प्राप्त हो जाएगा। शिक्षा की प्रक्रिया से स्वतः ही महत्वपूर्ण तथा व्यापक रोजगार के अवसर पैदा नहीं होते जो कि आर्थिक विकास तथा इसकी सदैव परिवर्तननीय आवश्यकताओं से उत्पन्न होते हैं। सम्भव है कि किसी अनभिज्ञ वातावरण में व्यावसायिक प्रमाण-पत्र का अर्थ कोई अवांछित विशेषज्ञता हो, जो सदैव ही उपलब्ध जनशक्ति से कम होती है। जैसा कि ज्ञान देव ने चेतावनी दी थी, व्यावसायिक शिक्षा के अकल्पनाशील नियंत्रण तथा एकाकीपन का परिणाम सामाजिक अग्रनिर्देश होगा। इस अशिक्षाप्रद लक्षण पर केन्द्रीय शिक्षा मंत्री डा० प्रताप चन्द्र चन्द्र ने जुलाई 1977 में संसद में मंत्रालय की मांगों को प्रस्तुत करते समय अपने भाषण में प्रकाश डालते हुए लोगों के मस्तिष्क में शैक्षिक और व्यावसायिक शिक्षा के बीच विद्यमान दुर्भाग्यपूर्ण कड़े विभाजन की ओर संकेत किया था। यदि हमें देवे के कथनानुसार व्यावसायिक प्रणाली के छात्रों को स्वैच्छापूर्ण मोड़ना है तो दोनों के बीच पर्याप्त मात्रा में गतिशीलता पैदा करने की आवश्यकता है।

अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा के प्रति दृष्टिकोन

—जी० खुराना

विश्व में जनजातीय आबादी की दृष्टि से, अफ्रीका के बाद, भारत में बड़ी संख्या में जनजातीय लोग हैं। 1971 की जनगणना के अनुसार, अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या 3.8 करोड़ थी, जो देश की जनसंख्या का लगभग 6.9% है। अनुसूचित जनजातियों के लोग मुख्यतः आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, नागालैण्ड, उड़ीसा, राजस्थान, त्रिपुरा तथा प० बंगाल जैसे राज्यों के पर्वतीय तथा वन क्षेत्रों में रहते हैं। देश में जनजातीय जनसंख्या का लगभग आधा भाग बिहार, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा में है।

जनजातीय लोगों की दशा

परम्परागत सामाजिक तथा सांस्कृतिक बाधाओं तथा साथ पर्यावरणीय कारणवश जनजातीय लोगों की रहन-सहन स्थिति दयनीय है। उनकी निर्धनता और पिछड़ेपन तथा साथ ही अज्ञानता और समुचित शैक्षिक सुविधाओं की कमी के कारण उनका सभी प्रकार से शोषण हुआ है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 46 के अन्तर्गत, अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक हितों को प्रोत्साहित करना केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों का विशेष दायित्व है। इसका उद्देश्य जनजातियों को सभी सामाजिक अन्यायों तथा सभी प्रकार के शोषण के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करना भी है।

अनुसूचित जनजातियों के बीच साक्षरता का स्तर, जनजातीय लोगों के शैक्षिक पिछड़ेपन का सूचक है। 1971 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता का प्रतिशत 11.30 था जबकि अन्य सभी समुदायों का प्रतिशत 29.34 था। अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या तथा राज्यवार उनकी साक्षरता प्रतिशतता की तुलनात्मक स्थिति विवरण I में दर्शाई गई है।

अनुसूचित जातियों में साक्षरता के हाल ही में किए गए एक तुलनात्मक अध्ययन से पता चला है कि :

(i) यद्यपि अनुसूचित जातियों की साक्षरता प्रतिशतता में समग्र वृद्धि 1961 में 8.44 की तुलना में 1971 में 11.30 हो गई, तथापि यह प्रगति सामान्य जनता की तुलना में कम है, जो इस अवधि के दौरान 24.03% से 29.34% के बीच थी;

(ii) अरुणाचल प्रदेश में साक्षरता की प्रतिशतता दर 1961 में 25.09 से घटकर 1971 में 5.20 हो गई। यह इस तथ्य के कारण भी हो सकता है कि 1961 में अरुणाचल प्रदेश के केवल प्रशासनिक क्षेत्रों के संबंध में साक्षरता आंकड़े एकत्र किए गए थे, जबकि 1971 में पूरे संघीय क्षेत्र के संबंध में आंकड़े एकत्र किए गए थे;

(iii) आन्ध्र प्रदेश (4.41% से 5.34%), मध्य प्रदेश (5.10% से 7.62%), उड़ीसा (7.36% से 9.46%), तथा प० बंगाल (6.55% से 8.92%) राज्यों के मामले में साक्षरता की प्रगति सामान्य है;

(iv) अनुसूचित जनजाति आबादी वाले 258 जिलों में से 36 जिलों में साक्षरता की दर में कमी हुई है;

(v) लिंगवार, अनुसूचित जनजातियों के पुरुषों की साक्षरता दर 13.69% से बढ़कर 17.63% हो गई, अर्थात् 3.96 प्रतिशत की वृद्धि हुई, और अनुसूचित जनजातियों की स्त्रियों की साक्षरता दर 3.31% से बढ़कर 4.85% हो गई अर्थात् केवल 1.54 प्रतिशत की वृद्धि हुई; और

यह निबंध रा० शै० अ० प्र० प० द्वारा वैकल्पिक शैक्षिक भविष्य संबंधी कार्यशाला में प्रस्तुत किया गया था। व्यक्त किया गया मत लेखक का है, न कि उस संगठन का, जिससे उनका संबंध है।

(vi) सामान्य रूप से, यह प्रतीत होता है कि जिन राज्यों में इस अवधि के दौरान, उनके समग्र आर्थिक क्षेत्र में प्रगति हुई, उनमें जनजातीय लोगों में साक्षरता में भी प्रगति हुई ।

सन् 1944 से पहले, भारत सरकार का, अनुसूचित जातियों अनु-जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों की शिक्षा के लिए कोई सीधा कार्यक्रम नहीं था। उस वर्ष, अनुसूचित जाति के बच्चें के लाभ के लिए, प्रारंभ में पांच वर्ष की अवधि के लिए, उत्तर-मैट्रिक छात्रवृत्तियां प्रारंभ की गई। 1948-49 में यह योजना अनुसूचति जनजातियों के बच्चों पर भी लागू कर दी गई। इस समय, उच्च अध्ययन के इच्छुक अनुसूचित जनजातियों के सभी बच्चे उत्तर-मैट्रिक छात्रवृत्तियों के लिए पात्र हैं चाहे उनके माता-पिता/अभिभावकों की आय कुछ भी हो, जबकि अनुसूचित जातियों के बच्चों को एक निश्चित आय के अनुसार छात्रवृत्तियां प्रदान की जाती हैं। वर्ष 1975-76 से, गृह मंत्रालय ने, जो योजना का संचालन कर रहा है, इस आय प्रणाली को अनुसूचित जनजातियों के छात्रों पर भी लागू करने का प्रस्ताव किया। तथापि, अनु-जनजातियों के मामले में, आय प्रणाली की इस धारा के कार्यन्वयन को एक वर्ष के लिए स्थगित कर दिया गया है। उत्तर-मैट्रिक छात्रवृत्तियों की योजना तथा मध्याह्न भोजन, निःशुल्क पुस्तकें, मुफ्त वर्दी, कुछ छात्रों के लिए मुफ्त आवास तथा भोजन, अध्यापिकाओं के लिए अध्यापक-क्वार्टर, स्कूल स्तर पर छात्रवृत्तियों आदि के रूप में प्रोत्साहन देने की कुछ योजनाओं के अलावा, पांचवीं पंचवर्षीय योजना की शुरुआत तक अनुसूचित जनजातियों के बच्चों के लिए शैक्षिक सुविधाओं के विस्तार के लिए सरकार द्वारा कोई सीधी योजना नहीं तैयार की गई।

एक नया दृष्टिकोण

पांचवी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत पहली बार विकास का एक नया दृष्टिकोण प्रारंभ किया गया था, जिसका उद्देश्य जनजातीय क्षेत्रों में समेकित विकास करना था ताकि जनजातियों के लिए एक नई सामाजिक आर्थिक पद्धति का विकास किया जा सके। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत, शिक्षा को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है और इसीलिए परिकल्पित परिवर्तन लाने के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस नीति के अन्तर्गत राज्यों तथा संघीय क्षेत्रों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है–(क) ऐसे राज्य तथा संघीय क्षेत्र जहां 50% से अधिक जनजातीय आबादी है; (ख) ऐसे राज्य तथा संघीय क्षेत्र जहां काफी संख्या में जनजातीय लोग तथा जनजातीय आबादी वाले क्षेत्र है; और (ग) ऐसे राज्य तथा संघीय क्षेत्र जहां छितरी संख्या में जनजातीय आबादी है। मेघालय तथा नागालैण्ड राज्य और अरुणाचल प्रदेश, दादरा तथा नागर हवेली, लक्षद्वीप तथा मिजोरम संघीय क्षेत्र वर्ग (क) के अन्तर्गत आते हैं। इन राज्यों तथा संघीय क्षेत्रों को जनजातीय क्षेत्रों के लिए अलग से उप-योजनाएं तैयार नहीं करनी होती क्योंकि उनकी पूरी योजनाओं को जनजातीय विकास की योजनाएं समझा जाता है। वर्ग (ख) के अन्तर्गत आने वाले ग्यारह राज्य है: आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, उड़ीसा, राजस्थान तथा त्रिपुरा। केरल, कर्नाटक, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, प० बंगाल राज्य तथा अन्दमान और निकोबार द्वीपसमूह तथा गोआ, दमन और दीव, संघीय क्षेत्र वर्ग (ग) के अंतर्गत आते हैं। वर्ग (ख) तथा (ग) के अन्तर्गत आने वाले राज्यों तथा संघीय क्षेत्रों से कहा गया है कि वे पांचवी पंचवर्षीय योजना के एक भाग के रूप में अलग-अलग जनजातीय उप-योजनाएं तैयार करें। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक राज्य के उप-योजना क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले विकास के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न क्षेत्रों के लिए माइक्रो स्तर पर आयोजन के लिए 160 से अधिक समेकित जनजातीय विकास परियोजनाएं तैयार की जा रही हैं।

रा० शि० अ० प्र० परिषद् द्वारा किए गए तीसरे शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार, 31 दिसम्बर, 1973 को, 46% अथवा इससे अधिक अनुसूचित जनजाति आबादी वाले 84,683 गांवों में से 36,644 (43.27%) में प्राथमिकता तथा 4,909 (5.8%) में मिडिल स्कूल अपनी अपनी बस्तियों में थे। शेष गांवों में से कुछेक गांवों में यदि अपनी-अपनी बस्तियों में नहीं तो निकटवर्ती स्थानों पर स्कूल हो सकते हैं। ऐसे जनजातियों गांवों का पता लगाना जरूरी है जहां कोई स्कूल नहीं है और सर्व प्रथम ऐसे गांवों में स्कूल की व्यवस्था करनी होगी। शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के संबंध में स्थापित किए गए कार्यकारी दल ने सिफारिश की है कि सर्वेक्षण में बताए गए ऐसे सभी गांवों में खण्ड स्तर पर, छठी योजना के पहले तीन वर्षों के अन्दर, अर्थात् 1981 तक, स्कूलों की स्थापना की जाए।

शिक्षा के सर्वव्यापीकरण का लक्ष्य प्राप्त करने में राज्य, सरकारों द्वारा किए गए प्रयासों द्वारा काफी सीमा तक जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा के क्षेत्र में भौतिक सुविधाओं का विस्तार हुआ है, तथापि, इसके फलस्वरूप अन्य समुदायों के स्कूल जाने वाले बच्चों की तुलना में अनुसूचित जनजातियों के स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या में विद्यमान विशाल अन्तर में कोई विशेष कमी नहीं हुई है। विवरण II से पता चलता है कि जनजातीय समुदायों के बच्चों को दी गई वर्तमान सुविधाओं के फलस्वरूप कुछ प्रगति हुई है, तथापि इन समुदायों के बच्चों को अन्य समुदायों

के बच्चों के बराबर स्तर पर लाने के लिए अभी काफी कार्य करना बाकी है। निम्नलिखित तालिका में अखिल भारतीय स्तर पर स्थिति दर्शाई गई है :

	कक्षा I— V		कक्षा VI–VIII	
	1968–69	1974–75	1968–69	1974–75
अनुसूचित जनजाति				
1. दाखिला (लाखों में)	22.25	31.79	3.69	4.57
2. तदनुरूपी आयु-वर्ग में प्रतिशतता	52.3	59.7	14.1	15.6
सभी समुदाय				
3. दाखिला (लाखों में)	543.69	638.42	125.37	152.24
4. तदनुरूपी आयु-वर्ग में प्रतिशतता	78.1	82.7	33.5	36.0

इस तालिका को देखने से पता चलेगा कि 1974-75 में 6-11 आयु-वर्ग में अनुसूचित जनजाति के केवल 59.7% बच्चे दाखिल हुए जबकि सभी समुदायों की प्रतिशतता 82.7 थी। इसी प्रकार, 11-14 आयु-वर्ग में अनुसूचित जनजातियों के बच्चों की प्रतिशतता 15.6 थी जबकि सभी समुदायों की प्रतिशतता 36 थी।

इस संबंध में राज्यवार स्थिति, विवरण II में दर्शाई गइ है। अनुसूचित जनजाति के बच्चों की दाखिले की स्थिति का विश्लेषण करने से पता चलता है कि प्राथमिक स्कूली कक्षाओं में स्कूल छोड़ने वाले बच्चों में इनकी संख्या सर्वाधिक है और कक्षा I में दाखिल होने वाले छात्रों में 70% से अधिक छात्र प्राथमिक शिक्षा पूरी करने से पहले ही छोड़ जाते हैं।

समस्या का समाधान किस प्रकार किया जाए

जनजातीय शिक्षा का सामधान दो दृष्टियों से करना होगा, अर्थात (i) जनजातियों बच्चों को स्कलों में लाना, और (ii) उन्हें कम से कम प्रारम्भिक स्तर तक की शिक्षा, अर्थात् कक्षा viii तक, पूरी होने तक स्कूलों में रोके रखना। इसके लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं :

(i) स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या (जो स्कूल में दाखिल ही नहीं हुए अथवा किसी स्तर पर स्कूल छोड़ गए, ऐसी स्थिति में उन्होंने किस स्तर पर स्कूल छोड़ा), स्कूल न जाने के कारणों और गांव के आस-पास उपलब्ध स्कूल सुविधाओं का पता लगाने के लिए उप-योजना का ग्राम-वार सर्वेक्षण किया जाए।

(ii) जनजातीय क्षेत्रों में स्थित विद्यमान संस्थाओं का उनकी स्थलाकृति के अनसार सर्वेक्षण नक्शा तैयार किया जाए और इस नक्शे के आधार पर शैक्षिक संस्थाओं की आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध की जाएं ताकि प्रत्येक बच्चे के लिए उसके घर के निकट ही स्कूल की सुविधा उपलब्ध हो सके। स्कूलों की व्यवस्था करने के साथ-साथ, प्राथमिक स्कूलों के पूरक के रूप में हाई/उच्च माध्यमिक स्कूलों की संख्या मे विद्यमान असमानताओं को, उनके स्थानों पर स्कूल खोल कर/उनका दर्जा बढ़ाकर, दूर किया जाना चाहिए।

(iii) छितरी आबादी वाले वर्गों के लिए, जहां अलग से प्राथमिक स्कूलों की स्थापना नहीं की जा सकती, आश्रमों जैसे रिहायशी स्कूलों की व्यवस्था की जा सकती है। इसके अतिरिक्त, पब्लिक स्कूलों जैसे कुछ आश्रम स्कूलों की व्यवस्था की जा सकती है जो मार्गदर्शक का कार्य करें।

(iv) संबंधित राज्यों में अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता स्तर के आधार पर 5 से 10% के बीच साक्षरता स्तर के कम साक्षरता वाले क्षेत्रों का खण्ड स्तर पर पता लगाया जाना चाहिए और उनपर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इन क्षेत्रों में, पूर्व-प्राथमिक-एवं प्राथमिक संस्थाओं के रूप में कार्य करने के लिए विद्यमान प्राथमिक स्कूलों को बदलने के विशेष कार्यक्रम शुरु किए जाने चाहिए। पूर्व-प्राथमिक कक्षाएं शुरु करने से जनजातीय बच्चे अपनी प्रारम्भिक आयु में ही शैक्षिक क्षेत्र में प्रवेश कर सकेंगे। इसके साथ-साथ, ऐसा होने से बड़ी आयु की लड़कियां छोटे बच्चों के साथ स्कूल जा सकेंगी, जिनको देखभाल इन स्कूलों में ऐसे बच्चों की देखभाल के लिए एक महिला सहायक या "स्कूल माता" नियुक्त करके उसी संस्था में की जा सकती है।

(v) जहां भी संभव हो, स्कूलों में पति-पत्नियां नियुक्त करने का एक कार्यक्रम तैयार किया जा सकता है। इससे, एक ही कार्य-क्षेत्र में कार्य करने और लड़के तथा लड़कियों की शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक आवश्यकताओं की देखभाल करने के लिए शिक्षक परिवार को वित्तीय तथा भावात्मक प्रोत्साहन उपलब्ध होगा।

4—77 ऐजुकेशन/78

(vi) दूरवर्ती जनजातीय क्षेत्रीय स्कूलों के समुचित कामकाज को सुनिश्चित करने तथा विद्यमान सुविधाओं का अधिकतम उपयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि इन क्षेत्रों के लिए प्रशासनिक तथा निरीक्षण तंत्र को उपयुक्त रुप से सुदृढ़ किया जाए। इस प्रयोजन के लिए, इन क्षेत्रों के लिए एक निरीक्षण अधिकारी के स्कूल-मापदण्डों में शिथिलता दी जानी चाहिए।

(vii) औपचारिक पर्यवेक्षण प्रबंधों के अतिरिक्त इन क्षेत्रों के लिए स्कूल कम्प्लेक्स की एक प्रणाली का विकास किया जाए, जहां कम्पलेक्स के सेन्ट्रल स्कूल के प्रधानाध्यापक को, इस कम्प्लेक्स के अन्तर्गत आने वाले स्कूलों के प्रभावी नियंत्रण की जिम्मेदारी सौंपी जानी चाहिए। प्रधानाध्यापक को प्रशासनिक तथा शैक्षिक मामलों में प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों की मदद करनी चाहिए।

(viii) जनजातीय बच्चों के लिए निःशुक छात्रावास सुविधाएं प्रदान करने के उपयुक्त कार्यक्रम तैयार किए जाने चाहिए।

(ix) जहां आवश्यक हो, रिहायशी क्वार्टरों, विशेष रुप से अध्यापिकाओं के लिए क्वार्टरों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(x) औपचारिक स्कूल पद्धति से, बड़ी संख्या में जनजातीय बच्चों की सामाजिक आर्थिक आवश्यकताएं पूरी नहीं हुई हैं जिसका परिणाम यह हुआ है कि उन क्षेत्रों में भी जहां सामान्य स्कूल सुविधाएं प्रदान की गई हैं, वे उनका उपयोग नहीं कर सके हैं। उन सभी बच्चों के लिए, जो सामान्य स्कल समय के दौरान स्कूल नहीं जा सकते, जनजातीय क्षेत्रों में अंशकालिक/गैर-औपचारिक शिक्षा कक्षाएं शुरु करने के लिए प्रबंध करने होंगे। कुछ खानाबदोश लोगों के मामले में चल-स्कूलों की व्यवस्था करनी होगी। स्कूल स्तर पर अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों के लिए, सामान्य स्कूली पाठ्यचर्या की तुलना में कम अवधि की विशेष पाठ्यचर्या तैयार करनी होगी जो इकाइयों में बंटी हो और जिसमें जनजातियों की आवश्यकताओं से संबंधित शिक्षा की विषय वस्तु शामिल हो। इसके अतिरिक्त, अनौपचारिक /अंशकालिक केन्द्रों के लिए शिक्षकों को बदली हुई पद्धति के अनुरुप उपयुक्त रूप से अनुस्थापित करना होगा।

(xi) देखा गया है कि जनजातीय लोग, शिक्षा के महत्व की कम समज के कारण अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजते हैं। निरक्षर जनजातीय मातापिता के मामले में यह बात कहीं अधिक सच है। इसलिए यह आवश्यक है कि कम साक्षरता वाले क्षेत्रों में प्रौढ़ों के लिए अनौपचारिक शिक्षा का एक व्यापक कार्यक्रम साथ-साथ चलाया जाए। ऐसे कार्यक्रमों में उनके लिए शैक्षिक प्रशिक्षण तथा नागरिक शिक्षा शामिल हो सकती है, जिनसे एक और तो उन्हें अपना व्यवसाय सुधारने और दूसरी ओर शोषण की चुनौतियों का सामना करने में मदद मिलेगी।

(xii) 1971 की जनगणना के आंकड़ों से पता चला कि कुछ जनजातियों के मामले में साक्षरता की दर, 1961 की जनगणना साक्षरता दरों की तुलना में कम हुई है। साक्षरता में गिरावट दिखाने वाले जनजातीय लोगों के मामले का विश्लेषण किया जाना चाहिए और स्थिति को सुधारने के लिए उपचारात्मक कदम उठाए जाने चाहिए।

(xiii) गैर-जनजातीय अध्यापक तथा निरक्षर जनजातीय लोगों के बीच संचार में इतना अन्तर है कि दोनों के बीच कोई अन्योन्यक्रिया संभव नहीं है। इसका समाधान, प्रौढ़ साक्षरता कक्षाओं तथा साथ ही प्राथमिक स्तर के प्रथम दो अथवा तीन वर्षों के लिए पठन सामग्री की व्यवस्था करने के वास्ते क्षेत्री लिपि तथा जनजातीय बोलियों का सम्मिश्रण करके किया जा सकता है।

(xiv) अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों के लिए, स्थानीय अध्यापकों शिक्षित सेवानिवृत्त कार्मिकों तथा छात्रों की सेवाओ का उपयोग किया जा सकता है। क्षेत्र के लिए शैक्षिक योजना तैयार करते समय, औद्योगिक क्षेत्रों के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करने को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है ताकि जनजातीय क्षेत्र में स्थित उद्योगों में लगाए जाने वाले विशाल धन का जनजातीय लोग लाभ उठा सकें।

(xv) जनजातीय क्षेत्रों में कुछ स्कूलों में चुने हुए खेलों में सेवाकालीन प्रशिक्षण सुविधाएं प्रदान करके इन क्षेत्रों में खेल प्रतिभा की खोज करने के लिए योजनाएं तैयार की जाएं। जनजातीय क्षेत्रों में बॉय स्काउट्स तथा गर्ल्स गाइड्स अभियान को भी प्रोत्साहित किया जाए।

(xvi) निःशुल्क पुस्तकों, वर्दियों, विशेषकर लड़कियों के लिए, मध्याह्न अथवा दोनो समय का भोजन, जैसी भी स्थिति हो, छात्रावासो में रहने वाले छात्रों के लिए वृत्तिकाओं के रूप में आवश्यक प्रोत्साहन दिए जाने चाहिए। ऐसे प्रोत्साहन, व्यापक आधार पर नहीं, बल्कि चयनात्मक आधार पर प्रदान किए जाने चाहिए, जो किसी सम/जक्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं पर आधारित हो ताकि सीमित साधनों का अधिकतम उपयोग किया जा सके।

(xvii) स्कूल स्तर पर अपना अध्ययन पूरा होने से पहले प्रतिभाशाली छात्रों द्वारा स्कूल छोड़ देने को रोकने के लिए प्रतिभाशाली जनजातीय बच्चों को छात्रवृत्तियां प्रदान करने की योजना शुरू की जानी चाहिए।

जनजातीय क्षेत्रों में, जहां कि 70%से अधिक बच्चों को घरों में अथवा घरों से बाहर काम करना पड़ता है और इसलिए पूर्णकालिक आधार पर स्कूलो में नहीं जा पाते, शिक्षा की मांग को पूरा करने के लिए केवल औपचारिक शिक्षा पद्धति पर्याप्त नहीं होगी। इस समय हमारी पद्धति में केवल पूर्णकालिक आधार पर शिक्षा की व्यवस्था है और शिक्षा पाने के इच्छुक सभी व्यक्तियों को अंशकालिक आधार पर शिक्षा प्रदान करने के लिए बहुत कम प्रयास किए गए हैं। इस नीति में परिवर्तन करने की आवश्यकता है और एक नई नीति तैयार की जानी चाहिए जिसमें उन सभी बच्चो को "औपचारिक अंशकालिक" शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाए जो पूर्णकालिक आधार पर स्कूलों में दाखिला नहीं ले सकते। इसके लिए, प्रत्येक राज्य सरकार को अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए अपनी आवश्यकताओं का जायजा लेना होगा और उसके लिए अपेक्षित प्रबंध करने होंगे।

शैक्षिक पद्धति द्वारा जनजातीय क्षेत्रों में तैयार किया गया साक्षरता का एक छोटा सा वर्ग इतना कम है की उससे निरक्षर लोगों को शोषण से बचाया नहीं जा सकता और न ही उससे उनकी सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को हल करने में कोई सहायता मिल सकती है। शिक्षित लोगों के बाहर चले जाने पर ये वर्ग शिक्षा के स्थायी लाभो से और भी वंचित रह जाते हैं। इसलिए निरक्षर जनजातीय लोगों को व्यापक रूप से शिक्षा देने की आवश्यकता है। इस प्रयोजन के लिए प्रौढ़ साक्षरता कार्यक्रमों के प्रति एक नया दृष्किोण अपनाना होगा जिसके अन्तर्गत शिक्षा के ऐसे तत्वों को चुनना होगा जिनसे उनमें जागरुकता पैदा हो और नए विकास कार्यक्रमों के लिए उनकी क्षमता में वृद्धि हो। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्यों को प्राथमिकता वाले क्षेत्रों का पता लगाना होगा जिसमें प्रारंभ में अत्यंत कम साक्षरता वाले स्थानों और ऐसे क्षेत्रों को शामिल किया जाएगा जो औद्योगिक तथा खनन परिसरो तथा अन्य आर्थिक गतिविधियो के प्रभाव में हों तथा ऐसे क्षेत्रों को जिन्हें सामान्य शैक्षिक पद्धति के अन्तर्गत पूरी तरह से शामिल नहीं किए गए हैं, उसके बाद की प्राथमिकता में शामिल किया जा सकता है। वर्गों को चुनते समय 5%से कम साक्षरता स्तर वाले जनजातीय समुदायों अथवा 50% औसतन जनजातीय साक्षरता दर से कम वाले समुदायों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। जनजातीय क्षेत्रों के लिए प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के लिए एक नई पाठ्यचर्या तैयार की जानी चाहिए जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ, समुदाय को सांस्कृतिक सम्पदा का बुनियादी ज्ञान, सरकार द्वारा उनके आर्थिक विकास के लिए स्थापित आर्थिक प्रक्रियाओं का ज्ञान, उन संस्थाओं की जानकारी, जिनके साथ वे सम्पर्क में आते हैं, नागरिक के अधिकार तथा कर्त्तव्य, कृषि विस्तार सेवाओं तथा सहकारी पद्धति और अंक विज्ञान, पढ़ने तथा लिखने के बुनियादी तत्वों की अधिक समझ-बुझ शामिल होनी चाहिए।

कालेज स्तर पर शिक्षा

जहां तक कालेज स्तर पर जनजातियों की शिक्षा का संबंध है, उच्च शिक्षा पाठ्यक्रमो में प्रवेश चाहने वाले जनजातीय छात्रों को, गृह मंत्रालय द्वारा संचालित केन्द्र प्रायोजित योजना के अन्तर्गत उत्तर मैट्रिक छात्रवृत्तियां प्रदान की जाती हैं। योजना में, रिहायशी तथा गैर-रिहायशी प्रयोजनों के लिए अनुरक्षण भत्ते के अतिरिक्त, उन सभी जनजातीय छात्रों को सभी अनिवार्य वापस न होने योग्य शुल्क की प्रतिपूर्ति शामिल है जो उच्च शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश लेते हैं तथा जिनके माता-पिता की मासिक आय 750/-रु० या इससे कम है। इसके अतिरिक्त, व्यावसायिक शिक्षा के लिए सरकारी संस्थाओं में प्रवेश के लिए अनुसूचित जातियों तथा अनु० जन-जातियों के वास्ते स्थान भी आरक्षित हैं। तथापि, इस बात की समीक्षा की जानी है कि योजना कहां तक लाभप्रद रही है। यदि उन्हें घटिया दर्जे के कालेजों अथवा अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण अध्ययन पाठ्यक्रमों में प्रवेश प्राप्त हो तथा यदि उनका कार्य का स्तर कम हो तो बेरोजगार शिक्षित व्यक्तियों की कुल संख्या में वृद्धि होने के अलावा इस योजना का कोई बेहतर योगदान नहीं होगा। इस बात का अध्ययन करने की भी आवश्यकता है कि क्या इस सहायता का लाभ, अनुसूचति जनजातियों के उन्नत वर्गों के कुछ चुने हुए लोगों ने उठाया है या ये लाभ सभी वर्गों तक पहुंच गए हैं। आमतौर पर यह कहा जाता है कि उच्च शिक्षा के लिए सुविधाओं का उपयोग मुख्यतः उन अनुसूचित जनजातियों ने उठाया है जो शहरी क्षेत्रो में रहती

अथवा जनजातीय क्षेत्रों में केवल उन कुछेक छात्रों ने लाभ उठाया है जहां मिशनरियों ने शिक्षा का प्रचार किया। इसलिए, सुझाव है कि प्रतिभाशाली ग्राम जनजातियों के बच्चों को छात्रवृत्तियां, उपयुक्त व्यावसायिक मार्ग दर्शन तथा उन्हें उपयुक्त उच्च शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश लेने में सहायता प्रदान करके उच्च अध्ययन पाठ्यक्रमों में प्रवेश लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। यह प्रक्रिया मिडिल स्कूल स्तर से प्रारंभ होनी चाहिए जहां कुछ प्रतिभाशाली जनजातीय छात्रों को चुना जाए और उन्हें जिले के चुने हुए अच्छे स्कूलों में सरकारी खर्च पर उच्च माध्यमिक स्तर पर शिक्षा प्रदान की जाए। इनमें से कुछ छात्रों को पब्लिक स्कूलों में भी दाखिल किया जा सकता है जहां इन चुने हुए छात्रों के लिए स्थान आरक्षित किए जा सकते हैं। इस प्रयोजन के लिए, उच्च माध्यमिक स्तर पर जनजातीय छात्रों की रुचि अभिवृत्ति, बुद्धि तथा इच्छाओं का मूल्यांकन करने के लिए मनोवैज्ञानिक तथा अन्य परीक्षण आयोजित करने की सम्भावना का पता लगाया जा सकता है ताकि ऐसे छात्रों को चुना जा सके जिनमें उच्च तकनीकी प्रशिक्षण की अभिरुचि हो। यदि आवश्यक हो तो उनका तकनीकी पाठ्यक्रमों में प्रवेश सुनिश्चित करने के लिए उन्हें प्रशिक्षण सुविधाएं प्रदान करने के प्रयास किए जाएं।

संक्षप में, जनजातीय क्षेत्रों में अब तक शिक्षा को धक्का पहुंचा है और ऐसा अभिमत है कि जब तक कि राष्ट्रीय प्रतिबद्धता के एक भाग के रूप में इन क्षेत्रों में शिक्षा के विकास कार्यक्रम शुरु न किए जाएं, तब तक वास्तविक प्रगति नहीं हो सकती। प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण को राष्ट्रीय नीति का एक प्रमुख लक्ष्य समझा गया है और तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि समाज के कम सुविधाप्राप्त वर्गों, अर्थात् अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन-जातियों के बच्चों और साथ लड़कियों की शिक्षा के क्षेत्र में कोई प्रगति न हो जिनकी संख्या काफी है। समस्या काफी जटील और आकार में विशाल है। इसलिए, इसके समाधान के लिए केन्द्र में तथा राज्यों में राजनीतिक नेताओं के दृढ़ निश्चय की आवश्यकता है। राज्य सरकारों को प्रमुख भूमिका निभानी है और इस कार्य में उन्हें स्थानीय नेताओं का सहयोग लेना चाहिए।

संदर्भ

1. "1961–71 के दौरान अनुसूचित जनजातियों के बीच साक्षरता का तुलनात्मक अध्ययन" महापंजीयक, भारत का कार्यालय।
2. तीसरा अखिल भारतीय शैक्षिक सर्वेक्षण (स्कूल शिक्षा), राष्ट्रीय तालिकाएं, मुख्य निष्कर्ष–राष्ट्रीय शिक्षा, अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद।
3. प्रारंभिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के संबंध में कार्यकारी दल-अन्तरिम रिपोर्ट, शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार।
4. 'भारत में शिक्षा, 1968–69'—शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय भारत सरकार।
5. 'शैक्षिक आंकड़े--एक नजर में, 1974–75'—शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार।
6. 'छठी योजना में जनजातीय विकास के प्रति दृष्टिकोण—एक प्रारम्भिक परिदृष्य', गृह मंत्रालय, भारत सरकार।
7. अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के आयुक्त की रिपोर्ट, 1973–74।

विवरण-I अनुसूचित जनजातियों की आबादी और साक्षरता दर, 1971

(1971 की जनगणना)

क्रम संख्या	राज्य/संघ क्षेत्र	कुल आबादी (लाखों में)	अनु० जनजातियों की जनसंख्या (लाखों में)	कुल जनसंख्या के अनुपात में अनु०-जनजातियों की प्रतिशतता	साक्षरता की प्रतिशतता	
					कुल	अनु० जनजातियां
1	2	3	4	5	6	7
राज्य						
1	आन्ध्र प्रदेश	435.03	16.57	3.81	24.57	5.34
2	असम	149.58	19.20	12.84	28.72	26.03
3	बिहार	563.53	49.33	8.76	19.94	11.64
4	गुजरात	266.97	37.34	13.99	35.79	14.12

1	2	3	4	5	6	7
5 हरियाणा		100.37	..	..	26.89	..
6 हिमाचल प्रदेश		34.60	1.42	4.09	31.96	15.89
7 जम्मू और काश्मीर		46.17	..	..	18.53	..
8 केरल		213.47	2.69	1.26	60.42	25.72
9 मध्य प्रदेश		416.54	83.87	20.14	22.14	7.72
10 महाराष्ट्र		504.12	29.54	5.86	39.18	11.74
11 मणिपूर		10.73	3.34	31.17	32.91	28.71
12 मेघालय		10.12	8.14	80.43	29.49	26.45
13 कर्नाटक		292.99	2.31	0.79	31.52	14.85
14 नागालैण्ड		5.16	4.58	88.61	27.40	24.01
15 उड़ीसा		219.45	50.72	23.11	26.18	9.46
16 पंजाब		135.51	..	..	33.67	..
17 राजस्थान		257.66	31.26	12.13	19.07	6.47
18 तमिलनाडु		411.99	3.12	0.76	39.46	9.02
19 त्रिपुरा		15.56	4.51	28.95	30.98	15.03
20 उत्तर प्रदेश		883.41	1.99	0.22	21.77	14.59
21 प० बंगाल		443.12	25.33	5.72	33.20	8.92
संघ क्षेत्र						
1 अन्दमान और निकोबार		2.15	0.18	15.52	43.59	17.85
2 अरुणाचल प्रदेश		4.68	3.69	79.02	11.29	5.20
3 चंडीगढ़		2.57	..	..	61.56	..
4 दादरा और नागर हवेली		0.74	0.64	86.89	14.97	8.90
5 दिल्ली		40.66	..	..	56.61	..
6 गोआ, दमन और दीव		8.58	0.08	0.93	45.00	12.73
7 लक्षद्वीप		0.32	0.30	93.75	43.66	41.37
8 पांण्डिचेरी		4.72	..	..	46.02	..
	जोड़	5,479.50	380.15	6.94	29.34	11.30

विवरण-II अनुसूचित जनजातियों के 6-14 आयु वर्ग के बच्चों के दाखिले की प्रगति

(लाखों में)

	I–V(6–11)		VI– VIII(11–14)	
	1974–75		1974–75	
	सभी समुदाय	अनु० जनजातियां	सभी समुदाय	अनु० जनजातियां
1	2	3	4	5
1. आन्ध्र प्रदेश	40.82	1.02	6.14	0.05
	(169.3)	(48.9)	(28.3)	(6.6)
2. असम	15.93	2.53	4.43	0.50
	(71.1)	(100.0)	(39.5)	(41.3)
3. बिहार	42.74	4.02	8.9	0.72
	(54.0)	(58.7)	(15.3)	(18.7)
4. गुजरात	35.44	3.51	8.44	0.65
	(88.0)	(59.0)	(38.7)	(21.0)
5. हिमाचल प्रदेश	4.35	0.12	1.32	0.03
	(91.7)	(60.0)	(49.4)	(26.0)
6. मध्य प्रदेश	44.36	6.47	8.2	0.53
	(72.3)	(54.4)	(24.4)	(7.5)
7. महाराष्ट्र	70.00	2.94	17.51	0.50
	(92.8)	(72.0)	(44.7)	(16.0)
8. मणिपुर	2.33	0.86	0.43	0.11
	(132.3)	(15.7)	(49.2)	(38.0)
9. उड़ीसा	23.10	3.53	3.74	0.26
	(74.6)	(49.4)	(22.9)	(7.0)
10. राजस्थान	22.09	1.29	5.60	0.19
	(67.4)	(32.0)	(32.0)	(7.9)
11. त्रिपुरा	2.08	0.44	0.46	0.05
	(92.6)	(67.4)	(39.2)	(16.1)

कोष्ठकों में दिये गये आंकड़े तदनुरूपी आयु-वर्ग की जनसंख्या में प्रतिशतता दर्शाते हैं।

● ● ●

नयी पाठ्यचर्या में जनसंख्या शिक्षा की स्थिति

—रमेश चन्द्र

बम्बई में सन् 1969 में शिक्षा तथा स्वास्थ्य मंत्रालयों के तत्वावधान में एक गोष्ठी हुई थी जिसका विषय था: **जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय गोष्ठी**। इस गोष्ठी ने यह निर्णय किया था कि जनसंख्या शिक्षा पाठ्यचर्या की एक अभिन्न अंग होनी चाहिए। सरकार द्वारा समय-समय पर जारी किए गए निर्णयों में भी यह बात कही गई है। अप्रैल 1976 तथा जून 1977 में दिए गए जनसंख्या सम्बन्धी नीति विवरणों में भी सामान्य शिक्षा के अंग के रूप में जनसंख्या शिक्षा देने के बारे में जोर दिया गया था। 10+2 की शिक्षा पद्धति के बारे में जो मौलिक प्रलेख है अर्थात् **10 वर्षीय स्कूल की पाठ्यचर्या : संरचना**, जो कि सन् 1975 में निकाला गया था, इसमें भी यह कहा गया है कि "जनसंख्या शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए" तथा इस बात पर जोर दिया गया है की "इसके बारे में अनेक विषयक दृष्टिकोण से कार्य किया जा सकता है।" इस प्रलेख के प्रमुख मार्गदर्शन के आधार पर सन् 1976 में तैयार की गई नयी पाठ्यचर्या में जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी अनेक बातें शामिल की गई हैं। इस प्रलेख का उद्देश्य है नयी पाठ्यचर्या में जनसंख्या शिक्षा की स्थिति को दिखाना और उन स्थलों की ओर संकेत करना जहां जनसंख्या शिक्षा को शामिल कर लिया गया है।

प्राथमिक चरण (कक्षा I से V) (आयु-वर्ग 6-11)

प्राथमिक चरण की कक्षा I या II में शिक्षण बिना किसी निर्धारित पाठ्य-पुस्तक के किया जाता है। फिर भी, कुछ ऐसी मार्गदर्शक पुस्तकें हैं जिसकी सहायता से शिक्षक पाठ्यचर्या के बारे में मार्गदर्शन पा सकते हैं। इन कक्षाओं में जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी विचार अप्रत्यक्ष रूप से "हमारा परिवार", "हमारा घर" तथा "हमारा अड़ोस-पड़ोस"—इन जैसी बातों में पाए जाते हैं।

पाठ्य-पुस्तक की सहायता से शिक्षण कक्षा III से शुरू होता है। कक्षा III से V में जनसंख्या शिक्षा वातावरण अध्ययन I (सामाजिक अध्ययन) तथा वातावरण अध्ययन II (सामान्य विज्ञान) मख्यतः इन्हीं में होती है। जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी सामाजिक अध्ययन में ये बातें होती हैं—भारत के कुछ भागों में लोगों का जीवन, उनका भोजन, वस्त्र, आवास तथा धन्धा; मानव साधन : जनसंख्या—अच्छे भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि के द्वारा जनसंख्या के गुण में सुधार करना।

सामान्य विज्ञान में जनसंख्या शिक्षा सम्बन्धी जो मुख्य बातें पाई जाती हैं वे इस प्रकार हैं : आवास तथा वस्त्र, मानव शरीर, पोषण तथा स्वास्थ्य, वायु, जल तथा मौसम—वायु तथा जल का दूषण, पृथ्वी पर तथा उसके अन्दर प्राकृतिक साधन। इस पाठ्यचर्या में पोषण सम्बन्धी सरल बातें भी होती हैं और उपभोग की विभिन्न वस्तुओं की मात्रा होती है। संक्षेप में इस चरण में जनसंख्या सम्बन्धी विचार स्थानीय वातावरण से सम्बंधित होते हैं और उनका प्रतिपादन अत्यन्त सरल होता है।

मध्य स्तर (कक्षा VI से VIII) (आयु-वर्ग 11-14)

मध्य स्तर पर कक्षा VI से VIII में जनसंख्या शिक्षा को समाज विज्ञानों (प्रारम्भिक इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र तथा अर्थ-शास्त्र और विज्ञान) (प्रारम्भिक भौतिक विज्ञान तथा जीवन विज्ञान) में शामिल किया गया है। समाज विज्ञानों में भूगोल में अनेक बातें शामिल की गई हैं जैसे कि लोग, हमारे अड़ोस-पड़ोस, जनसंख्या की संरचना तथा इसका वितरण और घनत्व आदि। यह जानना महत्वपूर्ण होगा कि नागरिक शास्त्र में जनसंख्या के बारे में एक ऐसा विशष विषय शामिल किया गया है जिसमें जनगणना की अद्यतन संख्या होती है, जनसंख्या की वृद्धि दर होती है, इसका राष्ट्रीय सम्पत्ति तथा उसके वितरण पर प्रभाव दिखाया जाता है और राष्ट्रीय जनसंख्या की नीति दिखाई जाती है। इसके अतिरिक्त, पाठ्यक्रम में जीवन का गुण, भारत में निरक्षरता, निरक्षरता को दूर करने के उपाय, गरीबी तथा प्रति व्यक्ति आय भी शामिल की गई है।

इस चरण में विज्ञान के पाठ्यक्रम को समेकित रूप में बनाया गया है और उसके विषयों को जनसंख्या से सम्बद्ध रखा गया है। ये विषय हैं—सजीव विश्व तथा उसके लोग भूमि, जल, वायु, भोजन तथा स्वास्थ्य, पोषण तथा पाचनक्रिया। इस चरण में जनसंख्या तथा दूषण सम्बन्धी एक विशेष विषय भी शामिल किया गया है। जनसंख्या के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें शामिल की गई हैं—परिभाषा, जनसंख्या विस्फोट की विशेषताएं तथा इसकी समस्याएं। दूषण के अन्तर्गत ये बातें आता हैं—परिभाषा, वातावरण सम्बन्धी दूषण—वायु, जल, शोर, दूषण के कारण तथा प्रकृति में संतुलन। पाठ्यक्रम में मानव शरीर—विज्ञान सम्बन्धी ये बातें भी हैं—वृद्धि विकास तथा मानव प्रजनन। इस चरण में कुछ ऐसी बातें भी शामिल की गई हैं जिनका सम्बन्ध जीवन के गुण से होता, जैसे भोजन तथा प्राकृतिक साधनों का संरक्षण संक्षेप में, इस चरण में यह यत्न किया गया है कि छात्रों को भारत में जनसंख्या की परिस्थिति की एक संक्षेप में झांकी दी जाए, जीवन-वैज्ञानिक दृष्टि से इसकी वृद्धि के बारे में बताया जाए और इसको बहुत ही सरल तरीके से बताया जाए और यह बताया जाए कि जीवन के विभिन्न पहलुओं तथा वातावरण पर इसका क्या असर होता है।

माध्यमिक स्तर (कक्षा IX तथा X) (आयु-वर्ग-14-16)

नयी योजना में कक्षा IX तथा X में सभी विषय अनिवार्य हैं। समाज विज्ञान में मुख्य विषय ये हैं: भूगोल, इतिहास, नागरिक शास्त्र तथा अर्थ-शास्त्र। भूगोल में जनसंख्या के बारे में एक विशेष विषय शामिल किया गया है और इसमें जनसंख्या सम्बन्धी पाठ्यक्रम में निम्नलिखित बातें आती हैं—विश्व की जनसंख्या, इसका वितरण तथा घनत्व, इसकी वृद्धि की दरें—प्रादेशिक विरोध, जनसंख्या की वृद्धि, जन-सांख्यिकीय संरचना, उत्प्रवास, भारत में जन-सांख्यिकीय स्थिति। नागरिक शास्त्र में सामाजिक तथा आर्थिक चुनौतियों के अन्तर्गत जनसंख्या के बारे में एक विशेष विषय शामिल किया गया है। इसमें मुख्य बातें ये हैं: जनसंख्या की समस्याएं, गरीबी तथा बेरोजगारी, ग्रामीण तथा शहरी जनसंख्या—इसके परिणाम तथा समस्याएं। इसके अतिरिक्त, पाठ्यक्रम में आर्थिक नियोजन तथा गरीबी का उन्मूलन सम्बन्धी बातें भी शामिल की गई हैं जो कि जनसंख्या शिक्षा के शिक्षण से सम्बन्धित होती हैं। अर्थ-शास्त्र के पाठ्यक्रम में जनसंख्या की समस्या पर व्यापक रूप से विचार किया गया है और इसमें जीवन के गुण से सम्बन्धित बड़ी समस्याओं के ऊपर ध्यान केन्द्रित किया गया है। शिक्षण में ये बातें शामिल हैं: भारतीय अर्थ व्यवस्था की संरचना, इसकी महत्वपूर्ण बातें, भारत में खाद्य की समस्या, इसका स्वरूप तथा इसका हल, रोजगार, उत्पादन तथा नियोजन, राष्ट्रीय आय आदि।

विज्ञान में मानव शरीर-विज्ञान विषय में स्वास्थ्य तथा पोषण की अनेक बातें शामिल हैं, जैसे कि जनसंख्या की स्थिति तथा पारिवारिक जीवन की शिक्षा आदि। उदाहरण के लिए, उपर्युक्त विषय में ये बातें आती हैं—भारत में जनसंख्या की समस्या, विश्व जनसंख्या की प्रवृत्ति, मानव प्रजनन, गर्भावस्था तथा शिशु जन्म, शशव, बचपन तथा किशोर जीवन, मनुष्य में पोषण सम्बन्धी अवस्था। इस विषय में कई बातें हैं, जैसे कि मनुष्य तथा उसके वातावरण, प्रजनन तथा विज्ञान तथा विकास, जिनका सम्बन्ध जनसंख्या शिक्षा के शिक्षण से होता है। नयी योजना के अन्तर्गत इस स्तर पर, (अर्थात् कक्षा I से X तक) सभी विषय अनिवार्य हैं। यह जनसंख्या शिक्षा के शिक्षण की दृष्टि से लाभप्रद है, विशेषकर उस स्थिति में जब कि शिक्षण के लिए प्रवेश (इन्फ्यूज़न) की पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

माध्यमिक स्तर (कक्षा XI तथा XII) (आयु-वर्ग 16-18)

समाज विज्ञानों की कक्षा XI तथा XII में जनसंख्या शिक्षा से सम्बन्धित बातें भूगोल, अर्थ-शास्त्र, नागरिक शास्त्र (राजनीतिक शास्त्र) तथा समाज विज्ञान जैसे विषयों में शामिल की गई हैं। भूगोल के पाठ्यक्रम में जनसंख्या के जन-सांख्यिकीय पहलुओं पर चर्चा की गई है और यह बताया गया है कि इसका साधनों तथा वातावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या के विषय में ये बातें शामिल हैं—वितरण तथा घनत्व; वृद्धि—वृद्धि दरों में प्रादेशिक भिन्नता, प्रवृत्तियां, जनसांख्यिकीय संरचना—आय—स्त्री-पुरुष गठन, जनसंख्या की शीघ्र वृद्धि का विकास पर प्रभाव, बन्दोबस्ती, नागरिक सघनता, उत्प्रवास तथा वर्ष 2000 ईस्वी के लिए जनसंख्या सम्बन्धी परियोजनाएं साधनों सम्बन्धी विषय में ये बातें आती हैं—मुख्य साधनों का विश्व में वितरण, आर्थिक साधन—स्थाई तथा अस्थाई साधन और उनका उपयोग। पाठ्यक्रम में साधनों का संरक्षण तथा प्रबन्ध भी शामिल किया गया है ताकि छात्रों को यह बताया जा सके कि साधनों की कितनी विविध किस्म है और उनका किस प्रकार बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग किया जाए। वातावरण सम्बन्धी विषय में वातावरण से मनुष्य के सम्बन्ध में दिखाया गया है और यह बताया गया है कि वातावरण की विविधता में वातावरण की सम्पूर्णता और उसकी एकता का क्या महत्व होता है।

अर्थ-शास्त्र के पाठ्यक्रम में अनेक ऐसी बातें दी गई हैं जिनका सम्बन्ध जनसंख्या शिक्षा से है। इस पाठ्यक्रम में जनसंख्या विस्फोट के बारे में एक विशेष अंश है और उसमें इस विस्फोट के कारणों और इसके परिणामों और इसके उपचारों पर चर्चा की गई है। जनसंख्या शिक्षा

के व्यापक क्षेत्र में इन बातों पर चर्चा की गई है—गरीबी, असमानता तथा असुरक्षा की समस्याएं, राष्ट्रीय आय, सकल राष्ट्रीय उत्पादन तथा भारतीय अर्थ-व्यवस्था की सामाजिक-आर्थिक संरचना। मानव साधनों के विकास सम्बन्धी विषय में जनसंख्या पर इसके आर्थिक विकास के एक सशक्त माध्यम के रूप में विचार किया गया है और यह बताया गया है कि यदि इसका नियोजन देश की जरूरतों के अनुसार किया जाए तो इस प्रकार का माध्यम कितना सशक्त हो सकता है। यह विषय विशेषकर महत्वपूर्ण है क्योंकि इस में समस्या का एक संतुलित चित्र प्रस्तुत किया गया है। राजनीतिक शास्त्र में जनसंख्या सम्बन्धी बातों को सामाजिक-आर्थिक वातावरण विषय के अन्तर्गत रखा गया है और इसमें ये बातें आती हैं—सामाजिक तथा आर्थिक असमानता, गरीबी, निरक्षरता तथा बेरोजगारी। यहां पर एक नया विषय समाज शास्त्र (सोशियालोजी) शामिल किया गया है और इसमें ये बातें दी गई हैं—जनसांख्यिकीय संरचना, जनसंख्या का दबाव है। ये जनसंख्या शिक्षा की प्रारम्भिक बातें हैं।

विज्ञान में जनसंख्या शिक्षा की बातें मुख्यतया जीव-विज्ञान में शामिल की गई हैं। यहां ये बातें विषयों में आती हैं : मनुष्य तथा वातावरण, जीव-विज्ञान तथा मानव कल्याण। मनुष्य तथा वातावरण में जनसंख्या की बातें इस प्रकार हैं—सामाजिक-आर्थिक तत्वों के सम्बन्ध के अनुसार मनुष्यों, आबादी की वृद्धि ; जनसंख्या का वर्तमान वितरण तथा घनत्व, वे तत्व जिनका इस प्रकार नियंत्रण होता है ; हमारे प्राकृतिक साधन, उनका उपयोग तथा दुरुपयोग, वनों तथा वन-जीवन संरक्षण, वातावरण सम्बन्धी दूषण, जल, वायु, तथा पृथ्वी का दूषण और उनको दूर करने के उपाय। जीव-विज्ञान तथा मानव कल्याण इन विषयों में ये बातें आती हैं—पारिवारिक जीवन की शिक्षा, बीमारियां—छूत की तथा बगैर छूत की, वातावरण संबंधी खतरे—संरक्षण की जरूरत, जनसंख्या विस्फोट, जनसंख्या की वृद्धि तथा इसका नियंत्रण।

संक्षेप में ये वे बातें हैं जो कि नये पाठ्यक्रम में जनसंख्या के अन्तर्गत आती हैं।

● ● ●

[पृष्ठ 15 का शेष]

जानेवाली अर्द्धशिक्षा का पता चलेगा। उसके पश्चात् दल को ग्रामीण भारत के विद्यार्थियों के लिए एक पाठ्यक्रम तैयार करना चाहिये जिसमें ग्रामों में औपचारिक स्कूलों को चलाने के लिए उचित सुविधाओं के अभाव, शिक्षण समुदाय की शिक्षण क्षमताओं, विद्यार्थियों की मानसिक तथा पर्यावरणीय सीमाओं पर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिये।

रिपोर्ट के प्राप्त होने के पश्चात् यह वांछनीय होगा कि उसकी तुलना जिले के सर्वोत्तम स्कूलों में तथा उसके बाद राज्य की राजधानी के सर्वोत्तम स्कूलों में प्रचलित स्तरों से की जाए। अन्त में, इसकी तुलना, दिल्ली, बम्बई, मद्रास, कलकत्ता तथा पर्वतीय स्थानों में स्थित देश के सर्वोत्तम स्कूलों से की जानी चाहिये।

इससे, देश में विद्यमान उन शैक्षिक समस्याओं का पता चलेगा जो शिक्षा आयोजकों, प्रशासकों तथा नीति निर्माताओं के सामने प्रस्तुत हैं। शिक्षाविदों का ध्यान काफी समय से और काफी सीमा तक देश के शहरी क्षेत्रों की ओर ही रहा है। इसका परिणाम बहुत असंतोषजनक रहा है—इसके लाभ हमारे संविधान में परिकल्पित आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं रहे।

VI

आज देश में यह धारणा है कि आयोजना प्रक्रिया यथा आयोजना के आर्थिक लाभों से मुख्यतः शहरी क्षेत्रों को ही लाभ पहुंचा है तथा उनसे अनेक विकार उत्पन्न हुए हैं जिनका निराकरण तत्काल किया जाना चाहिये। शैक्षिक विकार तथा असंतुलन ऐसी बुराइयां हैं जिनके कारण ह्रास नियम लागू हो गया है। बहुत वर्षों पूर्व गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा का उपदेश दिया था जिसे हमने विज्ञान तथा तकनीकी के आधुनिक युग के प्रतिकूल समझकर अस्वीकार कर दिया। अब समय आ गया है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली का पुनर्विलोकन एवं पुनर्मूल्यांकन किया जाए। ग्रामीण भारत के विषय में कुसुम नायर की पुस्तक (ब्लासम्स इन द डस्ट) की प्रस्तावना लिखते हुए गुन्नार मृडाल ने चेतावनी दी थी कि राष्ट्रीय आयोजना को एक ऐसी प्रणाली का पोषण नहीं करना चाहिए जो केवल प्रगति के परिवृत्त को ही जन्म दे।

एशियन ड्रामा में, गुन्नार मृडाल ने आशा व्यक्त की थी कि इस क्षेत्र के नीति निर्माता, अत्यावश्यक शैक्षिक सुधारों का प्रयास उसी संकल्प के साथ करेंगे जिनके परिणामस्वरूप सोवियत रूस तथा चीन में प्रगति हुई। भारत में शिक्षा में सुधार लाने के लिए प्रथम उपाय "बुनियादी शिक्षा" के प्रति हमारे व्यवहार पर पुनर्विचार करना होगा।

● ● ●

रोजगारोन्मुख शिक्षा नीति की आवश्यकता

—विरेन्द्र अग्रवाल

जनता पार्टी ने यह वायदा किया है कि वह 10 वर्षों के भीतर सभी नागरिकों के लिए पूर्ण रोजगार की व्यवस्था करेगी और गरीबी को मिटा देगी। ऐसा करने के लिए लोगों के जीवन के स्तर को उठाया जाएगा। पार्टी की नई आर्थिक प्राथमिकताओं के अनुसार, कृषि, ग्रामीण विकास तथा लघु, ग्रामीण तथा कुटीर उद्योगों के विकेन्द्रीकृत संगठन को सर्वोच्च महत्व दिया जाएगा। यह निश्चित है कि ये राष्ट्रीय उद्देश्य तभी प्राप्त किए जा सकते हैं जबकि वर्तमान शिक्षा पद्धति में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन किया जाए। यह व्यापक रूप से माना जाता है कि शिक्षा की विषय-वस्तु कार्यात्मक होनी चाहिए और इसका सम्बन्ध लोगों के जीवन से तथा उनके वातावरण से होना चाहिए। लोगों की सामाजिक जरूरतों के अनुसार शिक्षा का स्वरूप होना चाहिए।

पिछली अनेक दशाब्दियों से देश में शिक्षा पद्धति के पुनर्गठन पर विचार किया जाता रहा है और इसके बारे में प्रयोग होते रहे हैं लेकिन अभी भी यह निष्क्रिय तथा मन्द है और राष्ट्र की बड़ी जरूरतों के अनुसार नहीं है। अब समय आ गया है जबकि प्राथमिक शिक्षा से विश्वविद्यालय शिक्षा तक शिक्षा के सभी चरणों में शिक्षा की एक नयी पद्धति को अन्तिम रूप दिया जाए और उसको शीघ्र लागू किया जाए। यह भी सही है कि शिक्षा पद्धति में होने वाले बार-बार परिवर्तन सिद्धान्त की दृष्टि से बुरे हैं और उनके कारण छात्रों के जीवन पर बुरा असर पड़ता है। जबकि कोई पद्धति लागू की जाए तब उसके एक निश्चित अवधि के लिए जारी रहने के बारे में निश्चितता होनी चाहिए।

बुनियादी शिक्षा

महात्मा गांधी ने कहा था कि 7 वर्ष के लिए एक राष्ट्रव्यापी आधार पर निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए, शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था में शिक्षा की प्रक्रिया इस प्रकार की होनी चाहिए कि उसका केन्द्र किसी प्रकार की कोई दस्तकारी तथा उत्पादी काम होना चाहिए और जो भी कौशल पैदा किया जाए अथवा जिसका भी प्रशिक्षण दिया जाए उसको यथासम्भव बच्चों के वातावरण से अभिन्न रूप में सम्बन्धित होना चाहिए। जाकिर हुसेन समिति ने बुनियादी शिक्षा के लिए एक ब्यौरेवार पाठ्यक्रम तैयार किया था। सभी स्तरों पर शिक्षा सामाजिक रूप से उपयोगी तथा लाभकारी कार्यों के द्वारा दी जानी चाहिए और विभिन्न विषयों की जानकारी इस प्रकार से ली जानी चाहिए ताकि वे राष्ट्रीय नियोजन तथा विकास कार्यों के समनुरूप हो। यह बात बुनियादी शिक्षा के लिए अत्यधिक जरूरी है। बुनियादी शिक्षा का जो मौलिक आधार है वह है बच्चे के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना जिसमें उसकी सृजनात्मक क्षमता का विकास भी शामिल है। कार्य अनुभव तथा राष्ट्र-सेवा शिक्षा का एक अभिन्न अंग होनी चाहिए। इसमें राष्ट्र सेवा तथा राष्ट्रीय पुनर्गठन के महत्वपूर्ण तथा कठिन कार्यक्रमों में भाग लेना भी शामिल है।

महत्वपूर्ण उत्पादी कार्य को कुल समय का 50% इस समय दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त लोगों को भारत की मिली-जुली सांस्कृतिक परम्परा के बारे में भी बताया जाना चाहिए जिसमें ये बातें शामिल होनी चाहिए—जनतन्त्र की मौलिक बाते, अहिंसा, सामाजिक न्याय तथा धर्म-निरपेक्षता और सभी धर्म के लिए समान सम्मान। यह बहुत जरूरी है कि बुनियादी शिक्षा की नयी पद्धति ग्रामीण तथा शहरी इलाकों में एक साथ शुरु की जाए। गांधी जी इस बात के लिए बहुत तत्पर थे कि बुनियादी शिक्षा के अच्छे प्रकार के स्कूल पहले गांव में स्थापित किए जाएं। यह व्यापक रूप से माना जाता है कि छठी योजना के अन्त तक व्यापक मौलिक शिक्षा (आयु वर्ग 4–14) का लक्ष्य निर्धारित करने के हर सम्भव प्रयास किए जाने चाहिए। निर्धारित अवधि में इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह भी जरूरी होगा कि अनौपचारिक बुनियादी शिक्षा को लागू किया जाए जिसमें अंशकालिक संस्थाएं, बहु-स्थलीय प्रवेश तथा उन्नति की परिवर्तनीय पद्धति शामिल होनी चाहिए।

उत्तर-बुनियादी शिक्षा

माध्यमिक स्तर पर उत्तर बुनियादी शिक्षा नवीं श्रेणी से+14 की आयु से शुरु होनी चाहिए और+17 की आयु तक जारी रहनी चाहिए। इसके अन्तिम दो वर्षों में ऐसी व्यावसायिक शिक्षा दी जानी चाहिए जो विविध प्रकार की हो और स्थानीय रोजगार के अवसर के अनुसार हो। किन्तु यह खेद की बात है कि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद ने माध्यमिक शिक्षा के+2 स्तर को बांट कर व्यावसायिक तथा शैक्षिक शिक्षा में अलग-अलग कर दिया है और बटवारा छात्रों की पसन्द के अनुसार किया जाता है। व्यावसायिक विषयों के छात्रों को अपना 50% समय तो व्यावहारिक कार्य को देना होगा और बाकी समय भाषा सीखने में, विज्ञान तथा गणित के अध्ययन में, समाज शास्त्र तथा साहित्य समेत मानविकी के विषयों को देना होगा। निश्चित रूप से यह एक उचित तथा लाभप्रद शिक्षा पद्धति है किन्तु राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् का यह विचार लगता है कि जो छात्र शैक्षिक विषय लेते है उनको व्यावसायिक विषयों में कोई भी समय लगाना नहीं होगा। यह निश्चय रूप से एक बड़ी गलती है जिसके कारण वर्तमान क्लास रूम की शिक्षा पद्धति जारी रहेगी और इस समय कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में प्रवेश की जो दौड़ लगी रहती है वह जारी रहेगी, इसलिए माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण की सभी बातें मात्र कल्पना रह जाएंगी। इसलिए यह अच्छा होगा कि विविध व्यावसायिक पाठ्यक्रम की केवल एक मुख्य व्यवस्था ही रह जाए जिसमें भाषा, विज्ञान, गणित, समाज शास्त्र तथा साहित्य के प्रारम्भिक अध्ययन की व्यवस्था हो। विभिन्न प्रदेशों में तकनीकी-आर्थिक जिला सर्वेक्षणों के बाद माध्यमिक स्कूलों के कक्षा 11 तथा 12 में व्यावसायिक तथा तकनीकी विषयों तथा विभिन्न पाठ्यक्रमों को सावधानी से बनाना होगा। माध्यमिक स्कूल के पहले 2 वर्षों में लाभकारी किस्म की सामान्य शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। यह शिक्षा समाज के भौतिक वातावरण तथा उसकी सामाजिक जरूरतों के अनुसार होगी। केवल मैट्रिक स्तर के पूरा होने पर भी सामान्य व्यावसायिक विषयों का चुनाव करना होगा। केवल इस स्तर पर छात्र इतना परिपक्व होगा कि वह इस बात का पक्का फैसला कर सके कि उसको किस प्रकार की जीविका का चुनाव करना होगा।

विश्वविद्यालय शिक्षा

आम तौर पर इस बात के बारे में सहमति है कि विश्वविद्यालय स्तर पर प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम तीन वर्ष का होना चाहिए। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने विश्वविद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा के महत्व पर जोर दिया था जिसमें कि उच्च शिक्षा से छात्र केवल 'सफेद पोश' कार्यों के लिए ही तैयार न किए जा सकें। निश्चय ही विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम इस प्रकार के बनाए जाने चाहिएं कि उनका सम्बन्ध विकास कार्यक्रमों से हो ताकि उच्च शिक्षा पर होने वाले खर्च की बड़ी मात्रा का उपयोग युवकों तथा युवतियों के राष्ट्रीय योजनाओं के अन्तर्गत विशिष्ट कामों के प्रशिक्षण के लिए किया जा सके। विश्वविद्यालयों तथा विकास परियोजनाओं के बीच इस प्रकार के निकट संबंधी बड़ी संख्या में शिक्षित बेरोजगारों की मौजूदा समस्या को हल कर सकते हैं और दूसरी ओर इस समस्या का सुझाव निकाल सकते हैं कि अनेक विकास योजनाएं इस कारण लागू नहीं की जा सकती हैं क्योंकि उनके लिए उचित रूप से प्रशिक्षित कर्मचारी उपलब्ध नहीं हैं। भारत जैसे गरीब देश में बड़ी मात्रा में धन इस काम में नहीं लग सकता है कि वह स्नातकोत्तर शिक्षा की व्यवस्था करे और अन्य देशों की जरूरतों को पूरा करे जिसके कारण इस देश में नियमित रूप से तथा बड़ी मात्रा में छात्र ऊन देशों को चले जाते हैं अथवा वह ऐसा करके उन युवकों को बेरोजगार रखें और उनको जीवन में निराश रखे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति विषयक संकल्प में यह कहा गया है की अंशकालिक तथा पत्राचार शिक्षा को वही दर्जा दिया जाना चाहिये जो कि पूर्णकालिक शिक्षा को दिया जाता है।"

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने ठीक ही कहा था कि "यदि विश्वविद्यालय शिक्षा में कोई महत्वपूर्ण सुधार करना है तो यह होना चाहिये परीक्षा में" प्राथमिक तथा माध्यमिक चरण की परीक्षा पद्धति के कारण छात्रों की भौतिक, मानसिक तथा नैतिक क्षमता पर घातक प्रभाव पड़ा है और इसके कारण शैक्षिक स्तर में गिरावट आई है, अनुशासन कम हुआ है और प्रमाण पत्रों, डिप्लोमा तथा डिग्रियाँ लेने के लिए तथा गलत तरीकों का व्यापक इस्तेमाल किया गया है। इसलिए यह महत्पूर्ण है कि परीक्षा की वर्तमान पद्धति में आमूल-चूल सुधार किया जाए। वास्तव में जिस बात की जरूरत है वह यह नहीं है कि परीक्षा पद्धति में सुधार किया जाए बल्कि यह कि शिक्षा की सम्पूर्ण पद्धति में महत्वपूर्ण सुधार किया जाए। यदि विभिन्न चरणों पर शिक्षा का उद्देश्य यह हो जाता है कि यह उत्पादी तथा सामाजिक दृष्टि से लाभपूर्ण कार्यों की ओर केन्द्रित हो और इसमें समाज की प्रत्यक्ष सेवा के कार्यक्रम शामिल किए जाएं तो उच्च कक्षाओं में उन्नति न केवल इस बात पर निर्भर करेगी कि व ॅ के अन्त में एक सम्पूर्ण परीक्षा में छात्रों का परिणाम कैसा रहता है बल्कि इस बात पर कि नित्यप्रति की उत्पादी तथा सह-पाठ्यचर्याओं के कामों में उनकी भागीदारी किस प्रकार की होती। इन कार्यों में खेल-कूद आदि तथा समाज सेवा भी शामिल है। छात्रों का सामान्य अनुशासन तथा

[शेष पृष्ठ 43 पर]

राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के लिए शिक्षक प्रशिक्षण का अनुस्थापन

—डा० बी० के० मट्टू

समस्या

यह एक सामान्योक्ति है कि शिक्षा सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन का सबसे कारगर साधन है। स्कूल से बाहर युवक (15–21 वर्ष आयु वर्ग) तथा 21 वर्ष से बड़े प्रौढ़ों का बड़ा भाग या तो अशिक्षित है अथवा अर्ध-शिक्षित है। साक्षरता का प्रतिशत जो 1947 में 14 था बढ़कर 1971 में केवल लगभग 30 प्रतिशत हुआ। 1971 की जनगणना के अनुसार, 15 वर्ष से अधिक आयु के अशिक्षितों की कुल संख्या लगभग दो करोड़ दस लाख थी। देश के सभी भागों में बड़ी संख्या में युवक या तो प्राथमिक स्कूलों में बिलकुल ही नहीं गए या उन्हें बहुत जल्दी छोड़ गए। ये बेरोजगार व्यक्ति अपने माता-पिताओं या परिवारों पर बोझ होते हैं और प्रायः समाज के व्यवस्थित जीवन के लिए खतरा बन जाते हैं। जनसंख्या में वृद्धि के साथ साथ उनकी संख्या में बढ़ोतरी हो जाती है और उद्योगों में कामगारों की कमी के कारण इसमें और अधिक वृद्धि हो जाती है।

अतः, उनकी शैक्षिक आवश्यकताएं विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में बहु-आयामों वाली हैं। "क्योंकि भारत की 80 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रह रही है, और उसका लगभग 75 प्रतिशत अपने जीविकोपार्जन के लिए कृषि पर निर्भर है और यह सकल राष्ट्रीय आय का 50% है, इसलिए स्वतंत्र भारत की विकास नीति स्वाभाविक रूप से ग्रामीण विकास पर केन्द्रित होती गई"। शिक्षा को सर्व सुलभ बनाने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि शिक्षक शिक्षा के लिए कई वैकल्पिक दृष्टिकोण तैयार किए जाएं और बड़ी संख्या में बच्चों, युवकों और प्रौढ़ों को जो कि हमारे समाज के कमजोर वर्गों से संबंधित हैं ग्रामीण विकास से जोड़ा जाए।

समस्या के प्रति दृष्टिकोण

शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए यह अत्यावश्यक है कि स्कूलों के अतिरिक्त परिवार, नियोक्ता, अभिजात वर्ग, समुदाय, ग्रामीण पर्यावरण जैसे एजेन्सियां भी पढ़ाई का अनुभव प्रदान करें। यह मानना पड़ेगा कि शिक्षा और शिक्षण में बढ़ने वालों के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक पर्यावरण पर ध्यान दिया जाए। परिणामस्वरूप, विभिन्न शैक्षिक स्तरों तथा आयुवर्गों के विभिन्न तरह के व्यक्तियों को इस कार्य को करने के लिए उन्हें अनुस्थापित करना पड़ेगा। शिक्षक प्रशिक्षण की शैक्षिक विषय-वस्तु को, इससे संबंधित व्यक्तियों की आवश्यकताओं, अभिरुचियों और परिस्थितियों से अन्वित करना आवश्यक है और ऐसे कार्यक्रम को ग्रामीण या शहरी समाज की सामाजिक तथा आर्थिक अन्दा (निवेश) के साथ उसे जोड़ना भी महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ है कि शिक्षक प्रशिक्षण की शैक्षिक विषय-वस्तु को सामाजिक परिवर्तन तथा आर्थिक विकास की योजनाओं की विषय-वस्तु के अनुरूप बनाया जाए। पाठ्यचर्या की विषय-वस्तु को प्रौढ़ आवश्यकताओं और साधनों से संबंधित किया जाना चाहिए। खाद्य उत्पादन, पानी की सप्लाई, कृषि सुधार, रोजगार कार्यक्रम, स्वतः रोजगार पैदा करने, छोटे पैमाने के उद्योग, सफाई इत्यादि जैसे योजनाओं पर विशेष ध्यान देना पड़ेगा।

प्रशिक्षण कार्यक्रम, साक्षरता सहित अनौपचारिक शिक्षा का मिला-जुला कार्यक्रम होना चाहिए।

विषय-वस्तु

प्रशिक्षण कार्यक्रम विभिन्न व्यक्तियों और समूहों की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए। (क) उपार्जन की क्षमता में सुधार के लिए व्यावसायिक क्षमताओं का विकास, (ख) सामान्य शिक्षा (स्वास्थ्य शिक्षा तथा परिवार नियोजन सहित); (ग) नागरिकता की शिक्षा, (घ) देश के विकास से संबंधित समस्याएं और लोगों की भूमिका के साथ-साथ सामाजिक तथा विकासशील कार्यक्रमों में वास्तव में उन्हें शामिल करना, (ङ) शारीरिक शिक्षा, खेल, मनोरंजन तथा भागी सांस्कृतिक गतिविधियां। यह स्पष्ट है कि कार्यक्रमों की विषय-वस्तु विस्तृत तथा कार्मात्मक होनी

चाहिए। प्रशिक्षण कार्यक्रम, भाग लेने वाले प्राथमिक वैज्ञानिक ज्ञान और सोचने के तरीके पर आधारित अपने चारों ओर के सामाजिक तथा पर्यावरणात्मक ढांचे को समझाने में सक्षम होनी चाहिए। इसे, अपने साथियों तथा अपने समाज के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोणों को प्रोत्साहन देना चाहिए। यह रोजगार से संबंधित होनी चाहिए और इसे उनके जीवन के ढंग में सुधार करना चाहिए। शिक्षा-शिक्षण प्रक्रिया में इतना महत्व ज्ञान या क्षमताओं के संकलन में नहीं है बल्कि इससे ज्यादा समस्या-समाधान और अपने चारों ओर के जीवन में सक्रिय भाग लेने के प्रति अभिरुचि और दृष्टिकोण का है।

पाठ्यचर्या

पर्यावरणात्मक परिस्थितियों तथा सीखने वालों की विशेषताओं दोनों में अंतर के अनुसार विषय वस्तु के चुनाव तथा पाठ्यचर्या के निर्माण के तरीके को विकेन्द्रीकृत और विविधिकृत किया जाए। शिक्षक प्रशिक्षण की पाठ्यचर्या यदि इसमें कोई सम्बद्धता रखनी है तो, जीवन परिस्थितियों और प्रौढ़ों के पर्यावरण के अनुरूप होनी चाहिए। आयोजना के लिए अपनाया जानेवाला तरीका और तैयारी अंतर-विषयक होनी चाहिए। पाठ्यचर्या की आयोजना एक या दो शिक्षाविदों और प्रशासकों के चिंतन पर आधारित न होकर कई लोगों, जिनमें समर्थ सीखने वाले भी शामिल है, के सुझावों के आधार पर होनी चाहिए। विषय-वस्तु सीधे समस्या वाले क्षेत्रों या आवश्यकता वाले क्षेत्रों से और प्रौढ़ शिक्षा में विशेषज्ञों के सुझावों में से ली जाए। यथार्थवादी होने के लिए पाठ्यचर्या में प्रौढ़ों की पृष्ठभूमि तथा उनकी आवश्यकताओं और विद्यमान साधनों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। भाग लेने वालों की बदलती हुई विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पाठ्यचर्या में लचीलापन होना चाहिए तथा विभिन्न विषय उपलब्ध करने के योग्य भी होनी चाहिए। यह उल्लेखनीय है कि देश भर में सभी प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के लिए एक ही पाठ्यचर्या नहीं हो सकती क्योंकि आवश्यकताएं, परिस्थितियां, वातावरण इत्यादि, एक समूह और दूसरे समूह, समुदाय से समुदाय और क्षेत्र से क्षेत्र में अलग-अलग होती हैं। विभिन्न सीखने वालों के विभिन्न समूहों की विशेष आवश्यकताओं पर जोर देने से अपने आप ही एक सी और सभी के मतलब की बातें सामने आ जाती है। राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के लिए शिक्षक शिक्षा की विषय-वस्तु को तैयार करने में सामान्य को विशेष में समेकित करने का दृष्टिकोण नई महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है।

अध्यापन सीखने की प्रणालियां

शिक्षक प्रशिक्षु को समाज में वास्तविक कार्य परिस्थितियों के माध्यम से जटिल समाजार्थिक समस्याओं से परिचित कराया जा सकता है। यह विश्वास किया जाता है कि केवल व्यावहारिक प्रशिक्षण के माध्यम से ही वह पूरी जानकारी (अंतर्दृष्टि) और संवेदनशीलता का विकास कर सकता है। केवल तब ही वह विभिन्न समाजार्थिक समूहों के प्रौढ़ों से व्यवहार करने के लिए व्यावहारिक कुशलताओं का विकास कर सकता है। कार्य परिस्थिति की सहायता से सारे ज्ञान को अधिक कारगर ढंग से एकीकृत किया जा सकता है। उदाहरणार्थ पर्यावरणीय अध्ययनों में झील, नदी, जंगल पहाड़ आदि से वनस्पति और जीव-जन्तुओं को एकत्र करना, उन लोगों को सहायता प्राप्त करना और कन्धे से कन्धा मिला कर कार्य करना जो इन कार्यों को आजीविका के रुप में कर रहे हैं, स्वतः रोजगार प्राप्त कारीगरों, मैकेनिकों, बढ़ईयों इत्यादि के साथ कार्य करना, प्रौढ़ों और स्कूल छोड़ने वालों के लिए अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम शुरू करना, अपने इर्द-गिर्द की सफाई जैसे कार्यों की कार्य परिस्थितियों को लिया जा सकता है। कार्यों के चुनाव में यह नहीं भूलना चाहिए कि शिक्षक प्रशिक्षु प्रौढ़ लोगों, विशेषकर जो निकट समुदाय में उत्पादन कार्यों को आजीविका के रूप में करते हैं, के निकट संबंधों में आएं।

स्कूल न जाने वाले युवकों और प्रौढ़ों को अनौपचारिक शिक्षा देने के लिए उसे तैयार करने में इस तरह के अनुभव शायद आदर्श हैं। प्रत्येक समस्या पर विचार करते हुए साक्षरता और अंकज्ञान में शिक्षा को भी अन्तर्ग्रन्थित किया जाए। उद्देश्य यह है कि समस्या को अंतर्विषयक कोण से देखा जाए और तकनीकी वैज्ञानिक समाज-आर्थिक तथा गणितीय सिद्धान्तो के अध्यापन में समाभिरुपता के नियम का प्रयोग किया गया। प्रौढ़ों और युवकों को अपने ज्ञान को समस्यायों के समाधान, अपने लाभ के साथ-साथ समाज के लाभ के लिए, में प्रयोग करने के लिए तैयार करने का भी उद्देश्य शामिल है।

मूल्यांकन

राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा के लिए शिक्षक प्रशिक्षण के किसी अनुस्थापन कार्यक्रम के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए मूल्यांकन की सुदृढ़ प्रणाली तैयार करनी पड़ेगी। ग्रेड अर्थात्, एम (योग्यता), ए०बी०सी० डी० तथा ई० और (फेल के लिए) फी देने के लिए प्रशिक्षण संस्थाएं भी 7 बिन्दु वाली वि०अनु० आ० प्रणाली को अपनाए। यह एक सतत प्रक्रिया होनी चाहिए।

यदि विषय-वस्तु को कार्यात्मक रुप से व्यक्तियों और जटिल समाज जिसमें हम रहते हैं की बढ़ौती हुई आवश्यकताओं के अनुरूप बनाना है तो हम एक रुपरेखा या पाठ्यचर्या नहीं रख सकते जो कि हर समय के लिए सही हो। अध्ययनों के कार्यक्रमों की लगातार समीक्षा की आवश्यकता होगी ताकि यह चारों ओर के संसार के परिवर्तनों पर आधारित रहें। इसमें प्रौढ़ों के अध्यापन और शिक्षा की सारी प्रक्रिया के मूल्यांकन की परिकल्पना है।

दृष्टिकोण के लचीलेपन और उद्देश्यों, पाठ्यचर्या की विषय-वस्तु की उपयुक्तता तथा इसको पढ़ाने की प्रणाली, प्रत्येक अध्यापन यूनिट का कार्यकाल, भाग लेने वालों की आवश्यकताएं, अध्यापन और शिक्षा सामग्री की उपलब्धियां और प्रभावशालीनता, के साथ-साथ अध्यापकों की सामग्रियों को प्रयोग में लाने की योग्यता तथा कार्यक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति में उनके योगदान के बारे में सूचना प्राप्त करनी होगी ।

सामुदायिक केन्द्रों की स्थापना

आन्तरिक और अंतर-एजेंसी समन्वय तथा निचले स्तर पर लोगों की पहल के बिना प्रौढ़ शिक्षा की समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता । आज ग्रामीण क्षेत्रों में किए गए भारी निवेश से अधिकतम परिणाम नहीं मिल रहे क्योंकि विभिन्न कार्यक्रमों की आपसे सहायता की क्षमताओं के उपयोग की कमी है । महात्मा गांधी और गुरुदेव टैगोर का लोगों में आत्म-निर्भरता पैदा करना मुख्य उद्देश्य था और कार्यक्रम को शक्ति लोगों को अपनी शक्ति से ली गई थी । राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के लिए शिक्षक शिक्षा को आंतरिक रूप से गतिशील बनाने के लिए शिक्षकों और शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए सामुदायिक केन्द्रों की स्थापना की तत्काल आवश्यकता है । सामुदायिक केन्द्र स्थापित करने की संभावना की सतर्कता से जांच होनी चाहिए । यह एक जिला केन्द्र या क्षेत्रीय केन्द्र होना चाहिए । इन केन्द्रों का केवल शहरी क्षेत्रों में ही झुरमुट नहीं होना चाहिए । केन्द्रों की स्थापना ग्रामीण तथा जन-जातीय क्षेत्रों में भी होनी चाहिए । इनको, सामुदायिक विकास कार्यक्रम के लिए प्रौढ़ शिक्षा के प्रमुख केन्द्र के रूप में कार्य करना है । इन केन्द्रों के माध्यम से प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों और ग्रामीण विकास के लिए शिक्षकों का अनुस्थापन प्रभावी रूप से किया जा सकता है । प्राथमिक ग्रामीण समस्याओं के प्रति हमारे शिक्षकों को उन्मुख करने में ये केन्द्र नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं । संक्षेप में, राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के लिए शिक्षक प्रशिक्षण के अनुस्थापन को समेकित सामुदायिक विकास से जोड़ा जाना है ।

अनुसंधान और प्रयोग

स्कूल न जाने वाले युवक (15-21 आयु वर्ग) और प्रौढ़ विशेषकर 21-35 वर्ष आयु वर्ग के क्षेत्र में अनुसंधान और प्रयोग की तत्काल आवश्यकता है । दुर्भाग्य से स्वतंत्रता-पूर्व काल में यह एक उपेक्षित क्षेत्र रहा है । जैसे कि प्रो० जे० पी० नाईक ने सही कहा है "संविधान ने सभी युवकों को मताधिकार तो दिया परन्तु प्रौढ़ शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की जो कि इसको और अधिक अर्थपूर्ण बनाता" दूसरी तरफ पारम्परिक रूप अपनाया कि हम बच्चों को सर्वसुलभ प्राथमिक शिक्षा थोड़े समय (1950—60) में उपलब्ध कराये और प्रौढ़ शिक्षा की समस्या अपने आप आने वाले वर्षों में सुलझ जाएगी । इससे स्वतंत्रता-पूर्व काल में प्रौढ़ शिक्षा की उपेक्षा हुई, और जैसे कि प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के कार्यान्वियन में भी देर हुई, हम वास्तव में चूक गए हैं । साक्षरता का प्रतिशत जो 1947 में 14 था वह 1971 में बढ़ कर 30 हो गया । स्कूल से बाहर वाले युवक तथा प्रौढ़ों की समस्या का विस्तृत और अनुभाविक आधार पर अध्ययन होना चाहिए ताकि आवश्यक उपाय किए जा सकें । शिक्षण/शिक्षा सामग्री के उत्पादन तथा प्रणालियों के लिए नियम-पुस्तक तैयार करने की आवश्यकता है ।

पाठ्यचर्या के आधार पर, प्रवेशिकाओं, अनुसरण पुस्तकों, शिक्षक गाईडों इत्यादि का उत्पादन की अति आवश्यकता है विशेषकर ऐसे क्षेत्रों में जहां स्वदेशी क्षमताएं पर्याप्त नहीं है जैसे कि बिहार, जम्मू तथा काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश आदि । राष्ट्रीय महत्व के विषयों का चुनाव (उदाहरणार्थ मां और बच्चे की देखभाल, पोषण, परिवार नियोजन, लोकतंत्र, भारत का इतिहास और भगोल आदि) और इन विषयों में विषय शीटों, दृश्य-श्रव्यों इत्यादि का उत्पादन भी उतना ही महत्वपूर्ण है । ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिए उपयुक्त तकनीकों के विकास की तत्काल आवश्यकता है ।

निष्कर्ष

राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के लिए शिक्षक प्रशिक्षण का अनुस्थापन आवश्यक है । किसी भी शैक्षिक सुधार की सफलता शिक्षक की योग्यता पर निर्भर करता है जो कि बड़ी सीमा तक शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम की कोटि पर निर्भर करता है । इससे शिक्षक प्रशिक्षण के सभी पहलुओं में मूलभूत परिवर्तन की तुरन्त आवश्यकता है । उद्देश्यों, ढांचा, पाठ्यचर्या तरीके, प्रणाली और साधन, मूल्यांकन, तकनीकों, स्टाफ प्रणाली, प्रशासनिक कार्यप्रणाली आदि को प्रौढ़ समुदाय की आवश्यकताओं और राष्ट्रीय विकास से अनुरूप होना चाहिए । महात्मा गांधी ने कहा था कि "शिक्षा से साम्राज्यवादी शोषकों की आवश्यकताओं को पूरा न किया जाकर गरीब ग्रामीणों की आवश्यकताओं को पूरा किया जाना चाहिए" ।

● ● ●

शिक्षा तथा समाज कल्याण मन्त्रालय की गतविधियां—संक्षेप में

डा० इवान इलिच का दौरा

अन्तर सांस्कृतिक प्रलेखन केन्द्र, कारनेवेस, मेक्सिको के निदेशक डा० इवान इलिच, भारत में, भारत के अतिथि के रूप में 2 जनवरी, 1978 को भारत पधारे। उन्होंने लगभग 6 सप्ताह तक भारत का दौरा किया।

भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद ने, यू० एन० विश्वविद्यालय, टोकियो के सहयोग से, नई दिल्ली में 23 और 24 फरवरी को, एक क्षेत्रीय परामर्शदात्री बैठक का आयोजन किया। उक्त बैठक में अफगानिस्तान, बंगला देश, ईरान, पाकिस्तान, नेपाल तथा श्रीलंका के प्रतिनिधि मण्डलों ने भाग लिया। उक्त बैठक का उद्घाटन 23 फरवरी, 1978 को शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्री डा० प्रताप चन्द्र चन्द्र ने किया।

शैक्षिक प्रोद्योगिकी परियोजना

शैक्षिक प्रोद्योगिकी के लिए केन्द्र

केन्द्र में, दिसम्बर 1977 में, बी० एड०, एम० एड० तथा शिक्षा में डिप्लोमा पाठ्यक्रमों हेतु, शैक्षिक प्रौद्योगिकी पाठ्यचर्या के लिए महत्वपूर्ण रूपरेखाओं का विकास करने की दृष्टि से एक कार्यशाला आयोजित की गई थी।

ऐसे क्षेत्रों में—जहां दूरदर्शन ने, शैक्षिक दूरदर्शन कार्यक्रम शुरू कर दिए हैं या शुरू करने का उसका प्रस्ताव है—प्रशिक्षित शैक्षिक दूरदर्शन-कथानक-लेखकों का एक पूल निर्माण करने से संबंधित चरणबद्ध कार्यक्रम के एक अंग के रूप में, केन्द्र ने, नवम्बर, दिसम्बर 1977 में, शैक्षिक दूरदर्शन कथानक लेखन में एक 8-सप्ताह का गहन प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित किया। इस पाठ्यक्रम में, पहली दो कार्यशालाओं से लिए गए 19 भाग लेने वाले कुछ सृजनात्मक/रचनात्मक लेखकों, तथा दिल्ली, बम्बई, तथा बेस प्रोडक्शन केन्द्र हैदराबाद में स्थित शैक्षिक दूरदर्शन के लिए पहले ही लिख रहे अन्य लेखकों ने भाग लिया।

केन्द्र द्वारा, बच्चों के खेलों के संकलन हेतु, गठित कार्यकारी दल की, दिल्ली के पूर्व प्राथमिक तथा प्राथमिक स्कूल के बच्चों द्वारा खेले गए खेलों का संकलन करने के लिए, फरवरी 1978 को एक बैठक हुई। 60 से भी अधिक खेलों का संकलन किया गया है।

राज्यों में शैक्षिक प्रौद्योगिकी कार्यक्रम

नागालैण्ड, मणीपुर तथा मेघालय में शैक्षिक प्रौद्योगिकी सैल स्थापित कर दिए गए हैं और अब देश में ऐसे सैलों की संख्या 16 हो गई है।

शैक्षिक दूरदर्शन सैल, गुजरात

(i) इस सैल ने बच्चों को खल संबंधी सामग्री पर एक सेमिनार आयोजित किया। इस सेमिनार में यह निर्णय किया गया कि राज्य में उपलब्ध खेल सामग्री का सर्वेक्षण किया जाना चाहिए और स्थानीय तौर पर उपलब्ध होने वाली कम कीमत/महत्व की खेल सामग्री में पाई जाने वाली शैक्षिक-क्षमता का विशेष रूप में उल्लेख किया जाना चाहिए।

(ii) रेडियो शिक्षा/पाठों के लिए सहायक सामग्री तैयार करके उसे प्रकाशित किया और छठी कक्षा में अंग्रजी पढ़ाने वाले 10,000 अध्यापकों को भेजा।

शैक्षिक दूरदर्शन, महाराष्ट्र

(i) बम्बई के नगर निगम स्कूलों के प्राथमिक शिक्षकों के लाभ हेतु 12 विशेष कार्यक्रम प्रसारित किए गए। बम्बई के शैक्षिक दूरदर्शन सैल के कथानक-लेखकों ने हिन्दी फिल्मो की मराठी में टीका लिखीं।

(ii) राज्य श्रव्य-दृश्य शिक्षा संस्थान के सहयोग से 35 एम० एम० फिल्म स्ट्रिप के उत्पादन का कार्य प्रारंभ किया गया था। तिमाही के दौरान, विभिन्न स्कूली विषयों से संबंधित 20 फिल्म पट्टियां तैयार की गई थी। ये फिल्म पट्टियां राज्य की शक्षिक संस्थाओं को मामूली कीमत पर भेजी जाती हैं।

मंत्रालय ने प्राथमिकताओं के क्षेत्रों को निर्धारित करने, विस्तृत योजनाओं को तैयार करने और वित्तीय कठिनाईयों का उल्लेख करने की दृष्टि से सचिव की अध्यक्षता में शैक्षिक प्रौद्योगिकी से संबंधित एक कार्य दल का गठन किया है। सूचना व प्रसारण मंत्रालय, दूरदर्शन, आकाशवाणी, समाज कल्याण विभाग, राज्य सरकारों के प्रतिनिधि तथा प्रेस और मंत्रालय के कुछ सदस्यगण कार्य दल में सम्मिलित हैं। कार्य दल की पहली बैठक 9 फरवरी, 1978 को हुई थी। निम्नलिखित को सम्मिलित करने के लिए कार्य दलने तीन उप-दलों की स्थापना की :—

(i) शैक्षिक प्रौद्योगिकी के लिए कार्यक्रम बनाना।

(ii) संगठनों के कार्यों का एकीकरण।

(iii) समन्वय, प्रशासन और वित्त।

उप-दल मार्च, 1978 के अंत तक अपनी रिपोर्टें प्रस्तुत करेंगे।

शिक्षक दिवस, 1977

शिक्षक हमारी सभ्यता के केन्द्र-विन्दु हैं। इसकी मान्यता में, राष्ट्रीय अध्यापक कल्याण प्रतिष्ठान को 25 जून, 1962 को हुई पहली बैठक में 5 सितम्बर, को जो डा० राधाकृष्णन् का जन्म दिन था, शिक्षक दिवस मनाने का निर्णय किया गया था। तारीख के बारे में निर्णय लेते समय प्रतिष्ठान इस विचार से प्रभावित था कि डा० राधाकृष्णन् उस समय के अग्रगण्य शिक्षकों में से एक थे तथा भारत के राष्ट्रपति के उन्नत पद पर पहुंच गए थे। तदनुसार, प्रथम शिक्षक दिवस 5 सितम्बर, 1962 को मनाया गया था। 5 सितम्बर, 1977 को सोलहवां शिक्षक दिवस मनाया गया। इस अवसर पर राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री और केन्द्रीय शिक्षा मंत्री से संदेश प्राप्त हुए।

केन्द्र में अध्यापक दिवस मनाने का एक अन्य कार्यक्रम तैयार किया गया था। यह कार्यक्रम राज्यों एवं संघ क्षेत्रों को उनके अपने स्तर पर मनाने के लिए मार्गदर्शी रूप रेखाओं के तौर पर भेज दिया गया था। व्यापक प्रकार के लिए राज्यों आदि में इस अवसर पर प्रकाशित पोस्टर एवं अन्य साहित्य का वितरण भी किया गया था। शिक्षा एवं समाज कल्याण मंत्रालय के सचिव श्री० पी० सबानायगम ने मुख्य समाचार पत्रों से अपील की थी कि वे राष्ट्रीय शिक्षक कल्याण प्रतिष्ठान के लिए उदारता से दान देने हेतु जनता से की जाने वाली अपीलों को समाचार पत्रों को समाचार पत्रों में निःशुल्क स्थान दें। इस प्रयोजन हेतु अनेक समाचार पत्रों ने निःशुल्क स्थान दिया।

इस अवसर पर अखिल भारतीय रेडियो और दूरदर्शन ने विशेष कार्यक्रमों, साक्षात्कार आदि का आयोजन किया। 1977 के लिए राष्ट्रीय शिक्षक पुरस्कारों की घोषणा भी की गई। 5 सितम्बर को एन० सी० सी० के छात्रों और गाईड तथा स्काउट लड़कियों द्वारा चन्दा एकत्र करने का विशेष अभियान चलाया गया।

राज्यों में

देश भर में शिक्षक दिवस जोर शोर से मनाया गया। राज्यों में किए गए समारोहों का सारांश निम्नलिखित अनुच्छेदों में वर्णित है :

अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह में यह समारोह प्रभात फेरियों के रूप में आरम्भ किया गया। विद्यालयों में सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये गये और राष्ट्र निर्माण में अध्यापकों को महत्वपूर्ण भूमिका के संबंध में विचार-गोष्ठियां और वाद-विवाद आयोजित किए गए।

तमिल नाडु ने शिक्षक दिवस के झण्डों को बेचकर 5 लाख रुपये एकत्र करने का लक्ष्य रखा था। सिनेमा थिएटर के मालिकों ने भी इस निधि में एक शो की राशि दान करके अपना सहयोग दिया। कुछ समाचार पत्रों में पूरे एक पृष्ठ का परिशिष्ट प्रकाशित किया गया था। इस दिवस को उपयुक्त ढंग से मनाने के लिए जिला स्तर पर प्रतिष्ठित व्यक्तियों की स्थानीय समितियां बनाई गई थीं। तमिल नाडु के सेवानिवृत एवं लब्ध प्रतिष्ठित अध्यापकों को पुरस्कार देकर उनका सम्मान किया।

हरियाणा राज्य शिक्षक दिवस 5 सितम्बर, 1977 को नहीं मना सका क्योंकि अगस्त-सितम्बर के महीनों के दौरान वहां अप्रत्यशित बाढ़े आई हुई थीं। अतः औपचारिक रूप से यह दिवस 17 अक्तूबर, 1977 को मनाया गया था। इस अवसर पर एक विवरण पुस्तिका प्रकाशित की गई थी जिसमें राष्ट्रीय शिक्षक कल्याण प्रतिष्ठान को राज्य एकक द्वारा एकत्रित राशि का विवरण दिया गया था।

इस समारोह में केन्द्रीय विद्यालय संगठन ने भी भाग लिया और बहुत से केन्द्रीय स्कूलों से समारोहों की रिपोर्ट प्राप्त हुई हैं।

सारे राज्य में यह दिन बड़े ही उत्साहपूर्वक मनाया गया, उत्तर प्रदेश सरकार से इस विषय में रिपोर्ट प्राप्त हुई हैं। लक्षित 5 लाख की राशि एकत्र करने के लिए विभिन्न कीमतों की झंडियां बेची गई थीं। सांस्कृतिक संगठनों ने अध्यापक दिवस से सम्बन्धित सभी स्तरों पर विशेष कार्यक्रम आयोजित किए। थियेटर मालिकों ने अध्यापक कल्याण निधि में वृद्धि करने के लिए सहायता शो आयोजित किए और

शैक्षणिक संस्थाओं ने इस उपलक्ष्य में बैठकें, गोष्ठियां, और बहस आयोजित कीं। भारी मात्रा में वितरण करने के लिए 'नवज्योति पत्रिका' का एक विशेष संस्करण प्रकाशित किया गया।

त्रिपुरा में मुख्य मंत्री और शिक्षा मंत्री ने इस अवसर पर जनता के लिये आकाशवाणी, अगरतला से भाषण दिया। कुछ वृद्ध और ख्याति प्राप्त अध्यापकों का सम्मान किया गया और सांस्कृतिक कार्यक्रम, बहस और गोष्ठियां आयोजित की गई।

राष्ट्रीय अध्यापक कल्याण प्रतिष्ठान की महाराष्ट्र यूनिट ने इस दिन को उपयुक्त ढंग से मनाने के लिये विशेष अनुदेश जारी किए। यह दिन किस तरह से मनाया जाना चाहिए इसका उल्लेख करते हुए एक विशेष पुस्तिका वितरित की गई थी। ग्राम स्तर पर भी कार्यक्रम आयोजित किए गए थे। चंदे की लक्षित राशि को बढ़ाने के लिये विभिन्न रंग और मूल्यों के बैज और झंडियां बेची गई थीं।

पंजाब में राज्य शिक्षा मंत्री श्री सुखमिन्दर सिंह की अध्यक्षता में एक राज्य स्तर का कार्यक्रम फिरोजपुर में आयोजित किया गया था। एक बैठक में समाज के प्रति अध्यापकों की सेवाओं की विशेष सराहना की गई। वर्ष 1976 के लिये राज्य पुरस्कार हेतु चुने गए अध्यापकों को योग्यता प्रमाणपत्र और प्रत्येक को 500 रुपए नकद का पुरस्कार दिया गया।

पांडिचेरी में भी समारोह मनाए गए थे जहां इन समारोह की देखरेख के लिये मुख्य मंत्री श्री एस० रामस्वामी की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई थी।

ग्रामीण उच्च शिक्षा

13-3-1978 तक की तिमाही के दौरान वेतन, वजीफे एवं अन्य फुटकर खर्च आदि पर आवर्ती व्यय के केन्द्रीय हिस्से के रूप में श्री रामकृष्ण मिशन विद्यालय ग्रामीण संस्थान, कोयम्बतुर को कुल 45000 की केन्द्रीय अनुदान दिया गया।

शास्त्री भारत कनाडा संस्थान

कनाडा में संस्थापित शास्त्री भारत कनाडा संस्थान को, जोकि एक स्वायत निकाय है, भारत में इसके कार्यकलापों के लिए 14.50 लाख रु० की राशि सहायता अनुदान के रूप में दी गई।

दिसम्बर 1977 से फरवरी 1978 की अवधि के दौरान किया गया व्यय

संस्था का नाम	योजनेतर रु०	योजनागत रु०
दिसम्बर, 1977		
1. जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली	5,61,350.68	..
2. बाल हितकारी समिति, कोटा, राजस्थान	..	40,000.00
जनवरी, 1978		
1. भारतीय विश्वविद्यालय संघ	22,500.00	63,280.45
2. गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद	25,44,000.00	54,309.65
3. जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली	3,51,000.00	..
4. डा० जाकिर हुसैन मैमोरियल कालेज, नई दिल्ली	37,500.00	..
फरवरी, 1978		
1. श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केन्द्र, पांडिचेरी	4,00,000.00	..
2. काशी विद्यापीठ, वाराणसी	9,00,000.00	..
3. गांधीग्राम ग्रामीण संस्थान, गांधीग्राम	5,28,000.00	..
4. तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना।	..	50,000.00

विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों के शिक्षकों के वेतन क पुनरीक्षण

के लिए राज्य सरकारों को संस्वीकृत अनुदान	लाख रु०
1. महाराष्ट्र सरकार	48.00
2. उड़ीसा सरकार	100.00
3. हरियाणा सरकार	40.00
4. हिमाचल प्रदेश सरकार . . .	30.00
5. मेघालय सरकार	20.00
6. त्रिपुरा सरकार	20.00
7. पश्चिमी बंगाल सरकार . . .	150.00

भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली

भा०ऐ०अ०प० के विकास एवं रख-रखाव के लिए भारत सरकार ने 1977-78 के लिए क्रमश: 20,00,000 रु० और 5,41,000 रु० संस्वीकृत किए हैं।

अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद्

अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् (अ० भा० त० शि० परि०) की 24वीं बैठक केन्द्रीय शिक्षा मंत्री, डा० प्रताप चन्द्र चन्द्र की अध्यक्षता में 17-2-1978 को हुई थी।

परिषद् की प्रमुख सिफारिशें नीचे दी गई हैं :—

1. शिल्पी स्तर से उत्तर-स्नातक स्तर तक तकनीकी शिक्षा की योजना और व्यवस्था करने के लिए एक एकल एजेन्सी की स्थापना करना।
2. तकनीकी संस्थाओं का वास्तविक मूल्यांकन करने के लिए एक मूल्यांकन मशीनरी की स्थापना करना।
3. आय कर के प्रयोजन के लिए तकनीकी शिक्षा पर उद्योग के खर्च की कटौती।
4. देश की तकनीकी जनशक्ति सम्बन्धी आवश्यकताओं के मूल्यांकन के लिए उपयुक्त मशीनरी की स्थापना करना।
5. संस्थाओं के लिए प्रत्यक्ष रूप से अनुमोदित योजनाओं हेतु केन्द्रीय सरकार के भाग को उपलब्ध करने की प्रणाली पुन: स्थापित करना।

परिषद् की सिफारिशों पर कार्यान्वयन के लिए राज्य सरकारों और केन्द्रीय सरकार के अन्य विभागों/अभिकरणों के परामर्श से विचार किया जा रहा है।

'औद्योगिक ट्राइबालोजी, मशीन-गति विज्ञान और अनुरक्षण इंजिनीयरी' सम्बन्धी केन्द्र

भारत सरकार और नार्वे सरकार ने, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली में "औद्योगिक ट्राइबालोजी, मशीन-गति-विज्ञान और अनुरक्षण इंजीनियरी" के सम्बन्ध में एक केन्द्र स्थापित करने के लिए भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली और ट्रोनाधियम संस्थान के बीच सहयोग के लिए एक करार किया है।

दोनों सरकारों के बीच करार पर नवम्बर 1977 में हस्ताक्षर किए गए थे। भारत की ओर से शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय में अपर सचिव श्री ए० एस० गिल और नार्वे की ओर से वहां के राजदूत महामहिम पी० ई० आर० गुलोवलन ने हस्ताक्षर किए।

नार्वे के साथ सहयोग की अवधि 1977-78 से 3 वर्ष तक होगी। नार्वे पक्ष परामर्श सेवाओं, नार्वे में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कार्मिकों के प्रशिक्षण और परियोजना के कार्यान्वयन के लिए अपेक्षित उपस्कर और सामग्री की खरीद, बीमा और परिवहन से सम्बन्धित खर्च के लिए एन० क्र० 13000000 की वित्तीय सहायता प्रदान करेगा।

भारतीय पक्ष परियोजना के प्रशासन और आवश्यक निधियां, शैक्षिक तथा व्यावसायिक जनशक्ति तथा परियोजना के सफल कार्यान्वयन के लिए अपेक्षित सभी अतिरिक्त साधन, सुविधाएं और सेवाएं प्रदान करने के लिए उत्तरदायी होगा।

दोनों देशों के बीच विद्यमान सौहार्दपूर्ण और मित्रतापूर्ण सम्बन्धों को सुदृढ़ करने और वैज्ञानिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों में विशेषकर उच्च तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में परस्पर लाभप्रद सहयोग को बढ़ाने की दिशा में यह करार एक और महत्वपूर्ण कदम होगा।

सांस्कृतिक प्रतिनिधि मण्डल

तकनीकी संस्थान प्रतिष्ठान, ईराक के अध्यक्ष डा० हासिम मोहम्मद सईद की अध्यक्षता में छ: सदस्यीय ईराकी प्रतिनिधिमण्डल ने वर्ष 1976-77 के लिए भारत-ईराक सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम के अन्तर्गत 8–23 दिसम्बर, 1977 तक भारत का दौरा किया। प्रतिनिधिमण्डल ने तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में दोनों देशों के बीच सहयोग बढ़ाने के उद्देश्य से भारत में अपने प्रवास के दौरान उन्होंने जिन विभिन्न संस्थाओं का दौरा किया उनके प्राधिकारियों और मंत्रालय के सम्बन्धित अधिकारियों के साथ विचार-विमर्श किया।

बल्गारियाई प्रतिनिधि मण्डल

उच्चतर मैकेनिकल और इलैक्ट्रीकल इंजीनियरी संस्थान, सोफिया में प्रोफेसर और "स्ट्रैन्थ आफ मैटिरियल्स" पीठ के अध्यक्ष प्रो० पीटर एल० जनेव ने वर्ष 1977-78 के लिए भारत-बल्गारियाई सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम के अन्तर्गत 18 जनवरी से 14 फरवरी, 1978 तक इंजीनियरी और प्रौद्योगिकी इत्यादि में अनुभव के आदान-प्रदान और सम्पर्क स्थापित करने के लिए भारत का दौरा किया। भारत में अपने निवास के दौरान मंत्रालय के सम्बन्धित अधिकारियों और उन विभिन्न संस्थाओं के प्राधिकारियों के साथ भी विचार-विमर्श किया जिसका उन्होंने दौरा किया था।

भाषाएं

हिन्दी की प्रगति के लिए स्वैच्छिक हिन्दी संगठनों को वित्तीय सहायता

तीन माह की अवधि के लिए, विभिन्न स्वैच्छिक हिन्दी संगठनों को हिन्दी की प्रगति के लिए 5.56 लाख रुपये के अनुदान स्वीकृत किए गए हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा के हिन्दी विश्वविद्यालय का एक राष्ट्रीय पुस्तकालय के रूप में विकास

उपरोक्त योजना के अंतर्गत, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के भवनों के निर्माणार्थ तीन लाख रुपये की धनराशि का अनुदान स्वीकार किया गया है।

अहिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी माध्यम के कालेजों को अनुदान

श्री हिन्दी शिक्षण संघ, बैंगलोर को, 1976-77 के दौरान श्री मंगोलाल गोटवट हिन्दी जूनियर कालेज, बंगलौर द्वारा किए गए घाटे को पूरा करने के लिए 15,000 रुपये की धनराशि का अनुदान मंजूर किया गया है।

केन्द्रीय प्रायोजित योजना—अहिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी शिक्षकों की नियुक्ति

विभिन्न अहिन्दी भाषी राज्यों को अपने-अपने स्कूलों में हिन्दी शिक्षकों की नियुक्ति के लिए 20.59 लाख रुपये के अनुदान स्वीकार किए गए हैं।

हिन्दी तथा क्षेत्रीय भाषाओं में विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों का प्रकाशन

हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों के प्रकाशन के लिए योजना में भाग लेने वाली राज्य सरकारों द्वारा गठित हिन्दी ग्रन्थ अकादमियों तथा विभिन्न पुस्तक प्रकाशन बोर्डों के निदेशकों का सम्मेलन हिन्दी तथा क्षेत्रीय भाषाओं में विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों के प्रकाशन से संबंधित कार्य के प्रगति पर विचार करने हेतु 24 जनवरी, 1978 को हुआ था।

उर्दू पुस्तक प्रकाशन

उर्दू पुस्तक प्रकाशन की योजना को तरक्की उर्दू बोर्ड के मार्गदर्शन में कार्यान्वित किया जाता है। बोर्ड 21 दिसम्बर, 1977 को पुनर्गठित किया गया था। समीक्षाधीन अवधि के दौरान 7 और पुस्तकें प्रकाशित की गई थीं। इस योजना के अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तकों की कुल संख्या 124 हो गई है। इस अवधि के दौरान 53,292.70 रुपये तक की पुस्तकों का विक्रय हुआ था। उर्दू तरक्की ब्यूरो ने, जो उर्दू तरक्की बोर्ड के कार्यालय के रूप में कार्य करता है, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा 11 से 20 फरवरी, 1978 तक नई दिल्ली में आयोजित तीसरे विश्व पुस्तक मेले में भाग लिया।

सिन्धी पुस्तक प्रकाशन

सिन्धी पुस्तकों के कार्यक्रम का मार्गदर्शन करने के लिए गठित की गई सिन्धी विद्वानों की सलाहकार समिति ने अपनी तीसरी बैठक 23 दिसम्बर, 1977 को आयोजित की थी। समिति द्वारा अपनी दूसरी बैठक में की गई सिफारिश के अनुसरण में साहित्यिक पुस्तकों के लिए सिन्धी लेखकों को पांच पुरस्कार प्रदान करने की योजना वर्ष 1978-79 से घोषित की गई है। इस योजना का उद्देश्य सिन्धी लेखकों के लिए प्रोत्साहन का वातावरण उत्पन्न करना है।

पुस्तक प्रोन्नति

डब्ल्यू० आई०पी०ओ० की समन्वय समिति, जो एक विशिष्ट अभिकरण है, की बैठक 26 सितम्बर से 4 अक्टूबर 1977 तक जेनेवा में हुई। इस मंत्रालय में संयुक्त शिक्षा सलाहकार, डा० डी० एन० मिश्र ने इस बैठक में भाग लिया। भारत पहली बार समन्वय समिति का अध्यक्ष चुना गया।

इस मंत्रालय में निदशक श्री जी० एस० एडविन ने साहित्यिक संरक्षण और कलात्मक कार्यो के लिए पेरिस में 28 नवम्बर से 6 दिसम्बर, 1977 तक हुए बर्नी संघ के कार्यकारिणी समिति की संयक्त बैठक में तथा जेनेवा में 7 से 9 दिसम्बर 1977 तक हुए रोम सम्मेलन की अन्तरराजकीय समिति की बैठक में भाग लिया।

भारत सरकार के निमंत्रण पर विश्व बुद्धिजीवी सम्पत्ति संगठन, जो संयुक्त राष्ट्र का एक विशिष्ट अभिकरण है, के महानिदेशक, डा० अरपद बोगोस ने 8 से 11 जनवरी 1977 तक भारत का दौरा किया। महानिदेशक के रूप में उनकी यह पहली यात्रा थी। उनका प्रधान कार्यक्रम भारत के राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री, विदेश मंत्री, शिक्षा और समाज कल्याण मंत्री, उद्योग मंत्री तथा वाणिज्य मंत्री से शिष्टाचार भेंट थी और विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के सम्बन्ध में जिसके साथ डब्ल्यू०आई०पी०ओ० का सम्बन्ध है का सामान्य मामलों पर विचार-विमर्श किया।

संयुक्त भारत-सोवियत पाठ्य-पुस्तक बोर्ड की दसवी बैठक 11 और 12 जनवरी, 1978 को हुई थी। श्री पी० सबानायगम, सचिव, शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय तथा अध्यक्ष, संयुक्त भारत-सोवियत पाठ्य-पुस्तक बोर्ड ने भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व किया। यू०एस०एस० आर० के उच्च एवं विशिष्ट माध्यमिक शिक्षा उपमंत्री

महामान्य प्रो० एन० एस० यगोरोव ने सोवियत प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व किया ।

बोर्ड ने यह निर्णय किया कि बहुत बड़ी संख्या में भारतीय छात्रों और विद्वानों को रूसी भाषा पढ़ाने के उपाय लंबित है, जिससे कि यू०एस०एस०आर० की विस्तृत जानकारी हो सके । वर्तमान कार्यक्रम सोवियत पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद को भी साथ-साथ जारी रखा जाय । फिर भी बोर्ड ने संयुक्त कार्यक्रम की प्रभावी और तेजी से लागू करने पर जोर दिया । इस संदर्भ में बोर्ड ने विभिन्न उपायों पर विचार किया तथा निम्नलिखित निर्णय लिए ।

(1) भारतीय पक्ष प्राथमिकता के आधार पर शैक्षणिक अनुदेश के क्षेत्रों में चुनिन्दा पाठ्यक्रम निर्धारित करेगा और इन पाठ्यक्रमों से सम्बन्धित पाठ्य-विवरणों को अंग्रेजी और रूसी भाषा में रूसी पक्ष को भेजेगा ताकि वे ऐसे पाठ्य-विवरणों से सम्बन्धित उपयुक्त रूसी पुस्तकों का पता लगा सकें और उन पुस्तकों की प्रतियां भेज सकें ।

(2) भारतीय पक्ष रूस में अध्ययन कर रहे / अध्ययन कर चुके भारतीय अध्येताओं से ऐसी रूसी पुस्तकों के बारे में भी सूचना प्राप्त कर सकता है जिनकी उन्हें जानकारी हो तथा जिनका रूसी पृष्ठभमि से संबंध हो ताकि भारतीय सन्दर्भ में उपयुक्त पुस्तकें निर्धारित की जा सके ।

(3) रूसी पक्ष, भारतीय पक्ष को उप-पैरा (1) में संदर्भित चुनिन्दा क्षेत्रों में अपनी उन सभी पाठ्य-पुस्तकें और सन्दर्भ पुस्तकों की प्रतियां (1 प्रति अंग्रेजी में तथा 3 प्रतियां रूसी में) उपलब्ध कर सकता है । जिनसे एक सन्दर्भ पुस्तकालय स्थापित किया जा सके जिससे कि भारतीय पक्ष इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रकाशन के लिए समय-समय पर उपयुक्त पुस्तकें चुन सके । रूसी पक्ष भारतीय पक्ष द्वारा निर्धारित विषय क्षेत्रों से सम्बन्धित अपनी उन सभी तकनीकी पत्रिकाओं की प्रतियां भी इस पुस्तकालय को भेजने के प्रश्न पर विचार करे ।

(4) बोर्ड की अगली बैठक से पहले इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कम-से-कम 25 पुस्तकें प्रकाशित की जाएगी ।

(5) भारत में रूसी भाषा के अध्ययन की सुविधाओं में विशेषकर स्नातकोत्तर और उत्तर डाक्टरेट स्तरों पर अध्ययन की सुविधाओं में वृद्धि की जानी चाहिए, ताकि अधिकाधिक भारतीय अध्येता चिकित्सा, इंजीनियरी आदि जैसे विशिष्ट विषयों के लिए अपनाई गई रूसी भाषा का कार्य-साधक ज्ञान प्राप्त कर सके । इससे भारतीय छात्र अनुवाद की बजाए मूल रूप में रूसी पुस्तकों का अध्ययन कर सकेंगे । रूसी पक्ष कार्यविधि अध्यापन सामग्री, और प्रशिक्षण साधनों की सभी प्रकार की सहायता उपलब्ध करेगा ।

(6) विद्यालयीन स्तर की पुस्तकों, पाठ्य-पुस्तक नहीं बल्कि पूरक सामग्री के आदान-प्रदान की संभावना जो भारतीय स्कूल-छात्रों के उपयोग के लिए होगा, का अध्ययन किया जायगा ।

(7) दो स्थायी निकायों की एक शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय तथा दिल्ली स्थित सोवियत दूतावास के सदस्यों सहित और दूसरी उच्चतर तथा विशिष्ट माध्यमिक शिक्षा मंत्रालय यू०एस० एस०आर० तथा मास्को में भारतीय दूतावास के सदस्यों सहित दो महीनों में कम-से-कम एक बार इस कार्यक्रम के कार्यान्वियन की सफलता की समीक्षा के लिए स्थापना की जाएगी ।

राष्ट्रीय शैक्षिक संसाधन केन्द्र ने 17 से 19 जनवरी 1978 तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय में विश्वविद्यालय स्तर की देशी पुस्तकों की एक प्रदर्शनी आयोजित की । भारत सरकार द्वारा चलाए जा रहे तीन सहयोगी कार्यक्रमों के अंतर्गत प्रकाशित पुस्तकें और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की सामान्य आर्थिक सहायता योजना के अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तक तथा राज्य पाठ्यपुस्तक बोर्डों/ब्यूरों/अकादमियों के प्रकाशनों की लगभग 800 चुनी हुई पुस्तकें प्रदर्शनी में रखी गई थी ।

(i) लगभग 2,000 छात्रों, शिक्षकों और शोध छात्रों ने प्रदर्शनी देखी ।

(ii) प्रदर्शनी के आयोजन के साथ-साथ केन्द्र ने 'वनस्पतिविज्ञान' और मनोविज्ञान की अंग्रेजी और हिन्दी भाषाओं की देशी पुस्तकों के मूल्यांकन के लिए 18 और 19 जनवरी को इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद में विषय-विशेषज्ञों की दो पेनलों की बैठकें भी बुलाई । मूल्यांकन के लिए पेनलों के समक्ष रखी गई 23 पुस्तकों में से 9 पुस्तकें विश्वविद्यालय स्तर पर उपयोग के लिए उपयुक्त पाई गई ।

(iii) इसके अलावा केन्द्र ने निम्नलिखित विषयों में असमी भाषा की लगभग 166 पुस्तकों के मूल्यांकन का प्रबंध किया :

"मानव विज्ञान, रसायन शास्त्र, अर्थशास्त्र, शिक्षा, भू-विज्ञान, इतिहास, भौतिक शास्त्र, प्राणीविज्ञान,

सांख्यिकीय, राजनीति शास्त्र, वनस्पति विज्ञान, वाणिज्य, दर्शनशास्त्र, भूगोल और गणित।''

मूल्यांकन की गई पुस्तकों में से 121 पुस्तकें विश्वविद्यालय स्तर पर उपयोग के लिए उपयुक्त पाई गई।

केन्द्र ने निम्नलिखित पुस्तकें भी प्रकाशित की :

(i) एनोटेटेड केटालाग आफ लो प्राइज़ड पब्लिकेशन एण्ड कोर बुक्स।

(ii) बाई-मन्थली लिस्ट आफ एडीशन्स।

(iii) एन०ई०आर०सी० न्यूज़लेटर।

भारतीय पुस्तकों के निर्यात को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने 26 जनवरी से 6 फरवरी, 1978 तक वहां हुए अंतर्राष्ट्रीय कैरो पुस्तक मेले में भाग लिया। विभिन्न विषयों पर सरकारी तथा निजी क्षेत्रों दोनों तरह के विभिन्न प्रकाशकों से संग्रहीत 608 पुस्तक वहां प्रदर्शन के लिए भेजी गई।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा तृतीय विश्व पुस्तक मेला नई दिल्ली में 11-20 फरवरी तक आयोजित किया गया जिसका उद्घाटन भारत के उपराष्ट्रपति द्वारा किया गया था। उद्घाटन के अवसर पर विश्व पुस्तक मेला के संबंध में डाक विभाग द्वारा छापी गई संस्मरण डाक टिकट उपराष्ट्रपति ने जारी की।

29 दूसरे देशों से लगभग 60 प्रकाशक संगठनों तथा 354 भारतीय प्रकाशकों ने मेले में भाग लिया। लगभग 2,00,000 पुस्तकें प्रदर्शित की गई थी। 2 लाख से अधिक लोगों ने मेला देखा।

मेले के अवसर पर टाइम्स, लंदन ने भारत में प्रकाशन के संबंध में एक साहित्यिक पूरक प्रकाशित किया।

12 से 15 फरवरी, 1978 तक ''विकासशील देशों में शैक्षिक प्रकाशन'' विषय पर, मेले के एक भाग के रूप में, एक अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित किया गया। भारत तथा विदेशों के अनेक प्रकाशन विशेषज्ञों ने सेमिनार में भाग लिया।

प्रकाशन संघों द्वारा प्रकाशन के विभिन्न पहलुओं के संबंध में संगोष्ठियां, सेमिनार और प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित किए गए। इसके अतिरिक्त भारत के लेखकगण और पुस्तकाध्यक्ष संघों ने अपनी-अपनी राष्ट्रीय परम्पराएं प्रस्तुत कीं।

छात्रवृत्तियां

(क) ''बाहर जाने वाले'' छात्र

फ्रेंच सरकार छात्र वृत्तियां— 1978-79

फ्रेन्च सरकार ने भारतीय राष्ट्रिकों के लिए विभिन्न विषयों में 15 छात्रवृत्तियां प्रदान की हैं। उपयुक्त छात्रों के नामांकन किये गये हैं। फ्रेन्च प्राधिकारियों के अन्तिम अनुमोदन की प्रतीक्षा है।

स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए जर्मन जनवादी गणराज्य छात्र वृत्तियां, 1977–78

ज० ज० ग० सरकार ने 6 छात्रों के लिए छात्रवृत्तियां प्रदान की हैं। एक छात्र फरवरी, 1978 में ज० ज० ग० को चला गया।

जापान

8 छात्रवृत्तियों के प्रस्ताव के विरुद्ध, 4 छात्रों के सम्बन्ध में जापान सरकार का अनुमोदन प्राप्त हुआ है, जो अप्रैल, 1978 के पहले सप्ताह के दौरान जापान जाने वाले हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा जापान प्राधिकारियों को जापान फाउंडेशन अधिछात्रवृत्ति, 1978-79 के लिए नामांकन भेज दिये गये हैं।

नीडरलेंड

कृषि सम्बन्धी क्षेत्रों में नीडरलेंड अधिछात्रवृत्तियों के लिए भारत सरकार के नामांकनों में से दो छात्रों को अन्तिम रूप से चुन लिया गया है।

पोलेंड

2 छात्रों के सम्बन्ध में अनुमोदन प्राप्त हो गया है, इनमें से एक अप्रैल में चला जाएगा और दूसरा छात्र अक्तूबर, 1978 में चला जाएगा।

बुखारेस्ट, रोमानिया में प्रबन्ध अध्यापकों का लघु-कालीन कार्यक्रम

रोमानिया से, अन्तर्राष्ट्रीय प्रबन्ध विकास केन्द्र, बुखारेस्ट द्वारा आयोजित किये जा रहे विभिन्न लघु-कालीन प्रबन्ध पाठ्यक्रम कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए 9 छात्रवृत्तियों का एक प्रस्ताव प्राप्त हुआ है। चयन किये जा रहे हैं।

1978-79 के लिए स्वीडिश अन्तर्राष्ट्रीय विकास प्राधिकरण, उप्पसाला अधिछात्रवृत्तियां

1978-79 के लिए स्वीडिश अन्तर्राष्ट्रीय, विकास प्राधिकरण अधिछात्रवृत्तियां प्रदान करने के लिए आठ छात्रों का नामांकन किया गया है।

संयुक्त राज्य अमेरिका

1978-79 की अमेरिकी अधिछात्रवृत्तियों के लिए पांच नामांकन कियेगये हैं।

इंगलेंड (यू० के०)

1978-79 के लिए 1851 की प्रदर्शनी के लिए रायल आयोग यू० के० की विज्ञान अनुसंधान छात्रवृत्ति के लिए एक नामांकन किया गया है।

राष्ट्रमण्डल छात्रवृत्ति और अधिछात्रवृत्ति योजना 1978-79

(i) नाईजीरिया सरकार द्वारा प्रदत्त छात्रवृत्तियां
2 छात्र नामांकित किये गये हैं।

(ii) यू० के० सरकार द्वारा प्रदत छात्रवृत्तियां
48 छात्र नामांकित किये गये हैं।

(iii) कनाडा सरकार द्वारा प्रदत्त छात्रवृत्तियां
31 छात्र नामांकित किये गये हैं।

(iv) जमैका सरकार द्वारा प्रदत्त छात्रवृत्तियां
एक छात्र नामांकित किया गया है।

(ख) "आने वाले" छात्र

कोलम्बो योजना की तकनीकी सहयोग योजना

3 छात्रों ने अपनी अपनी संस्थाओं में दाखिला लिया।

यूनेस्को के साथ सहयोग के लिये भारतीय राष्ट्रीय आयोग

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम और यूनेस्को से वित्तीय सहायता

यूनेस्को सचिवालय के अधिकारियों के साथ परियोजनाओं पर विचार-विमर्श

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम और यूनेस्को से वित्तीय सहायता प्राप्त करने के लिये यूनेस्को सचिवालय के अधिकारियों के साथ परियोजनाओं पर विचार-विमर्श करने हेतु सर्वश्री पी० के० उमाशंकर और जे० ए० कल्याणकृष्णन, संयुक्त सचिवों को 14 से 21 दिसम्बर, 1977 तक पैरिस में प्रतिनियुक्त किया गया था। उनकी प्रतिनियुक्ति का सम्पूर्ण खर्च स्वयं यूनेस्को द्वारा वहन किया गया था।

जनेवा में अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा ब्यूरो परिषद् (आइ० बी० ई०) का 16वां सत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा ब्यूरो की परिषद का 16 वां सत्र जनेवा में 17 से 20 जनवरी, 1976 में आयोजित हुआ था। इस बैठक में यूनेस्को, पैरिस में भारत के उप-स्थायी प्रतिनिधि श्री महेश्वर दयाल ने भारत का प्रतिनिधित्व किया।

राष्ट्रीय स्वयं कर्मी सेवा योजना

प्रथम डिग्री पूरी करने वाले युवकों को अवसर प्रदान करने के लिये तथा उन्हें पूर्णकालिक आधार पर एक विशेष अवधि के लिये, राष्ट्र निर्माण सम्बन्धी कार्यकलापों में स्वैच्छिक रूप से अपने आपको लगाने हेतु 1977-78 से राष्ट्रीय सेवा कर्मी योजना आरम्भ की गई है। सर्वप्रथम इन कर्मियों को कम से कम एक साल की अवधि के लिये स्वैच्छिक एजेन्सियों तथा नेहरू युवक केन्द्रों के माध्यम से प्रौढ़ शिक्षा/अनौपचारिक शिक्षा की प्रोन्नति करने में लगाया जायेगा।

इस योजना के अधीन कर्मियों के प्रशिक्षण के लिये 8 प्रशिक्षण संस्थाओं को चुना गया है। इन संस्थाओं ने दिसम्बर 1977–फरवरी 1978 के दौरान प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों का आयोजन किया। इन संस्थाओं द्वारा आयोजित प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के पहले बैच में 150 कर्मियों को प्रशिक्षित किया गया। कर्मियों ने इस क्षेत्र में पहले से ही कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है।

राज्य सरकारों तथा संघशासित क्षेत्रों को रियायती दर पर छपाई का सफेद कागज सप्लाई करना

जनवरी से मार्च 1978 तक की तिमाही के लिए स्कूल तथा कालेज स्तर की पुस्तकों को प्रकाशन के लिये कापियां तैयार करने के लिये राज्य सरकारों तथा संघ-शासित क्षेत्रों के 21773 मीटरी टन छपाई का सफेद कागज आवंटित किया गया था। इस कागज को सप्लाई करने के फलस्वरूप छात्रों को उचित दर पर पाठ्यपुस्तकें तथा कापियां मिल जाती है।

नार्वे से उपहार के रूप में कागज

फरवरी 1974 में किये गये एक भारत-नार्वे करार के अन्तर्गत 1977 के कैलण्डर वर्ष के लिये सामग्री सहायता के रूप में नार्वे सरकार से दिसम्बर 1977 के दौरान 4.88 मिलियन नार्वेई क्रानर्स की कीमत का 1296.915 मीटरी टन कागज उपहार के रूप में मिला।

प्राप्त सम्पूर्ण कागज स्कूल स्तर की श्रेष्ठ पुस्तकों के उत्पादन के लिये रा० शि० अनु० प्र० परिषद को दिया गया है।

कापीराइट

कापीराइट अधिनियम के अधीन दायर याचिकाओं को सुनने के लिए, कापीराइट बोर्ड, जिसका गठत कापीराइट अधिनियम 1957 के अनुच्छेद 11(1957 का 14) के अन्तर्गत किया गया था की दिसम्बर 1977 से फरवरी 1978 की समयावधि के दौरान एक हैदराबाद तथा एक नई दिल्ली में दो बैठकें हुई। इन दोनों बैठकों में बोर्ड के सामने 18 मामले पेश किए गए।

दिसम्बर 1977 से फरवरी 1978 की समयावधि के दौरान 6.36 कलात्मक तथा 157 साहित्यिक कार्यों का कापीराइट के लिये रजिस्ट्रेशन किया गया। इसके अतिरिक्त, कापीराइट के रजिस्टर में दो संशोधन किये गये। संबंधित व्यक्तियों को रजिस्ट्रेशन प्रमाण-पत्र भेजे गए। तथा उन्हें किए गए संशोधनों से भी सूचित किया गया।

● ● ●

[पृष्ठ 31 का शेष]

[वीरेंद्र अग्रवाल]

व्यवहार भी इसमें शामिल है। यह जरूरी होगा कि ब्यौरेवार रिकार्ड रखा जाए ताकि छात्रों के सोद्देश्य आन्तरिक मूल्यांकन में सुविधा हो। इसके अतिरिक्त, व्यावहारिक कार्य तथा मौखिक परीक्षा को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए ताकि छात्रों के समग्र व्यक्तित्व तथा उपलब्धि का मूल्यांकन किया जा सके।

उपर्युक्त तरीके से शिक्षा का पुनर्गठन करने में निश्चय ही अतिरिक्त खर्च होगा। पिछली पंचवर्षीय योजनाओं में यह देखा गया है कि कुल खर्च में शिक्षा पर होने वाले खर्च की प्रतिशतता तीसरी योजना में 6.87 थी जो कि घट कर चौथी योजना में 5% हो गई और पांचवी योजना में 3.27 हो गई। छठी योजना में खर्च की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिए ताकि हम राष्ट्रीय आय के 6% के बराबर हो जाए। आगामी वर्षों में शैक्षिक सुधार की सफलता केन्द्र में जनता सरकार की राजनीतिक इच्छा तथा उसके निश्चय पर निर्भर होगी। छुटपुट तरीके से इस समस्या के समाधान से केवल उलझनें ही पैदा होंगी। इसीलिए सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति में इस प्रकार परिवर्तन करने की जरूरत है ताकि इससे स्वयं रोजगार के लिए प्रशिक्षित कर्मचारियों की व्यवस्था हो सके। छात्र असन्तोष के कारण विश्वविद्यालय शिक्षा इतनी दूषित हो गई है कि इसके कारण बहुत से विश्वविद्यालय अधिकतर समय बन्द ही रहते हैं। इस कारण राष्ट्रीय नेताओं को चाहिए कि वे शीघ्र ही एक रोजगारोन्मुख शिक्षा की व्यवस्था करें जिसकी सहायता से उपयोगी भावी नागरिक तैयार हो सकें।

● ● ●

भा०स०मु०ना०—वि०7—77एम० आफ ऐज्यूकेशन (एन०डी०)/78—8-8-78—570.

शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति मंत्रालय की अन्य त्रैमासिक पत्रिकाएं

1. **'संस्कृति'** (हिंदी)

इस पत्रिका में भारत तथा देश-विदेश के सांस्कृतिक कार्यक्रमों, गतिविधियों और प्रयोगों के सम्बन्ध में अधिकृत सूचना दी जाती है। सभी लेख निष्पक्ष होते हैं।

2. **दि एज्यूकेशन क्वार्टरली** (अंग्रेजी)

इस पत्रिका म वर्तमान और महत्वपूर्ण शैक्षिक समस्याओं का विवेचन किया जाता है और मंत्रालय की शैक्षिक गतिविधियों के बारे में जानकारी दी जाती है।

3. **इण्डियन एज्यूकेशन एब्सट्रेक्ट्स** (अंग्रेजी)

इस पत्रिका में भारतीय शिक्षा से संबंधित महत्वपूर्ण साहित्य की विषय-वस्तु का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है। इस पत्रिका से पाठकों को, आवश्यकता पड़ने पर, मूल लेखों तथा प्रकाशनों का हवाला देने में मदद मिलती है।

मूल्य :

'संस्कृति'	एक प्रति	1.00 रुपया
	वार्षिक चन्दा	4.00 रुपए
'दि एज्यूकेशन क्वार्टरली'	एक प्रति	4.50 रुपए
	वार्षिक चन्दा	18.00 रुपए
इंडियन एज्यूकेशन एब्सट्रेक्ट्स	एक प्रति	3.90 रुपए
	वार्षिक चन्दा	15.60 रुपए

इन सभी पत्रिकाओं की प्रतियों, वार्षिक चन्दे इत्यादि की पूछताछ के लिये प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-54 को या निम्नलिखित पते पर लिखिये। चन्दा भी इस पते पर भेजा जा सकता है।

निदेशक (हिन्दी प्रकाशन),
शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति मंत्रालय,
102-सी, 'सी' विंग, शास्त्री भवन,
नई दिल्ली–110 001.

PED 462.4.78
570. 1978 DSK III.

Registration No. 25556/73

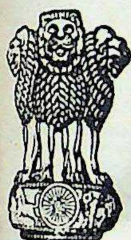
मूल्य : एक प्रति : 4.50 रुपए अथवा 0.53 पौंड या 1 डालर 62 सेंट्स

वार्षिक : 18 रुपए अथवा 2.10 पौंड या 6 डालर 48 सेंट्स

प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, नासिक-422 006 द्वारा मुद्रित और नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली-110 006 द्वारा प्रकाशित
1978

अक्तूबर, 1978

शिक्षा विवेचन



इस अंक में

शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय - भारत सरकार

शिक्षा विवेचन

● यह पत्रिका प्रत्येक वर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई और अक्तूबर में त्रैमासिक रूप में छापी जाती है।

● इस पत्रिका में, इस मंत्रालय की अंग्रेजी की पत्रिका 'दि एज्यूकेशन क्वार्टरली' में छपे लेखों का हिन्दी अनुवाद छापा जाता है। इनमें शिक्षा संबंधी विचारों, समस्याओं और सामयिक विषयों की व्याख्या होती है। पत्रिका में शैक्षिक रुचि के महत्वपूर्ण प्रश्नों और भारत तथा विदेश में हो रही शैक्षिक और युवा कल्याण की गतिविधियों और प्रयोगों की जानकारी देने का प्रयास किया जाता है। लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने विचार होते हैं और यह आवश्यक नहीं कि वे सरकार के विचार और दृष्टिकोण के अनुरूप हों।

● इस पत्रिका की बिक्री के संबंध में पूछताछ और वार्षिक चन्दा व मनीआर्डर आदि प्रकाशन प्रबंधक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110 006 को भेजा जाना चाहिये। इसके लिए निदेशक (हिन्दी प्रकाशन), शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति मंत्रालय, 102-सी शास्त्री भवन, नई दिल्ली को भी लिखी जा सकती है।

● विज्ञापनों आदि के बारे में जानकारी, विज्ञापन एजेन्ट, भारत सरकार के प्रकाशन, 5 ए/10, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली से मिल सकती है।

शिक्षा विवेचन

(त्रैमासिक)

वर्ष सात

अंक 3

अक्तूबर, 1978

विषय वस्तु

1—446 एजूकेशन/78

इस अंक में

यह सही है कि पत्रिका के इस अंक का मुख्य विषय शैक्षिक क्षेत्र में इस समय चल रहे प्रमुख राष्ट्रीय प्रयास अर्थात् प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम से संबंधित हैं। इस अंक में लेखकों ने इस प्रयास की रूपरेखाओं का वर्णन किया है और इन बातों के बारे में बताया है जिन्हें इस अभियान के वांछित प्रभाव और आशातीत परिणाम प्राप्त करने के लिए हमें ध्यान में रखना होगा। कार्यक्रम की सफलता की आवश्यकता पर बल देते हुए मुरियल वसी ने विगत में इस क्षेत्र में स्वैच्छिक एजेन्सियों द्वारा किए गए कार्यों का उल्लेख किया है और ऐसा करते समय उन्हें यथोचित श्रेय भी दिया है। उन्होंने वर्तमान प्रयासों में उनकी भूमिका पर बल दिया है परन्तु इसके साथ ही इस बात के प्रति सचेत भी किया है कि इस सम्पूर्ण अभियान का सार इसके सही और सावधानी पूर्वक आयोजना पर निर्भर करता है। श्री एच० एस० श्रीवास्तव ने भी स्वैच्छिक संगठनों द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका के महत्व के बारे में बताया है और इसके लिए एक प्रभावी मूल्यांकन मशीनरी की आवश्यकता का उल्लेख किया है। श्री वी० एस० माथुर ने अपने लेख में कहा है कि इस कार्यक्रम में सतत शिक्षा पर बल दिया जाना चाहिए। इस व्यापक अभियान में शिक्षकों का क्या स्थान होना चाहिए इस बात को श्री के० शंकर मिश्र ने अपने लेख में उठाया है और कहा है कि यह केवल शिक्षक ही स्थानीय आवश्यकताओं को समझ सकते हैं और उन्हें विशेष रूप से ऐसे प्रौढ़ों के लिए उपयुक्त पुस्तकें लिखनी चाहिए तथा प्रौढ़ों में अध्यापन-अध्ययन प्रक्रिया के प्रति रुचि उत्पन्न करनी और बनाए रखनी चाहिए। राजकुमारी चन्द्रशेखरन ने कार्यक्रम के लिए मार्गदर्शी रूपरेखाएं निश्चित की हैं—अर्थात निचले स्तर पर कार्य के लिए खाका।

अपनी लेख क्रम माला के अन्त में श्री डी० पी० नायर ने इस अंक में ग्रामीण विकास के लिए प्रबन्ध शिक्षा की सभी समस्याओं तथा योजनाओं पर चर्चा की है। पत्रिका को सामान्य गतिविधियों के अतिरिक्त इस अंक में वर्तमान शैक्षिक आवश्यकताओं के संबन्ध में कई अन्य लेख भी हैं। आशा है कि इस पत्रिका के आगामी अंकों में महत्वपूर्ण विषयों-पर परिचर्चा जारी रहेंगी।

—सम्पादक

लेखक परिचय

1 मुरियल वसी
डी-145, डिफेन्स कालोनी
(पहली मंजिल)
नई दिल्ली-110024

2 श्री वी० एस० माथुर,
99 सेक्टर, 16 ए
चण्डीगढ़

3 राजकुमारी चन्द्रशेखरन,
प्रौढ़ तथा अनवरत शिक्षा विभाग,
मद्रास विश्वविद्यालय,
मद्रास-600 005

4 श्री पी० डी० शुक्ल
ए 14/15 बसन्त विहार,
नई दिल्ली-110057

5 श्री धीरेन्द्र वर्मा
5559 केरिएजवे सी आर,
हेलिफेक्स, एन० एस०
कनाडा बी० 3 के 5 के 4

6 श्री एच० एस० श्रीवास्तव
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद
श्री अरविन्द मार्ग
नई दिल्ली 110016

7 श्री करुणा शंकर मिश्र
1339/1340 शंकर सदन
क्रिश्चियन कालेज के निकट
स्टेशन रोड
मैनपुरी 205001

8 श्री डी० पी० नायर
शैक्षिक आयोजकों तथा प्रशासकों के लिए
राष्ट्रीय स्टाफ कालेज,
17-बी० श्री अरविन्द मार्ग,
नई दिल्ली 110016

9 श्री सन्त प्रकाश
क्षेत्रीय शिक्षा कालेज,
श्यामला हिल्स
भोपाल 462013

10 श्री ए० वेंकटारामी रेड्डी
एवं
श्री एन० कृष्णा रेड्डी
शिक्षा विभाग,
एस० वी० विश्वविद्यालय कालेज,
तिरुपति

स्वैच्छिक एजेंसी और प्रौढ़ शिक्षा

मुरियल वसी

इस वर्ष 2 अक्तूबर से शुरू होने वाले औपचारिक प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के प्रचार को धूमधाम को देखते हुए आप सोचते होंगे कि इससे पहले प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम कभी नहीं चलाया गया। एक अर्थ में आपका यह विचार ठीक है। निरक्षरता उन्मूलन के लिए पार्टियों की तरफ से वचन दिया गया है। यह वचन यदि पूरी निरक्षरता उन्मूलन के लिए नहीं हो तो कम-से-कम इसके सबसे महत्वपूर्ण भाग प्रौढ़ शिक्षा के लिए है। 1936 और 1938 के बीच बिहार में कांग्रेस पार्टी ने इसकी शुरुआत की थी जबकि डा० सैयद महमूद ने गांवों में एक स्लेट के साथ यह नारा दिया था कि प्रत्येक व्यक्ति एक व्यक्ति को पढ़ाए। महाराष्ट्र में कुलसुम सयानी साक्षरता तथा समाज शिक्षा के क्षेत्र में अपने कार्यों के लिए स्थानीय तथा अखिल भारतीय स्तर पर प्रसिद्ध हुई। लखनऊ के समीप अदम्य वल्थी फिशर के नाम पर मशहूर लिटरेसी हाउस उन सभी के लिए प्रकाशगृह बन गया है जिन्हें स्वयं अपने लिए अथवा उन लाखों लोगों के लिए साक्षरता की आवश्यकता है जो जीवन के इस वरदान से वंचित हैं।

नयी दिशाएं

फिर भी वर्तमान योजना और इससे पहले की सभी योजनाओं में अन्तर है। एक बात तो यह है कि यह एक अखिल भारतीय योजना है तथा केन्द्रीय और राज्य सरकार स्पष्ट तथा पूर्णरूप से इससे सहमत हैं। अतः इस काम के पीछे राजनीतिक रुचि भी है। इस काम के लिए 200 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है जो इस समस्या की विशालता को देखते हुए अधिक नहीं है लेकिन इससे पहले कभी भी इतनी राशि प्रौढ़ शिक्षा में 15-35 वर्ष के आयु वर्ग में 10 करोड़ लोगों को साक्षर बनाने के लिए खर्च नहीं की गई है। इसके अलावा अब विश्व में और भारतीय शिक्षा में हम उस स्तर पर पहुंच गये हैं जहां मानवीय असफलताओं को किसी हद तक प्रौद्योगिकी द्वारा तथा बड़े पैमाने पर और यहां तक की उप-महाद्वीपीय पैमाने पर उस उपलब्धि द्वारा दूर किया जा सकता है जिस पर हम अब तक केवल नुक्ता चीनी करते रहे हैं। इन सब बातों को देखते हुए प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को शुरु करने का आज हमें अच्छा अवसर है। इससे पहले हमें ऐसा अवसर नहीं मिला था। अब हम कार्यात्मक साक्षरता और अनौपचारिक शिक्षा के महत्व को समझते हैं जिसे हमने तीसरे दशक में नहीं समझा था, और हम अपनी नई खोजों को प्रभावी रूप से लागू करने की आशा कर सकते हैं। लेकिन, जैसा कि बड़े पैमाने पर शैक्षिक कार्यक्रमों में हमेशा होता है, क्या हमने उस तत्व अथवा उन तत्वों को समझ लिया है जिस पर या जिन पर कार्यक्रम की सफलता निर्भर करती है। यही वास्तविक प्रश्न है।

मुख्य विषय

सभी सरकारी योजनाओं की तरह इस योजना के लिए भी व्यवस्था है अथवा धन और कार्मिकों द्वारा व्यवस्था की जा सकती है। क्षेत्रीय केन्द्रों और राज्य केन्द्रों, जिला केन्द्रों तथा ग्राम-केन्द्रों के जरिए ऐसे कार्यक्रम के लिए पूर्ण व्यवस्था की जा सकती है और उसे जारी रखा जा सकता है। इस योजना को लागू करने में, क्योंकि उन राज्यों में भी कोई राजनीतिक बाधा नहीं आयेगी जहां जनता पार्टी का शासन नहीं है, अतः सरकारी यूनिटों को भी इसी दिशा में और साथ-साथ काम करना चाहिए। कमियों को दूर करने, अगले छः महीनों में व्यापक कार्यक्रमों के लिए कार्मिकों को प्रशिक्षित करने, लाखों पुरुषों, महिलाओं और स्कूल छोड़ने वालों की मदद के लिए उनके प्रशिक्षण को जारी रखने की व्यवस्था करने; नव-साक्षरों के लिए उपयुक्त सामग्री तैयार करने; गत समय में हुई गल्तियां दोबारा न हों इसके लिए मूल्यांकन वर्कशापों का आयोजन करने; इस समस्या की व्यापकता को स्पष्ट समझने और अकर्मण्यता को गम्भीरता को समझने तथा इसका विरोध करने के लिए अभी समय है। इन सब बातों पर ध्यान देना चाहिए। इस स्तर पर और अभी यदि इस बात की स्पष्टता को नहीं समझा गया तो इसके गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। मुख्य विषय यह है कि यह कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकता जब

तक कि उपयुक्त ढांचे, पर्याप्त धन, उचित संख्या में शिक्षकों और इस कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए पर्याप्त संख्या में लोगों की व्यवस्था न की जाए। कार्यक्रम की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि जो लोग इस कार्य को करने में सक्षम हैं; और जो इसे करना चाहते हैं उनके काम में गलत आयोजना के कारण कोई रुकावट न आये। मेरे विचार में भारत की स्वैच्छिक एजेंसियों का ठीक से उपयोग किया जाये तो वे इस कार्यक्रम को सफल बना सकती हैं। यदि उन्हें समय पर धन न दिया गया तो वे इस कार्य को पूरा न कर सकेंगी।

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में हम स्वैच्छिक एजेंसियों को इतना महत्व क्यों देते हैं? क्योंकि इस कार्यक्रम के लिए विशेष योग्यता वाले ऐसे सेवा-कार्मिकों की जरूरत हैं जो सामान्यतया न तो केन्द्र में और न ही राज्यों में सरकारी विभागों में उपलब्ध होते हैं। कुलसुम सयानी और वेल्थी फिशर दोनों में से कोई भी सरकारी सेवा में नहीं था, फिर भी इन दोनों ने अपने-अपने क्षेत्रों में अपने कार्यों से वह कर दिखाया जो सरकारी सेवा में किसी ने नहीं किया। यह मात्र संयोग की बात नहीं है कि ये दोनों महिलाएं हैं। इसका कारण है कि महिलाएं, परिश्रमी, सहनशील और अपनी धुन की पक्की होती हैं और उनमें पद्दलित लोगों की सहायता करने का निश्चय होता है।

हाल ही में "प्रौढ़ शिक्षा नयी दिशाएं" पर दिल्ली दूरदर्शन द्वारा प्रसारित कार्यक्रम में मारग्रेट अल्वा ने, जिन्हें स्वैच्छिक एजेंसियों की कार्य-प्रणाली का कुछ अनुभव है, विशेष रूप से यह पूछा था कि क्या कार्यक्रम की सफलता का अन्तिम उपाय यह है कि उन लोगों पर निर्भर किया जाए जो इसके प्रति समर्पित हों। समर्पण की भावना को आंका नहीं जा सकता अथवा इसका कोई आकार नहीं है और सामान्यतया अफसरशाही में इसका अभाव होता है। उनका कथन बिल्कुल ठीक था। समर्पण की भावना सरकारी अथवा अन्य किसी आदेश अथवा विचार-विमर्श द्वारा पैदा नहीं की जा सकती। स्वयं ही इसका जन्म होता है तथा प्रतिबद्ध लोगों की इच्छा से इसे बल मिलता है और सभी परिस्थितियों में यह विद्यमान रहती हैं।

स्वैच्छिक एजेंसियों का स्वरूप

स्वैच्छिक एजेंसी की एक बड़ी विशेषता यह है कि उन परियोजनाओं के लिए ये स्वेच्छा से सहायता करती हैं जिनमें इन्हें विश्वास होता हैं। यह अपने ही सदस्यों द्वारा शुरू तथा संचालित की जाती है और बिना किसी बाहरी नियंत्रण के लोकतान्त्रिक सिद्धांतों पर चलती हैं। इसके लक्ष्य तथा उद्देश्य स्पष्ट होते हैं और इन उद्देश्यों को प्राप्त करने की योजना होती है। यह जिस समुदाय के लिए काम करती है वह इसे जानता है और स्वीकार करता है। इसका स्वरूप परिवर्तनीय होता है तथा यह विभिन्न विचार रखती है। ऐसे कार्यक्रम के लिए स्वैच्छिक एजेंसी की इस विशेषता पर ध्यान देना ही काफी नहीं है कि यह स्वैच्छिक है, बल्कि यही कारण है कि इससे हम समर्पण की आशा कर सकते हैं (जैसा कि हमें अनुभव हुआ है)। स्वैच्छिक एजेंसी किसी लाभ के लिए निरक्षरता को मिटाने के काम नहीं करती हैं। बल्कि इसलिए कि प्रारंभ से ही निरक्षरता के दुष्परिणाम को समझती हैं और यह कि यही एक मात्र कारण है कि लोगों को जीवन के बुनियादी अधिकार को समझने से वंचित रहना पड़ता है। ये सुकरात का यह कथन सदा याद रखती हैं कि जीवन को समझे बिना जीना बेकार है। इसका उद्देश्य उन लोगों को सक्षम बनाना है जो मात्र जीवन-निर्वाह करते हैं।

लेकिन इससे पहले कि हम इन संगठनों को आदर्श बनाएं, मैं यह कहूंगी कि सभी संगठनों का स्तर एक जैसा नहीं है। इस समय भारत में लगभग 75 अखिल-भारतीय स्वैच्छिक एजेंसियां हैं तथा लगभग 11 राज्य अथवा क्षेत्रीय गैर-सरकारी एजेंसियां हैं। अनेक अखिल भारतीय एजेंसियां 50 साल से अधिक से काम कर रही हैं और कुछ एक शताब्दी से चली आ रही हैं यद्यपि इनके सामान्य कार्य बहुत उत्कृष्ट नहीं रहे हैं परन्तु इनमें विश्वास की झलक है। ये ऐसी महिलाओं तथा पुरुषों द्वारा (इस क्रम में) चलायी जाती हैं जो समाज के प्रति समर्पित हैं और जिसे म उनका व्यक्तिगत और ईश्वरीय गुण कह सकती हूँ। आधुनिक व्यावसायिक प्रबंध के स्तर की दृष्टि से वे हमेशा दक्ष नहीं होती हैं, लेकिन इस बात को देखते हुए कि ये अपने उद्देश्य स्वरूप और ढांचे सहित, निरंतर काम कर रही हैं और इस बात को देखते हुए कि हमें इस समय संकट का सामना करना पड़ रहा है और उस संकट को हमें दूर करना है, इससे यह पता चलता है कि वे एजेंसियां सशक्त और प्रभावी हैं। हाल ही में दिल्ली में बाढ़ के समय में सेना के अलावा सरकार तथा जनता ने भी स्वैच्छिक एजेंसियों की सहायता ली थी। स्वैच्छिक एजेंसी ठीक इसी स्थिति में काम करती हैं। क्योंकि इनमें से अनेक एजेंसियां हमेशा व्यक्तिगत सेवा में विश्वास करती हैं, पुरुष-स्त्री के परस्पर संबंध में विश्वास करती हैं क्योंकि वे स्वभाव से ही मानवीय होती हैं और अकाल तथा बाढ़ के समय में सहायता के लिए उन पर दबाव डालने की जरूरत नहीं होती है इसलिए हम उनसे वही सहायता की आशा करते हैं जैसे कि घोर व्यक्तिगत विपत्ति के समय हम स्वभावतः अपने पड़ोसी से करते हैं। वे सहायता के लिए सहर्ष तैयार हो जाती हैं। ये बहुत यथार्थ-वादी होती हैं। ये जितना काम कर सकती हैं उतना ही हाथ में लती हैं और एक बार जब पुनर्वास संबंधी काम ये हाथ में ले लेती हैं तो अपनी योजनाओं और उन योजनाओं को सहर्ष और बिना किसी दिखावे के

कार्यान्वित करने की अपनी क्षमता के कारण वे अपने इस काम में पर्याप्त सफलता प्राप्त करती हैं।

इन एजेंसियों के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि ये जनता से अथवा उन व्यक्तियों से जिनकी इन्होंने सहायता की है इस बात की आशा नहीं करती कि वे इनका अहसान मानें। अक्सर ये बिना किसी निजी स्वार्थ के सहायता करने के लिए तैयार रहती हैं। ये इसलिए काम नहीं करती कि इनका नाम हो। इन एजेंसियों का स्वरूप सामान्य वेतन पाने वाले लोगों तथा उन स्वैच्छिक अव्यवसायी लोगों का मिश्रण होता है जिनके पास पर्याप्त साधन होते हैं और जो स्वैच्छा से सेवा कर सकते हैं। वे सारे वर्ष काम के लिए तैयार रहते हैं और संकट के समय और भी उत्साह से काम करते हैं। इससे समर्पण की उस भावना को बल मिलता है जिसका जिक्र श्रीमती अल्वा ने दिल्ली दूरदर्शन पर चर्चा के दौरान किया था।

स्वैच्छिक एजेंसियों को अनुदान

इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि अनुभव प्राप्त स्वैच्छिक एजेंसियों को अपने कार्य को प्रभावी बनाने के लिए प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत समय पर अनुदान मिलेगा। अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के अनुसार, स्वैच्छिक एजेंसियों को अनुदान, केन्द्र द्वारा राज्य सरकारों के माध्यम से दिया जाएगा। सामान्यतः कुछ एजेंसियों के लिए यह जरूरी हो सकता है, परन्तु ऐसा विशेष रूप से क्षेत्रीय अथवा राज्य स्तर की गैर-सरकारी एजेंसियों के मामले में आवश्यक होगा क्योंकि सभी का पिछला रिकार्ड दोषरहित नहीं होता। लेकिन इस बात पर जोर देना कि सभी स्वैच्छिक एजेंसियों को राज्य सरकार के माध्यम से अनुदान दिया जाएगा, इससे अनिश्चितता पैदा हो जाती है और इससे इस समय-बद्ध कार्यक्रम में देर हो सकती है। इस कारण इस परियोजना को हानि हो सकती है और इसकी सफलता की सम्भावना निश्चय ही कम हो जाती है। पिछले अनुभव से पता चलता है कि राज्य सरकार के माध्यम से अनुदान देने से अनावश्यक देर होती है; अनावश्यक पूछताछ होती है और लाल फीताशाही पर निर्भर रहना पड़ता है जिसका कोई व्यावहारिक महत्व नहीं होता है। हम अपनी योजना में जब तक इस बात की व्यवस्था नहीं करते कि 50 वर्षों से अधिक से चली आ रही अखिल-भारतीय स्वैच्छिक संस्थाएं अपने अग्रिम आवेदन सीधे ही केन्द्र को भेज दें और केन्द्र स्वयं ही सभी उचित आवेदनों के सम्बन्ध में राज्य सरकार से स्वीकृति के एक महीना अथवा लगभग इतने ही समय पहले तक वे अनुदान मिलने का इंतजार करती रहेंगी। यह सत्य है कि इच्छा होते हुए भी बिना धन के साक्षरता संबंधी कार्यक्रम नहीं चलाया जा सकता।

यह आवश्यक है कि सार्वजनिक धन का वितरण करते समय सावधानी बरती जाए। कुछ मामलों में धोखाधड़ी से बचने अथवा अनुदान के दुरुपयोग को रोकने के लिए राज्य सरकार की टिप्पणी बहुत सहायक हो सकती है। लेकिन राज्य सरकारों को वह निश्चित तिथि बता दी जानी चाहिए जिसके बाद केन्द्र सीधे ही अग्रिम आवेदनों पर विचार कर सकेगा। अनुदान के पात्र होने पर स्वैच्छिक एजेंसियों से यह नहीं पूछा गया है कि वे किस रूप में अनुदान चाहती हैं। यदि ऐसा किया जाए तो उनमें से अनेक केन्द्र से सीधे अनुदान प्राप्त करने का लाभ उठाएंगी क्योंकि इससे व्यक्तिगत स्वार्थ अपेक्षाकृत कम हो जाता है और धन का वितरण भी अपेक्षाकृत जल्दी होता है। अधिकांश राज्य सरकारों के मामलें में ऐसा नहीं कहा जा सकता।

सफलता आवश्यक

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम भारतीय राष्ट्रीय जीवन का एक ऐसा कार्य है जिसमें बहुत अभिरुचि ली जाएगी। इसका उद्देश्य हमारी तात्कालिक सामाजिक-आर्थिक विकास की समस्या का समाधान है। भारत जैसे विकासशील समाज में इस बात की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि इसके 70% प्रौढ़ निरक्षर हो। साक्षरता केवल पढ़ाई और लिखाई का ही विषय नहीं है बल्कि इसके असीमित लाभ हैं। उसका उद्देश्य सम्पूर्ण मनोविचारों को बदलना है, मध्ययुगीन मनोवृत्ति को आधुनिक बनाना है, स्वास्थ्य और सफाई तथा मानव हित, परिवार नियोजन और कल्याण तथा बच्चों के पालन-पोषण के संबंध में दृष्टिकोण बदलना है। निरक्षरता मध्ययुगीन व्यक्ति को आधुनिक बनने में एक मात्र सबसे बड़ी रुकावट है। भारत की समस्या की व्यापकता और इसके महत्व को देखते हुए 200 करोड़ रुपये का निवेश उचित है और इसे भारतीय जनता का समर्थन प्राप्त है। लेकिन आज जनता आपात्काल की विभीषिका, 1977 के चुनाव परिणामों, प्रमुख पार्टियों के चुनाव घोषणा-पत्रों, शाह आयोग की रिपोर्टों से परिचित है। आज जनता को सतर्क बना दिया गया है और वह सरकार से आशा रखती है। बड़े पैमाने पर असफलता आज की जनता बर्दाश्त नहीं करेगी।

यह एक अच्छी बात है क्योंकि सभी व्यक्ति कड़ी मेहनत करेंगे। प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम शुरू करने से पहले अभी समय है कि इसकी व्यवस्था कर ली जाये कि स्वैच्छिक एजेंसियों को बिना प्रशासनिक झंझट और बिना देरी के अनुदान मिल सकेगा क्योंकि इनके प्रभावी सहयोग पर ही कार्यक्रम की सफलता निर्भर करती है।

●●●

सफल प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम की दिशा में

एच० एस० श्रीवास्तव

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम स्वयं में एक अत्यंत विशाल कार्यक्रम है। यह अभूतपूर्व आकार की एक विशाल परियोजना है जिसको सफलता के लिए धन तथा मानवशक्ति के विशाल साधनों को आवश्यकता होगी।

जिस आयु-वर्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह कार्यक्रम बना है, वह भी कई प्रकार से अद्भुत है और निश्चय ही उससे भिन्न है जिसके लिए हमारी औपचारिक शक्षिक एजेन्सियां तथा संगठन हैं।

यद्यपि इस आयु-वर्ग में ऐसे वयस्क हो सकते हैं जो साक्षर हों, फिर भी ऐसे लोग भी होंगे जो निरक्षर हों और संभवतः पहले ही जीविका चलाते हों। जो लोग पहले ही कुछ शिक्षित हैं परंतु नियमित शिक्षा छोड़ चुके हैं, यह आवश्यक है कि उनके लिए औपचारिक शिक्षा में दाखिलों तथा पत्राचार पाठ्यक्रम के प्रस्तावों पर विचार किया जाए।

इस आयु-वर्ग में शेष लोग, जो निरक्षर हैं, जिन्होंने परिवारिक जीवन में प्रवेश कर लिया है और किसी भी प्रकार का कार्य करके अपनी आजीविका चलाने का प्रयत्न कर रहे हैं, अथवा जो अपनी आजीविका के लिए पूरी तरह अथवा अंशतः दूसरों पर निर्भर करते हैं, वे ही वास्तव में समस्या उत्पन्न करते हैं।

बाद वाले वर्ग को ही शिक्षा प्रदान करने की युक्तियों पर हमें विचार करना है। अतः यह शिक्षा "साक्षरता" और "संख्या" की सीमा से परे होगी। इसका आर्थिक और स्वास्थ्य आधार होगा क्योंकि अच्छा स्वास्थ्य रखना और आजीविका की क्षमता में सुधार लाना ही इस आयु-वर्ग का मुख्य लक्ष्य है।

इस आयु-वर्ग के पास जीवन और इसकी समस्याओं की अच्छी पृष्ठभूमि तथा अनुभव होता है। इसमें पर्याप्त दूरदर्शिता तथा निर्णय लेने की क्षमता होती है। अमूर्त और कल्पनाशील विचारों में वे तरुण बच्चों से अधिक योग्य होते हैं तथा औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने वालों से उनकी सीखने की गति भी अलग होती है।

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम की विषय वस्तु

यदि प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को ऐच्छिक सफलता प्राप्त करनी है तो इसकी विषय-वस्तु का निर्धारण वास्तव में एक कठिन कार्य है, विशेषकर इसलिए क्योंकि **किसी निश्चित एकरूपता** की परिकल्पना नहीं की जा सकती। नहीं 'साक्षरता' की संकीर्ण मानक परिकल्पना ही प्रौढ़ शिक्षा का लक्ष्य हो सकती है, जैसा कि पहले कभी-कभी किया गया था, बावजूद महात्मा गांधी की इस चेतावनी के कि "साक्षरता प्रौढ़ शिक्षा के किसी कार्यक्रम का न तो आदि होना चाहिए न ही अंत।" इस आयु-वर्ग और इसकी **जीवन समस्याओं से संबंधों** के आधार पर यह कार्यक्रम तैयार करना होगा। इस प्रकार ये समस्याएं प्रौढ़ शिक्षा की पाठ्यचर्या का मुख्य केन्द्र होंगी।

इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि इस आयु-वर्ग के लोग कोई भी भ्रान्तिपूर्ण आदर्शवाद नहीं करेंगे, न ही वे किसी सुदूर लाभ की प्रतीक्षा करना चाहेंगे। शिक्षा से निकट भविष्य में होने वाला लाभ उन्हें अधिक रुचिकर लगेगा तथा उन्हें आकर्षित करेगा। अतः इस शिक्षा में चार प्रमुख आधार रखने होंगे :—

1. वर्ग का आर्थिक जीवन।
2. स्वास्थ्य की समस्याएं।
3. सामाजिक और राजनीतिक जागरुकता।
4. साक्षरता।

ये सभी एक-समान संघटक होंगे। इनमें अंतिम अर्थात् साक्षरता को शेष सभी का सहायक होना होगा, विशेषकर क्योंकि पहले के अनुभव से यह पता चला है कि प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों में साक्षरता स्वयं एक उपेक्षित विषय रहा है।

वास्तव में, विगत काल में प्रौढ़ शिक्षा के पारम्परिक कार्यक्रमों की असफलता का मुख्य कारण इनका एकमात्र साक्षरता पर केन्द्रित होना था और हमें इस खतरे से बचना चाहिए।

इस कार्यक्रम में प्रयोग करने के लिए शब्दावली का भी हमें सावधानीपूर्वक चयन करना होगा। कुछ शब्दों और मुहावरों को वर्ग-विशेष कभी भी प्रयोग नहीं करता। उन पर उन्हें जबरन लादना अच्छा नहीं होगा।

इसके अतिरिक्त, ऐसे निरक्षर प्रौढ़ों को यदि हम अशिक्षित मानें तो यह दूसरी भूल होगी। अक्सर उनके जीवन के अनुभव अत्यंत विस्तृत तथा विविधतापूर्ण होते हैं जो ध्यान आकर्षित करते हैं और जिनसे सीखा जा सकता है। उदाहरणार्थ, ऐसे वर्ग के एक सदस्य ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं :—

"जो गुड़ और चावल हम खरीदते हैं, उसकी कीमत विक्रेता द्वारा निर्धारित की जाती है तथा श्रम जिसे हम बेचते हैं उसकी कीमत खरीदार द्वारा निर्धारित की जाती है।" ऐसा क्यों है और क्यों यह परस्पर-विरोध रहने दिया जाता है?

ये कुछ वास्तविक समस्याएं हैं जो उन्हें उलझन में डालती हैं तथा समाजशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों के पास उनकी उलझनों का उत्तर होना चाहिए। इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि आजकल भी इस आयु-वर्ग में अधिकतर लोगों के जीवन में आधुनिकता नाम की कोई वस्तु नहीं और मध्यकालीन और प्राचीन विचार, रीति-रिवाज और परम्पराएं ही उनके व्यक्तित्व और सामाजिक व्यवहार की मार्गदर्शक हैं। **उनमें से काफी लोगों के लिए शिक्षा अभी भी अत्यंत संदिग्ध समझी जाने वाली वस्तु हैं** क्योंकि यह चिरकाल से संजोयी हुई संस्कृति का विनाश करने में उनके द्वारा एक सशक्त उपकरण समझी जाती है। ऐसे लोगों में से एक ने पड़ोस के एक नौजवान मैट्रिकुलेट लड़के का हवाला देते हुए बताया कि लड़के ने उनको तथा उनके पुराने मूल्यों को अत्यंत हीन मानना आरंभ कर दिया है, इसलिए वह नहीं चाहेगा कि उसके बच्चे स्कूल जाएं अथवा वह स्वयं प्रौढ़ शिक्षा कक्षाओं में उपस्थित हो क्योंकि शिक्षा लोगों को दूषित बना देती है। इस आयु-वर्ग के लोगों को वास्तव में अपने **आर्थिक उत्थान** में तथा अपने सामने आने वाली कठिनाइयों का सामना करने की क्षमता में महत्वपूर्ण सुधार करने और सामाजिक अन्यायों पर काबू पाने में अधिक रुचि है। उनमें से बहुत-से सोचते हैं कि वे पढ़ाई-लिखाई के बिना भी आगे बढ़ सकते हैं और बहुत से बढ़ते भी हैं। अतः महात्माजी की सलाह पर चलने का सबसे बड़ा कारण यह भी है। अतः प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का पाठ्यक्रम इस आयु-वर्ग की सामाजिक विशेषताओं, उनकी आवश्यकताओं तथा समस्याओं और उनके व्यवसायों के आधार पर तैयार किया जाना चाहिए।

इसे ऐसा ही होना होगा क्योंकि प्रौढ़ शिक्षा की विषयवस्तु और इसका स्वरूप प्राथमिक शिक्षा की विषय-वस्तु और स्वरूप से बिल्कुल भिन्न है। यह भिन्नता आयु-वर्ग की परिपक्वता तथा उसके जीवन के अनुभव, उसकी सीखने की गति, उसकी दूरदृष्टि तथा दूरगामिता, उसकी अमूर्त और कल्पनात्मक विचारशक्ति और सबसे ऊपर उसके भौतिक दृष्टिकोण के आधार पर है।

एक अन्य विशिष्टता, जो इस कार्यक्रम को ध्यान में रखनी होगी, वह यह है कि जहां शिक्षा को एक नियमित तथा क्रमिक प्रक्रिया माना जाता है, वहाँ प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में शिक्षार्थियों की **छुटपुट और अनियमित** उपस्थिति होगी। इसके साथ ही, इस कार्यक्रम के लिए ग्रामीण पृष्ठभूमि ही वास्तविक पृष्ठभूमि मानी जानी चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को, शहरी दृष्टिकोण से बनाने का कोई भी प्रयत्न इसके उद्देश्यों को विफल कर देगा। हमें ऐसे खतरनाक प्रयत्नों से बचना है।

"माँ और शिशु की देखभाल कार्यक्रम", जो कि पहले बहुत सफल रहा था, प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का एक अच्छा उदाहरण है। इस कार्यक्रम में भावी माताएं, दूध पिलाने वाली माताएं तथा दूध छुड़ानेवाली माताएं शामिल थीं। उस इलाके की सभी महिलाएं इस कार्यक्रम में बहुत दिलचस्पी लेती थीं क्योंकि यह उनकी आवश्यकता थी और वे सभी इससे लाभान्वित होती थीं। इस कार्यक्रम को एक प्रयोग के रूप में शुरु किया गया था तथा लाभार्थियों ने इसके आयोजकों से यह अनुरोध तक किया कि वे इसके समाप्त होने पर उन्हें छोड़ न दें अपितु जाने के बाद भी ऐसा प्रबंध कर दें जिससे यह कार्यक्रम और सुविधाएं जारी रहें। इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि इस परियोजना के एक भाग के रूप में माताओं को साक्षरता की भी कुछ शिक्षा दी गई थी, परंतु यह संयोगवश था और मां तथा शिशु देखभाल के केन्द्रीय कार्यक्रम के सहायक के रूप में था।

कार्य कैसे करें

अब यह सभी ने मान लिया है कि यदि प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को सफल होना है तो उसको औपचारिक संस्थाओं द्वारा सफलतापूर्वक चलाया नहीं जा सकता। इस कार्य को पूरा करने के लिए स्वैच्छिक संस्थाओं के सहयोग की आवश्यकता है परंतु **स्वैच्छिक संस्थाओं से, उनकी स्वतंत्रता तथा परिवर्तनीयता के बावजूद भी, किसी करिश्मे की आशा नहीं की जा सकती।**

एक दूसरी बात जिसका सावधानीपूर्वक ध्यान रखना होगा वह यह है कि कुछ स्थितियों में शिक्षक सीखने वालों से आयु में छोटा हो सकता है और हो सकता है कि वांछित सहयोग स्थापित न हो। अतः आयु में छोटे वर्ग से शिक्षक चुनते समय काफी सावधानी बरतने की आवश्यकता होगी। इस प्रक्रिया में इस बात का भी ध्यान रखना आवश्यक

होगा कि प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम एक पूरे समय का कार्यक्रम नहीं हो सकता, न ही इसमें पूरे समय के लिए नियुक्त कर्मचारी होंगे। हमें इस स्थिति को स्वीकार करना चाहिए कि इसे कर्मचारियों का केवल अवशिष्ट समय और अवशिष्ट ध्यान ही प्राप्त होगा। इन कर्मचारियों को मिश्रित समूहों को मिलाने की समस्या का सामना करना होगा। उनका पहला और तत्काल कार्य संचार के अवरोधों पर काबू पाना होगा। एक अन्य बात जिसका ध्यान रखने की आवश्यकता है वह है—साधन केन्द्रों में आवश्यक तकनीकी साधनों की व्यवस्था ताकि उन्हें जो भी कार्य दिया जाए उसे करने में उनकी असुविधा न हो।

कार्यक्रमों की अर्थव्यवस्था

कार्यक्रम में वित्तीय निवेश पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। प्राथमिक शिक्षा में प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति सामान्य व्यय 80 रुपये के लगभग है। माध्यमिक स्कूल के लिए यह 120 रुपये प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष है। इस कार्यक्रम पर किए जाने वाले व्यय का भी उचित अनुमान लगाया जाना चाहिए और इसके लिए धन दिया जाना चाहिए ताकि कार्यक्रम के गुण में कमी न हो।

शिक्षकों और कार्यक्रमों के बारे में भी विचार किया जाए तो आवश्यक वित्तीय खर्च के बारे में थोड़ी चिन्ता होती है। उदाहरण के लिए, एक प्राथमिक स्कूल अध्यापक 6 दिन के सप्ताह में प्रति दिन लगभग 5 घंटे काम करता है (अर्थात् 30 घंटे प्रति सप्ताह) और लगभग 300 रुपये प्रति मास वेतन पाता है। एक प्रौढ़ शिक्षा अध्यापक को 6 दिन के सप्ताह में लगभग दो घंटे प्रति दिन कार्य करना होगा (हफ्ते में 12 घंटे)। इस प्रकार प्रौढ़ शिक्षा में लगे अध्यापकों का पारिश्रमिक इस कार्यक्रम पर उनके श्रम तथा समय के अनुरूप होना चाहिए, विशेषकर इसलिए क्योंकि वे इस कार्यक्रम पर समयोपरि कार्य करेंगे और स्वभावतः समयोपरि पारिश्रमिक चाहेंगे। इस संबंध में इस बात का उल्लेख किया जा सकता है पारिश्रमिक की यह दर कुछ देशों में कार्य दिवसों में मिलने वाली सामान्य दर से दुगनी है। यह आवश्यक है ताकि कार्य के लिए पारिश्रमिक एक प्रोत्साहन बन जाए न कि शिकायत का कारण।

प्रशासकीय तथा अधिकारी व्यवस्था भी कार्यक्रम में बहुत बोझिल नहीं होनी चाहिए। अतः इस कार्यक्रम में पारिश्रमिक व्यवस्था के क्रम के स्थान पर किए गए कार्य की महत्ता के आधार पर दिया जाना चाहिए।

कार्यक्रम की सफलता के लिए शर्तें

आर्थिक लाभ अथवा समृद्धि प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम की सम्भवतः मुख्य लक्ष्य होगी। यह कार्यकुशलता सुधार अथवा शिक्षार्थियों की कमाने की क्षमता में सुधार पर निर्भर करेगा। ये सब मिलकर संबंधित वर्ग की मुख्य प्रेरणा होंगे। इस संदर्भ में यह याद रखना जरूरी होगा कि प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में सीखने वाला और सिखाने वाले दोनों ही आकस्मिक होंगे जिनके लिए प्रेरणा ही एक मुख्य संचालन शक्ति होगी। इसके अतिरिक्त, यदि कार्यक्रम पर अच्छी तरह विचार, आयोजन तथा इसका पालन नहीं किया गया तो चाहें हम कार्यात्मक कार्यक्रम की व्यवस्था भी करें तो भी सीखने वाले को उसकी कोई उपयोगिता और सिखाने वाले को उससे जीविका प्राप्त नहीं हो सकेगी क्योंकि भूमिहीन श्रमिकों अथवा आकस्मिक दैनिक मजदूर जैसे वर्गों की तरह जो केवल अपने शारीरिक श्रम को बेचकर ही गुजारा करते हैं, इस कार्यक्रम से संबंधित लोग भी अत्यधिक उपयोगी कार्यात्मक कार्यक्रमों को भी अधिक प्रेरणादायक नहीं पाएंगे।

इस संबंध में भी कई शंकाओं को दूर करना है। वे यह हैं कि इस कार्यक्रम से संबंधित लोगों द्वारा शिक्षा को आम तौर पर इस प्रकार का माना जाता है जैसे वह विशिष्ट-वर्ग और शासक वर्ग के लिए बनी कोई वस्तु हो। ग्रामीणों के द्वारा शिक्षित लोगों का ऐसा अत्यधिक संदिग्ध वर्ग माना जाता है जिसके इरादों का पता नहीं होता और जिसके बारे में कोई पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता है। यह भय भी व्यक्त किया जाता है कि शिक्षा उन्हें अपनी मान्यताओं और संस्कृति को छोड़ने के लिए भी उत्तेजित करती है। यह उन कारणों में से एक है कि ऐसे वर्ग द्वारा जिसे शिक्षा के अभाव के कारण कष्ट उठाने पड़ते हैं प्रौढ़ शिक्षा के लिए स्पष्ट मांग नहीं की जाती।

प्रौढ़ शिक्षा में मूल्यांकन

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में मूल्यांकन की एक विशेष भूमिका होगी। इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में मूल्यांकन की प्रक्रिया तथा प्रणाली भी कुछ विशेष समस्याएं उत्पन्न करेगी जिन पर काबू पाने के लिए हमें मार्ग ढूंढना चाहिए। ये समस्याएं इन कारणों से उठ सकती हैं :—

—सीखने वालों का विविध वर्ग।
—संरचनात्मक ज्ञान अर्जन परिस्थितियों का अभाव।
—शिक्षार्थियों के सीखने की दर में विभिन्नताएं।
—शिक्षार्थियों में उपलब्धियों का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने को प्रेरणा का अभाव।
—मूल्यांकन को विशेष और बहुधा अविद्यमान साधनों की आवश्यकता जिन्हें अभी बनाना है।
—शिक्षा के अस्पष्ट परिणामों की प्रधानता।
—यह कार्य करने के लिए आवश्यक मूल्यांकन विशेषज्ञता की अनुपलब्धता।

परन्तु इसके साथ यह कहना भी गलत होगा कि प्रौढ़ शिक्षा में मूल्यांकन सम्भव नहीं है। मूल्यांकन की अौपचारिक

पद्धतियां तथा प्रक्रियाएं निश्चय ही इस परिस्थिति में लागू नहीं होंगी, विशेषकर क्योंकि इसमें स्वयं सीखने की प्रक्रिया इतनी व्यवस्थित नहीं होती जितनी कि औपचारिक शिक्षा में।

प्रौढ़ शिक्षा में मूल्यांकन के उद्देश्य भी औपचारिक शिक्षा से काफी भिन्न होंगे। पहली बात यह कि सीखने वाले की सफलता के स्तर के निर्धारण के लिए ही इस स्तर पर मूल्यांकन नहीं किया जाएगा। इस सीखने वालों की उपलब्धि के स्तर तथा उनकी प्रवीणता को बढ़ाना तथा सुधारना भी होगा। दूसरे, सीखने वाले की योग्यताओं और कमजोरियों का पता लगाने और उन्हें दूर करने और उनके उत्तम प्रशिक्षण की व्यवस्था पर विशेष जोर देना होगा। इस प्रकार मूल्यांकन सीखने वालों को उनकी कमियों पर काबू पाने और जिन क्षेत्रों में वे विशेष रुचि और झुकाव रखते हैं उनमें अधिक विशिष्टता पाने में सहायता करेगा। तीसरे, मूल्यांकन को व्यक्तियों में कार्यकुशलता और उपलब्धि में सुधार लाने की उनकी योग्यता के लिए विश्वास उत्पन्न करना होगा। निरंतर मूल्यांकन से, जिसमें शिक्षार्थी बाद के मूल्यांकन में अच्छा कार्य कर सकता हो, ही उनके लिए यह कार्य कर सकेगा।

मूल्यांकन की किस्म भी अलग होगी पहले यह उपलब्धि के मूल्यांकन तक ही सीमित नहीं होगा अपितु इसमें प्रवीणता भी शामिल होगी। दूसरे, क्योंकि प्रौढ़ शिक्षा में मूल्यांकन का संबंध प्रवीणता, कौशल तथा गति के स्तर के निर्धारण तथा व्यक्ति की अर्जन शक्ति में सुधार से होगा इसलिए (विभिन्न संबद्ध स्तरों पर मूल्यांकन के द्वारा) कुछ आधार आंकड़े तथा उत्तरोत्तर सुधार के बारे में कुछ आंकड़े एकत्र करने होंगे। ऐसा करने के लिए बाद में आवधिक परीक्षण करने होंगे। **तीसरे**, मूल्यांकन का विषय केवल सीखने के परिणामों तक ही सीमित नहीं रहेगा बल्कि उसके लिए अपनाए गए साधनों को भी इसमें ध्यान रखना होगा। इस प्रकार, **कार्य के परिणाम** और कार्य की प्रक्रिया दोनों का ही मूल्यांकन करना होगा। मूल्यांकन के लिए साधन तैयार करने होंगे। प्रगति तथा अभिलेखों की देखभाल के लिए और उनकी व्याख्या तथा सूचना के लिए विशेष प्रक्रिया तथा प्रोफार्मा तैयार करने होंगे। इनमें से अन्तिम, सीखने वालों की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण होगा। शिक्षार्थियों की रुचि इसमें नहीं होगी कि उन्होंने कितने अंक प्राप्त किए हैं। ये उनके लिए वास्तव में कोई अर्थ नहीं रखते। वे यह जानना चाहेंगे कि उनके कार्य का स्तर कैसा है, उन्हें किन क्षेत्रों में अधिक कार्य करने की आवश्यकता है, वे क्षेत्र क्या हैं जहां उनकी क्षमता सबसे अधिक हैं, उनकी उन्नति कैसी है, इत्यादि। मूल्यांकन से उन्हें यह जानकारी मिल सकती है।

प्रौढ़ शिक्षा में **मूल्यांकन की प्रक्रिया** भी अद्भुत होगी, यह परिस्थितिवश और वैयक्तिक होगा। समूह को मूल्यांकन के लिए एक स्थान पर लाना और उससे वही अभ्यास कराना सम्भव नहीं होगा। सीखने वालों की उपलब्धि निपुणता को सीखने की वास्तविक परिस्थितियों में ही मूल्यांकन करना होगा, यहां तक कि प्रत्येक के लिए एक जैसा उपकरण भी नहीं हो सकता।

क्योंकि विभिन्न सीखने वालों में सीखने की गति विभिन्न होगी, इसलिए जब सीखने वाले अपने आपको मूल्यांकन के लिए तैयार समझें, तभी स्वयंगामी (सेल्फ पेस्ड) मूल्यांकन को अपनाना होगा। इस प्रकार के मूल्यांकन के लिए कोई निश्चित समय अथवा समय-सारिणी नहीं हो सकती। प्रवीणता के जिस स्तर की आशा की जाती है उसका कुछ प्रदर्शन किया जा सकता है और सीखने वाले उस स्तर तक पहुंचने का प्रयत्न कर सकते हैं। जब वे समझें कि वे उस स्तर तक पहुंच गए हैं तब वे परीक्षा के लिए कह सकते हैं। सहपाठियों द्वारा प्रदर्शन, शिक्षक के प्रदर्शन से सदैव बेहतर प्रेरणा देता है। किसी वयस्क के लिए आत्म-मूल्यांकन की एक निश्चित भूमिका होती है, विशेषकर उस प्रेरित वयस्क के लिए जो अपने कार्य की उसी क्षेत्र में लगे अन्य वयस्कों के कार्य से तुलना करना चाहता हो। **सहकर्मियों द्वारा मूल्यांकन** की भी एक रचनात्मक भूमिका होगी, विशेषकर क्योंकि कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाला प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य में आगे बढ़ने को उत्सुक होगा। इस स्थिति में सहकर्मी उत्तम मूल्यांकन करने वाले सिद्ध हो सकते हैं जो तत्काल मार्गदर्शन भी कर सकते हैं। कुछ सहकर्मियों का तुलनात्मक अच्छा कार्य सीखने वालों के लिए बड़ा प्रेरणादायी हो सकता है।

उपरोक्त विचार-विमर्श हमें इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि प्रौढ़ शिक्षा को कुछ **विलक्षण** विशेषताएं होनी चाहिएं। इसे **अनौपचारिक, लचीला, व्यक्तिगत, अनगढ़** तथा **तुरंत** होना चाहिए तथा जिनका **मूल्यांकन हुआ हो उनके द्वारा इसे सहायक समझा जाना चाहिए।** एक समान योग्यताओं और गुणों के लिए हम प्रत्येक व्यक्ति का एक साथ मूल्यांकन नहीं कर सकते। हमें मूल्यांकन की जटिल तकनीकें, उपकरण और प्रक्रियाओं को तैयार करने और उनको उपयोग में लाने की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि इस क्षेत्र में उनका विशेष महत्व नहीं होगा, कार्य के लिए बस अनगढ़ तथा तुरंत मूल्यांकन काफी होगा।

निष्कर्ष में यह भी बता दिया जाना चाहिए कि **प्रौढ़** शिक्षा जैसे क्षेत्र में **शिष्य मूल्यांकन** ही पर्याप्त नहीं है। प्रौढ़ शिक्षा में मूल्यांकन में **कार्यक्रम मूल्यांकन** को भी शामिल करना होगा ताकि इसका कार्यक्रम और **सुधर** सके तथा सुदृढ़ बन सके। ऐसा **कार्यक्रम मूल्यांकन** हमें ऐसे क्षेत्र पता लगाने में अत्यंत सहायक हो सकता है जहां अतिरिक्त सामग्री का प्रयोग करना है या उनमें तेजी लाना है, जहां त्रुटियों को दूर करना है, जहां कमियों पर काबू पाना है और जहां कार्यक्रम को वास्तविक रूप से सफल बनाने के लिए दृष्टिकोणों को **सुदृढ़** करना है। ●●●

भारत में प्रौढ़ शिक्षा : भूत तथा भविष्य

वी० एस० माथुर

"प्रौढ़ शिक्षा राष्ट्रीय महत्व का कार्य है और मेरा हमेशा यह विचार रहा है कि शिक्षा को शहरों तथा नगरों तक ही सीमित रखने के कारण देश की उन्नति अवरुद्ध हुई है।"

——रवीन्द्रनाथ टैगोर

भारत में प्रौढ़ शिक्षा की समस्या मूलतः उन प्रौढ़ों में साक्षरता के विस्तार की समस्या है जिनमें से अधिकतर अपने बचपन में स्कूल कभी नहीं गए। भारत में ऐसे लोगों की संख्या बहुत बड़ी है। हमारा बुनियादी उद्देश्य उनको खाली समय के लाभप्रद उपयोग के लिए भी शिक्षित करना है। अतः हमारी समस्या उन विकसित देशों की अपेक्षा कुछ भिन्न है जहां यह (प्रौढ़ शिक्षा) उनकी पूर्व शिक्षा का पूरक है। अतः यहां समस्या का निदान अलग होगा। (1) जो प्रौढ़ पहले ही साक्षर हैं अथवा जो उपरोक्त के कारण साक्षर हुए हैं उनको अपने अध्ययन को जारी रखने तथा ऐसा करने के लिए उनको सुविधाएं प्रदान करना, और (2) जो प्रौढ़ उच्च अध्ययन की क्षमता दिखाते हैं उनकी शिक्षा के उच्च स्तर तक जाने में सहायता करना—समस्या के इन पहलुओं को भी एक साथ निपटाना है।

प्रौढ़ों की उदासीनता

औसत भारतीय श्रमिक में साक्षर बनने के प्रति एक उदासीनता होती है क्योंकि इससे उसे कोई प्रत्यक्ष लाभ दिखाई नहीं देता। अतः हमारा पहला कर्त्तव्य इस उदासीनता को दूर करना है और उसमें यह विचार पैदा करना है कि शिक्षा जीवन में ताजगी लाती है और यह "पूर्ण जीवन" का एक भाग है। यह एक लम्बी और कठिन प्रक्रिया है। गांवों में सोदाहरण भाषण तथा चलता-फिरता सिनेमा इस दिशा में सहायक हो सकते हैं। रेडियो का भी प्रयोग किया जा सकता है। इस काम के लिए कोई भी प्रयत्न बड़ा नहीं है क्योंकि हमारी सभी योजनाएं असफल होंगी यदि प्रौढ़ अपनी इच्छा से प्रौढ़ केन्द्र में नहीं आता।

ऐतिहासिक समीक्षा

भारत में अगस्त, 1947 में स्वतंत्रता के बाद प्रौढ़ शिक्षा के लिए काफी कार्य हुआ है। अंग्रेज भी इस समस्या से परिचित थे और स्वतंत्रता-पूर्व भारत में कुछ योजनाएं शुरू की गई थीं। उन दिनों में "एक-एक को पढ़ायें" कार्यक्रम काफी लोकप्रिय था। पंजाब सरकार की तरह कई राज्य सरकारों ने सरकारी कर्मचारियों के लिए यह आवश्यक बना दिया था कि स्थायीकरण से पहले वे इस आंदोलन में भाग लेने का प्रमाण दें। सन् 1931—41 की अवधि के दौरान साक्षरता की प्रतिशतता में 5% की वृद्धि हुई। यह संख्या सन् 1921—31 के दौरान की संख्या से निश्चित रूप से अधिक थी। सन् 1938-39 में 4733 प्रौढ़ स्कूल/कक्षाएं थीं जिनमें 1,44,983 प्रौढ़ छात्र थे।

सन् 1947 से भारत में साक्षरता में वृद्धि 0.75% प्रति वर्ष की दर से हुई है। सन् 1951, 1961 तथा 1968 के लिए यह संख्या क्रमशः 16.6%, 23.7% तथा 32.00% थी। प्रगति की वर्तमान दर से अनुमान यह है कि 1979 में साक्षरता 35% तथा 1981 में 49% बढ़ जाएगी। यद्यपि ये आंकड़े प्रतिशतता में अच्छी वृद्धि दर्शाते हैं, फिर भी वास्तविक संख्या के हिसाब से 1951 की अपेक्षा 1967 में हमारे देश में 6 करोड़ अधिक निरक्षर थे। ऐसा मुख्यतः इस कारण हुआ है कि साक्षरता जनसंख्या में वृद्धि के अनुरूप नहीं बढ़ी है। भारत की जनसंख्या 2.1% प्रति वर्ष की दर से बढ़ रही है, जबकि साक्षरता केवल 0.75% प्रति वर्ष की दर से बढ़ रही है।

साक्षरता की कोटि भी उत्साहजनक नहीं रही है। "पढ़े-लिखे" कहलाने वाले अधिकतर लोग बड़ी मुश्किल

से हस्ताक्षर कर सकते हैं। साक्षर जनसंख्या के केवल 3% को प्राथमिक पढ़ाई और लिखाई की सुविधाएं प्राप्त हैं। केवल 10% ने उपयुक्त स्तर प्राप्त किया है। इसके अतिरिक्त, यह बात काफी निराशाजनक है कि पिछले वर्षों के दौरान पुरुष और महिला साक्षरता के अंतर में वृद्धि हुई है। सन् 1951 में पुरुष तथा महिला साक्षरता में अंतर 17.0% था परंतु 1971 में यह अंतर 21.5% हो गया। ऐसा पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की साक्षरता में कमी के कारण हुआ। साक्षरता की समस्या शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्र में अधिक जटिल है। 1951 में शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में अंतर 22.8% था जो कि 1971 में 28% तक बढ़ गया। इससे यह स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता में वृद्धि की दर शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा कम है।

नया अर्थ

मेरे विचार से भारत में न्यूनतम साक्षरता का अर्थ होना चाहिए कि एक साक्षर व्यक्ति अपनी मातृभाषा में अपना नाम लिखने के साथ साधारण भाषा पढ़ने-लिखने तथा साधारण अंक गणित और वर्तमान गतिविधियों का ज्ञान भी रखता हो। इस देश में वास्तव में प्रौढ़ शिक्षा की धारणा बदलती रही है। स्वतंत्रता-पूर्व काल में (अगस्त, 1947 तक) केवल प्राथमिक पढ़ाई और लिखाई पर ही ज़ोर दिया गया। प्रौढ़ शिक्षा को एक नया अर्थ और दिशा प्रदान की गई है। इसे अब 'सामाजिक (प्रौढ़) शिक्षा' कहा जाता है जो शायद इसके विस्तृत सामाजिक महत्व तथा अर्थ के कारण है। जैसा कि "टीचर्स हैन्ड-बुक आफ सोशल एजूकेशन" नामक प्रकाशन में कहा गया है, राष्ट्र को लाभ पहुंचाने के लिए, इसे अपने मुख्य उद्देश्य की आवश्यक पूर्ति करनी चाहिए, अर्थात्, "सामाजिक मेलमिलाप", "राष्ट्रीय दक्षता" तथा "राष्ट्रीय संकल्प" का विकास।

तथापि, यह समझ लेना चाहिए कि प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में साक्षरता सभी कार्यों का आधार है। मेरे विचार में, प्रतिदिन डेढ़ घंटे के कार्य से लगभग छः महीने में प्रौढ़ को कुछ प्रवीणता प्राप्त हो जानी चाहिए। इसके बाद एक वर्ष और उच्च कार्य किया जा सकता है।

आवश्यक सामग्री

मेरे विचार से साक्षरता के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है उपयुक्त साहित्य का प्रकाशन। हमारे देश में नव-साक्षरों के लिए साहित्य के प्रकाशन में काफी अच्छा कार्य हुआ है। यह अति आवश्यक है कि इसके माध्यम से प्रौढ़ों के सामान्य ज्ञान में बढ़ोतरी के साथ-साथ उनके व्यवसाय में अच्छे तरीकों के बारे में उन्हें लाभदायक सूचना दी जाए। ऐसे साहित्य के प्रकाशन का कार्य आवश्यक कार्यक्रम के रूप में न सिर्फ केन्द्र द्वारा बल्कि राज्य सरकारों और अन्य सामाजिक एजेन्सियों द्वारा भी किया जाना चाहिए।

यदि हम प्रौढ़ों के लिए अच्छे अनुवर्ती अवसर प्रदान करना चाहते हैं तो पुस्तकालय आंदोलन भी आवश्यक है। संयुक्त पंजाब में बहुत अच्छा कार्य हुआ था और आज अधिकतर शहरों में, बड़े कस्बों में, यहां तक कि दूर-दराज के स्थानों में भी पुस्तकालय हैं। यह भी आवश्यक है कि पुस्तकालयों में सिर्फ पत्रिकाएं तथा पुस्तकें ही न हों बल्कि वे बहुत आकर्षक स्थान हों जो कि लोगों को 'स्वर्ग' लगें। इन स्थानों का प्रबंध इस प्रकार से होना चाहिए कि लोग अपना खाली समय लाभदायक और प्रेरणात्मक वातावरण में बिता सकें। यदि कुछ पढ़ने की सामग्री भोजनालयों में जहां आमतौर से प्रौढ़ खाने के लिए आते हैं उपलब्ध की जा सके तो अच्छा होगा। और भी अच्छा होगा यदि पुस्तकें आदि पब्लिक बसों तथा रेलवे के डिब्बों में उपलब्ध की जाएं। पढ़ने की सुविधाएं प्रौढ़ मरीजों को अस्पतालों तथा नाई की दुकानों पर भी दीं जा सकती हैं। दिल्ली की चलती-फिरती लाइब्रेरी के नमूने पर चलते-फिरते पुस्तकालय और भी लाभदायक हो सकते हैं।

राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम

यह वास्तव में बहुत अच्छा है कि वर्ष 1978 में प्रौढ़ शिक्षा और साक्षरता की ओर ध्यान दिया जा रहा है। राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम 2 अक्टूबर से शुरू हुआ है।

हमें यह मानना होगा कि पिछले 30 वर्षों के दौरान ऊपरी कार्यों के बावजूद प्रौढ़ शिक्षा नेतृत्व, जन-सहयोग और आर्थिक साधनों की कमी के कारण उन्नति नहीं कर रही है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा बोर्ड प्रौढ़ शिक्षा की समस्या की ओर कुछ ध्यान दे रहा है जो कि भारतीय शिक्षा का एक अभिन्न अंग बन चुकी है। इस अवसर पर जबकि नये कार्यक्रम को शुरू किया जा रहा है शैक्षिक संस्थाओं, विशेषकर विश्वविद्यालयों तथा कालेजों के लोगों को, इस बारे में सोचना चाहिए कि किस तरह से वे प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में सहायता कर सकते हैं।

विश्वविद्यालय निश्चित रूप से प्रौढ़ शिक्षा की योजनाओं को या तो अपने शिक्षा विभाग अथवा एक नियमित प्रौढ़ शिक्षा विभाग के माध्यम से चला सकते हैं; जैसा कि जयपुर तथा मद्रास में किया गया है। प्रौढ़ शिक्षा का कार्य विश्वविद्यालयों तथा डिग्री कालेजों के साथ-साथ उच्चतर माध्यमिक तथा हाई स्कूलों द्वारा किये जाने वाले सांस्कृतिक तथा सामाजिक सेवा का एक महत्वपूर्ण भाग

बन सकता है । मेरे विचार से प्रत्येक संस्था अपने अवकाश काल में एक सामुदायिक केन्द्र के रूप में कार्य कर सकती है ।

कार्यकर्ता

यह कहना गलत होगा कि प्रौढ़ शिक्षा का कार्य किसी के भी द्वारा बिना किसी प्रशिक्षण के किया जा सकता है । प्रौढ़ शिक्षा के शिक्षकों को बड़ी संख्या में प्रशिक्षित करना होगा । इसी के अनुसार मेरा विचार है कि प्रौढ़ शिक्षा सभी शिक्षक शिक्षा, जूनियर बेसिक स्तर से एम० एड० तक के पाठ्यक्रमों की पाठ्यचर्या का एक भाग होनी चाहिए । यह नियमित प्रशिक्षण तथा पाठ्यचर्या का एक आवश्यक भाग होना चाहिए, जे० बी० टी० पाठ्यक्रम में इस प्रकार संशोधन किया जा सकता है कि प्रशिक्षण पाने वाले शिक्षक कुछ समय तक प्रौढ़ों को पढ़ा सकें । यदि जरूरी हो तो, खाली समय में यह काम करने के लिए उनको कुछ आर्थिक लाभ दिया जा सकता है ।

बी० टी० तथा बी० एड० पाठ्यक्रमों में सामाजिक शिक्षा को एक विकल्प बना दिया जाना चाहिए अथवा इसे शैक्षिक मनोविज्ञान और शिक्षण के सामान्य तरीकों के पेपरों में शामिल किया जा सकता है ताकि स्नातक शिक्षक सिर्फ इस क्षेत्र में जूनियर शिक्षकों के कार्य की देखरेख करने में प्रवीण हो जाएं बल्कि वे प्रौढ़ शिक्षा का कार्य स्वतन्त्र रूप से कर सकें ।

एम० एड० के स्तर पर एक ऐच्छिक पेपर होना चाहिए परन्तु यह स्वतन्त्र तथा पूर्ण होना चाहिए जिसमें प्रौढ़ शिक्षा में व्यावहारिक कार्य शामिल होना चाहिए ताकि हमें उचित प्रकार के गाइड, आयोजक तथा पर्यवेक्षक मिल सकें ।

मेरे विचार से शिक्षकों (तथा विद्यार्थियों) की सहायता से उनके अवकाश काल के दौरान साक्षरता अभियानों का आयोजन किया जा सकता है । कालेजों में, विशेषकर प्रशिक्षण कालेजों तथा डिग्री कालेजों में साक्षरता क्लब खोले जा सकते हैं जहां विद्यार्थी साक्षरता अभियान में स्वैच्छिक रूप से भाग ले सकते हैं । मैंने ऐसे कार्यक्रम शिक्षा कालेज, पटियाला और चंडीगढ़ में अपने आवास के दौरान शुरू किये थे और हमें बड़े उत्साहजनक परिणाम प्राप्त हुए थे ।

जेलों में प्रौढ़ शिक्षा

जेलों में प्रौढ़ों की अवहेलना मुझे बहुत शोचनीय लगती है । जेलों को चाहिए कि वे अपने कैदियों को सुधारें न कि उन्हें "पक्के अपराधी" बनाएं जैसा कि आज अधिकतर होता है । जेल में उन्हें कोई वास्तविक शिक्षा नहीं दी जाती है और जैसा जीवन वे जी रहे हैं उसमें सुधार की आवश्यकता है । यह समस्या हमारी प्रौढ़ शिक्षा योजनाओं का एक महत्वपूर्ण भाग होनी चाहिए । आखिरकार जेल के सभी प्रौढ़ों को भी शिक्षा तथा अच्छे जीवन का बराबर का हक है । हम कौन होते हैं उन्हें उनके अधिकार से वंचित करने वाले ? "अपराधी" के रूप में उन्हें हमारी सहानुभूति की आवश्यकता है, न कि उपेक्षा और निरादर की ।

मेरा विश्वास है कि जेलों का अन्दर का भाग एक सुधार (रिफार्मेटरी) स्कूल की तरह दिखलाई देना चाहिए । यह सच है कि आजकल हमारे कैदियों को कुछ दस्तकारी सिखाई जाती है परन्तु जिस तरह से उसे सिखाया जाता है वह इंसानियत से दूर है । एक 'अपराधी' जेल से छूटने के बाद आदर का जीवन नहीं बिता सकता क्योंकि पहले तो उसने कोई उपयोगी काम सीखा नहीं है, दूसरे समाज उसे माननीय सदस्य के रूप में स्वीकार नहीं करता जिसे हमारी सहानुभूति तथा सहयोग की आवश्यकता है । वे अपने आप को अवांछित व्यक्ति के रूप में पाते हैं तथा यह विचार उनके जीवन में विनाश लाता है । "जेल" ही उन्हें "स्वर्ग" लगता है ।

हम अपने उद्देश्य को कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? "अपराधी" की अच्छी शिक्षा ही एक तरीका है । नियमित जेल मनोवैज्ञानिक एक उपयोगी शिक्षक हो सकता है तथा अपराधियों की देखभाल और मार्गदर्शन काफी आसान और आनन्ददायक कार्य हो सकता है यदि मनो-विश्लेषक की सहायता ली जाये । मेरा विश्वास है कि कोई व्यक्ति अपराधी तभी बनता है जब ऐसा करने के लिए परिस्थितियां उसे मजबूर कर देती हैं अथवा उसे शुरू में उचित मार्गदर्शन नहीं मिलता और इसके परिणामस्वरूप उसमें सामाजिक तथा आर्थिक मूल्यों के बारे में गलत धारणाएं बन जाती हैं । मनो-विश्लेषक आसानी से अपराधी के व्यवहार के कारण खोज सकता है और यदि सही ढंग से उपचार किया जाए तो अपराधी को सुधारा जा सकता है । कम-से-कम इस क्रिया में प्रयत्न करने में कोई नुकसान नहीं है ।

कुछ अनुभवी शिक्षकों को उचित प्रशिक्षण तथा मानसिक रूप से तैयार करके जेल में रहने वालों को शिक्षा देने के लिए नियुक्त किया जा सकता है । शायद हमें उन्हीं में से कुछ व्यक्ति शिक्षकों की सहायता के लिए मिल सकें हैं । यदि वे अन्य लोगों की तरह पढ़-लिख सकें तो हो सकता है उन्हें उस हीन-भावना से मुक्ति मिल जाये जिसके अन्तर्गत वे काम कर रहे हैं । नैतिकता तथा धर्म पर पाठ, सामान्य ज्ञान पर वार्ताएं और विशेष रेडियो, तथा सिनेमा कार्यक्रम के साथ ग्रामोफोन आदि अपराधियों को बदलने में काफी सहायक हो सकते हैं । उनमें यह विचार भरा जाना चाहिए कि वे "अभागे", लाचार तथा दीन जीव

(शेष पृष्ठ 19 पर)

प्रौढ़ शिक्षा : शिक्षकों के लिए एक चुनौती

करुणा शंकर मिश्र

हमें दो प्रकार के प्रौढ़ व्यक्ति मिलते हैं : कुछ लोगों ने कोई स्कूल शिक्षा प्राप्त नहीं की जबकि अन्य व्यक्तियों को जो शिक्षा दी गई वह उनकी विकासात्मक आवश्यकताओं के लिए अनुपयुक्त रही। आज प्रत्येक प्रौढ़ व्यक्ति विश्व में तेजी से हो रहे परिवर्तनों और समाज की बढ़ती हुई जटिलताओं से परिचित होना चाहता है। वह अपनी वैयक्तिक समृद्धि, व्यावसायिक प्रगति तथा सामाजिक और राजनीतिक जीवन में प्रभावी ढंग से भाग लेने के लिए अवसर की तलाश में रहता है। एक ऐसे अध्ययन वातावरण का निर्माण करना है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को स्वतः अध्ययन जारी रखने का समान अवसर प्राप्त हो सके। मानव शक्ति के विकास द्वारा सामुदायिक संसाधनों को समृद्ध करना होगा। व्यक्तियों और समाज में विद्यमान पर्यावरणीय स्थितियों और परिवर्तन की दिशा तथा आवश्यकता के प्रति जागरुकता पदा करनी है। प्रजातांत्रिक कार्य और प्रौढ़ों के सक्रिय सहयोग द्वारा और अधिक मात्रा में वैयक्तिक, सामाजिक, और आर्थिक विकास प्राप्त करना है। उनकी भावनाओं को सुदृढ़ करना तथा उनमें शिक्षित विचारों का सृजन करना है। उन्हें समुदाय के सदस्यों के रूप में तथा व्यक्तियों के रूप में अपने अधिकारों, कर्त्तव्यों और नागरिकता के प्रति सजग बनाया जाना चाहिए। उनमें विवेचनात्मक सहनशील वैज्ञानिक दृष्टिकोण और विवेकशील उद्देश्य, रचनात्मक और वैज्ञानिक विचारधारा का विकास करना है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम आरंभ किया जाना है और ऐसे कार्यक्रम की सफलता, काफी सीमा तक, शिक्षकों की भूमिका पर निर्भर करती है। जिस प्रकार धुरी के बिना पहिया कोई कार्य करने में असमर्थ रहता है उसी प्रकार उपयुक्त शिक्षकों के अभाव में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम भी सफल नहीं हो सकता।

प्रौढ़ शिक्षकों के गुण

प्रौढ़ छात्रों द्वारा अनुशासन का पालन करना कठिन है और वे अधिकारियों के आदेशों को यूंही स्वीकार नहीं कर सकते। उनका विकास प्रजातांत्रिक वातावरण में हुआ है, जिसमें वे सरकार के आदेशों की आलोचना करने में स्वतंत्र हैं तथा उनके संबंध में आपत्ति उठा सकते हैं। उनका मस्तिष्क कोरा कागज नहीं है जिस पर शिक्षक जैसा चाहे वैसी छाप छोड़ सके। शिक्षक-अध्ययन प्रक्रिया में उनका सक्रिय रूप से भाग लेना आवश्यक है। उन्हें परिपक्व अनुभव होता है। फिर भी, शिक्षक को अपने छात्रों के साथ समान आधार पर व्यवहार करना चाहिए। उसे शैक्षिक प्रक्रिया के अनुभव बांटने की एक प्रक्रिया समझनी चाहिए। शिक्षक के अनुभव में, किसी विशेष शैक्षिक विषय की विषयवस्तु, समस्याओं और प्रणालियों की विस्तृत जानकारी शामिल है। उसे इस जानकारी को अपने छात्रों के बीच इस प्रकार बांटना चाहिए कि उसका उनके अपने जीवन के ज्ञान तथा उसकी समस्याओं की दृष्टि से कुछ अर्थ हो।

प्रौढ़ छात्र उन समस्याओं का हल खोजने में रुचि रखते हैं, जो उनके अपने जीवन और समाज के जीवन को प्रभावित करती है, जिसमें वे रहते हैं। यदि शिक्षक को अपने छात्रों का विश्वास कायम रखना है तो उसे अपना पूरा ध्यान तुरंत उन समस्याओं पर देना चाहिए। केवल व्याख्यान तैयार करने और देने की योग्यता ही काफी नहीं है। उसका ज्ञान विस्तृत और गहन होना चाहिए और केवल विषयों के संबंधित क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं होना चाहिए। क्योंकि प्रौढ़ों का संबंध संकीर्ण दृष्टि से, शैक्षिक विषयों तक ही सीमित नहीं होता अपितु उसका संबंध अपने हितों से होता है, और उनकी समस्याओं का समाधान सदैव किसी एक विषय विशेष के अंदर ही नहीं खोजा जा सकता, उदाहरण के लिए विज्ञान में प्रौढ़ छात्र का संबंध केवल उसके सिद्धांतों और प्रणालियों तक ही नहीं रहता बल्कि उनके अनुप्रयोग तथा मानव हितों पर उनके प्रभावों से भी होता है।

शिक्षक को सामाजिक व्यवस्था का ज्ञान होना चाहिए जिसमें उसका विषय उसके छात्रों के लिए रुचिकर एवं महत्वपूर्ण होने की संभावना है। उसे प्रौढ़ शिक्षा के महत्व में विश्वास रखना चाहिए तथा इसकी ऐतिहासिक

पृष्ठभूमि तथा उद्देश्यों से परिचित होना चाहिए । उसे मत-भिन्नताओं का आदर तथा प्रत्येक बात का विवेचनात्मक तथा निष्पक्ष दृष्टि से मूल्यांकन करना चाहिए । उसे इस योग्य होना चाहिए कि वह यह देख सके कि अमुक विषय किस दिशा में चल रहा है । उसे किसी विषय की प्रेरक शक्ति का ध्यान रखने में कभी नहीं चूकना चाहिए ताकि जिस दिशा में वह चल रहा है उसके बारे में निर्णय और निदेश दे सकें । उसे परिपक्व छात्रों की कठिनाइयों को समझने के योग्य होना चाहिए और उसे प्रौढ़ अध्ययन की विशेष समस्याओं की जानकारी होनी चाहिए । उसके अंदर मानव सहानुभूति तथा समझ होनी चाहिए ताकि वह अपने छात्रों के विषय में अनुभव प्राप्त कर सके और उनकी विशेष रुचियों का पता लगा सके तथा उन उद्देश्यों को समझ सके जिनके कारण प्रौढ़ व्यक्ति अध्ययन में रुचि लेते हैं ।

शिक्षकों की भूमिका

शिक्षा एक आजीवन प्रक्रिया है । प्रत्येक प्रौढ़ व्यक्ति को चाहे उसने प्राथमिक स्कूल स्तर पर ही पढ़ाई छोड़ दी हो या वह इंटरमीडिएट अथवा कालेज प्रशिक्षण अथवा स्नातक डिग्री प्राप्त वाला व्यक्ति हो, आवधिक अध्ययन द्वारा अपना ज्ञान और दक्षता बढ़ाने के लिए अवसर और प्रेरणा प्राप्त होनी चाहिए । प्रेरणा के बिना प्रौढ़ शिक्षा सफल नहीं हो सकती । प्रौढ़ों को अपने आप ही शिक्षा प्राप्त करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता । प्रौढ़ों के दिन-प्रतिदिन के जीवन में आने वाली समस्याओं से ही प्रेरणा उत्पन्न होती है । ये समस्याएं, साधारण उत्सुकता, नए विषयों का ज्ञान अथवा नई दक्षताएं प्राप्त करना, बेहतर नौकरी पाना, दूसरे लोगों के साथ कैसे व्यवहार किया जाए यह सीखना, अथवा वर्तमान सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषयों के बारे में उचित मत निर्धारित करना हो सकती है (हेलेन बेक, डब्ल्यू० सी०) । शिक्षक ऐसी समस्याओं का पता लगा सकते है जो प्रौढ़ों के सामने आती हैं ।

किसी क्षेत्र विशेष में रहने वाले प्रौढ़ व्यक्तियों से घनिष्ठ संबंध रखने वाली समस्याओं का सर्वेक्षण करने के पश्चात् शिक्षक उस क्षेत्र के लिए प्रौढ़ शिक्षा के कुछ विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित कर सकते हैं और उनके लिए पाठ्यचर्या तैयार कर सकते हैं । इस पाठ्यचर्या पर प्रौढ़ दल की प्रारंभिक बैठक में विचार किया जा सकता है । इससे, रुचि बढ़ाने और पाठ्यचर्या में अतिरिक्त छात्र दाखिल होने में मदद मिलेगी । इस प्रकार शिक्षक, भावी छात्रों में रुचि उत्पन्न कर सकते हैं और उन्हें पाठ्यचर्या की प्रकृति, उसके उद्देश्यों तथा विषय-वस्तु समझा सकते हैं ।

शिक्षक, प्रौढ़ व्यक्तियों के लिए पुस्तकें लिख सकते हैं और शिक्षण-अध्ययन सामग्री तैयार कर सकते हैं । वे प्रौढ़ों की, आत्म-ज्ञान की प्रक्रिया में सहायता कर सकते हैं । वे उन्हें शैक्षिक अनुभव भी प्रदान कर सकते हैं । प्रौढ़ों के अनुभवों का उपयोग, शिक्षण-अध्ययन प्रक्रिया में छात्रों की रुचि बढ़ाने और उसे बनाए रखने में किया जा सकता है । इन अनुभवों का मूल्यांकन भी किया जा सकता है । प्रौढ़ों के शैक्षिक अनुभव, चार प्रकार की परिस्थितियों में पाए जाते हैं, व्यक्तियों की स्वतंत्र गतिविधि के रूप में, दलों में, समुदाय में संगठित गतिविधि के संबंध में तथा जन संचार के माध्यम से । उपयोगी अनुभव प्रदान करने के लिए इन सभी में शिक्षक का अंशदान महत्वपूर्ण है ।

ग्रन्थ सूची

1. एलफोर्ड, एच० जे० "कान्टोन्यूइंग एजुकेशन इन एक्शन" न्यूयार्क ; जान विले एंड सन्स, इन्क, 1968, पृ० 3—20 ।
2. वेन्टाक, जी० एक० "फ्रीडम एंड अथारिटी इन एज्युकेशन" लंदन ; फाबेर एंड फाबेर लि०, 24 रस्सल स्क्वेअर, दूसरा संस्करण, पृ० 61—132 ।
3. देवे, जान : "एक्सपीरियंस एंड एजुकेशन" न्यूयार्क, दि मैकमिलन कं०, 1959, पृ० 31—113 ।
4. कबीर, हुमांयु : "एजुकेशन इन न्यू इंडिया" लंदन; जार्ज एलन एंड अर्नविन लि०, 1959 ; पृ० 75—86 ।
5. केम्फर, होमर "एडल्ट एजुकेशन" न्यूयार्क, मेकग्रेवहिल बुक कं० इन्क० 1955 ।
6. शिक्षा आयोग की रिपोर्ट, 1964—66 ।
7. "प्राबलम्स इन एजुकेशन/एडल्ट एजुकेशन" यूनेस्को ।

●●●

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के लिए मार्गदर्शी रूपरेखाएं—लघु स्तर पर एक कार्रवाई योजना

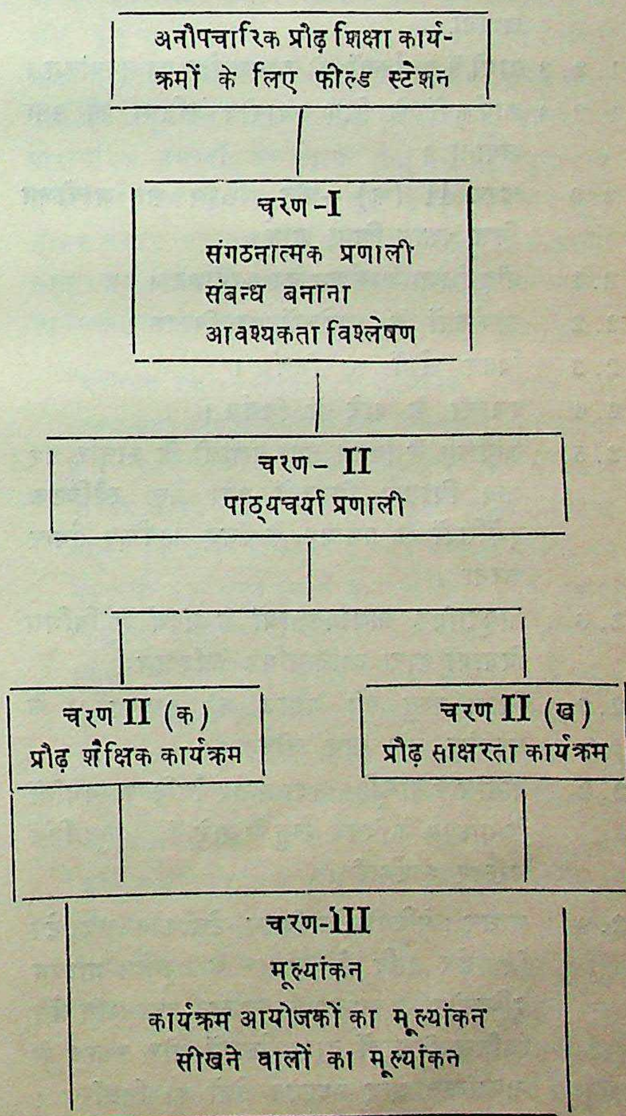
डा० राजकुमारी चंद्रशेखरन्

राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है जो कि एक राष्ट्रीय अभियान बन गया है और कार्यक्रमों को बड़े पैमाने पर कार्यान्वित करने तथा योजना बनाने के लिए वर्तमान केन्द्रीय सरकार ने नीति संबंधी निर्णय किये हैं।

भारत सरकार ने कार्यक्रमों को शुरू करने का निर्णय किया है, जिसके लिए अनौपचारिक शिक्षा निदेशालय तथा राज्य संसाधन केन्द्रों की क्रमश: केन्द्र तथा राज्य स्तर पर स्थापना की गई है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह बात गलत है कि केवल सरकारी तन्त्र से 10 करोड़ प्रौढ़ निरक्षरों को 10 वर्षों की अवधि के अन्दर शिक्षित करने की इस विशाल समस्या का समाधान हो जाएगा। कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए काफी संख्या में स्वैच्छिक संगठनों को शामिल किया जाना चाहिए। निरक्षरता की समस्या इतनी विशाल है कि सरकारी और साथ ही, गैर-सरकारी तौर पर तथा व्यक्तिगत और सामूहिक प्रयास करने की आवश्यकता है।

निचले स्तर पर कार्यक्रमों की गति तेज करने के लिए निम्नलिखित कार्रवाई योजना सुझाई गई है। यह एक क्रमबद्ध कार्यक्रम है जिसमें प्रौढ़ साक्षरता एक अलग वस्तु नहीं हो सकती है बल्कि इस पर प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के साथ-साथ कार्रवाई करनी होगी। इस तरह प्रौढ़ सीखने वालों के लिए शिक्षा अधिक संगत तथा कार्यात्मक बन सकेगी। प्रौढ़ शिक्षा के प्रति लघु दृष्टिकोण में अपनाई गई तकनीकों तथा पद्धतियों से प्रौढ़ सीखने वालों को विवेक तथा विश्लेषण के कार्य करने के लिए प्रोत्साहन मिलना चाहिए। प्रौढ़ नौसिखियों के पर्यावरण तथा अध्ययन के वातावरण के लिए उपयुक्त इस दृष्टिकोण से सीखने और करने के विचार को कार्यान्वित करने तथा अपनाने में सहायता मिलेगी। प्रौढ़ शिक्षा तकनीकों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए एक माडल नीचे दिया गया है :—

लघु स्तर (माइक्रो लेवल) पर प्रौढ़ शिक्षा तकनीकों की एक माडल प्रणाली



इस कार्रवाई योजना का और विस्तृत ब्यौरा इस प्रकार है :--

1.0 **चरण I—समाज के साथ कैसे संबन्ध स्थापित किया जाए।**

1.1 अन्वेषणात्मक चरण।

1.2 ग्राम नेताओं से सम्पर्क स्थापित करना ताकि कार्यक्रम के संबन्ध में सहमति प्राप्त की जा सके।

1.3 पंचायत बोर्ड के प्रधान से सम्पर्क स्थापित करना ताकि कार्यक्रम के संबन्ध में उनकी सहमति प्राप्त की जा सके।

1.4 समाज का सहयोग प्राप्त करने के संबंध में ग्राम नेताओं तथा स्थानीय लोगों से सम्पर्क करना।

1.2.0 **आवश्यकता विश्लेषण**

1.2.1 पर्यावरणीय आवश्यकताओं का पता लगाना। प्रश्नावली तथा व्यक्तिगत साक्षात्कारों के माध्यम से ग्रामीण पार्श्व--विद्यमान ढांचे का अध्ययन।

1.2.2 समुदाय के साथ बैठकें आयोजित करना--समाज की शैक्षिक आवश्यकताओं का पता लगाना।

1.2.3 ग्रामों में कार्यक्रमों की व्यवहार्यता का मूल्यांकन।

1.2.4 कार्यक्रमों के लिए स्थानीय प्रतिभा का पता लगाना।

2.0 **चरण II (क)—प्रौढ़ शिक्षा का आयोजन किस प्रकार किया जाये**

2.1 प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का आयोजन।

2.2 कार्यक्रमों के उद्देश्यों का विकास।

2.3 विषय क्षेत्रों का निर्णय।

2.4 प्रणाली के बारे में निर्णय।

2.5 कार्यक्रम के विषय तथा प्रणाली के आधार पर अन्य विस्तार विभागों तथा अन्य स्वैच्छिक एजेंसियों से समन्वय के लिए कार्यक्रम तैयार करना।

2.6 सामुदायिक आवश्यकताओं के संदर्भ में विभिन्न विभागों द्वारा व्यावसायिक प्रशिक्षण।

2.7 विषय वस्तु को समाज की आवश्यकता के मूल्यांक नके साथ जोड़ना।

2.8 वार्तालाप सामूहिक तथा अन्तर वैयक्तिक चर्चाओं के माध्यम से विषय वस्तु के बारे में सामुदायिक परस्पर कार्रवाई।

2.9 **साधन** : रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन तथा टेप रिकार्डर आदि जैसे संचार के बहुमान माध्यम दृष्टिकोण के माध्यम से स्वास्थ्य तथा कृषि जैसे विभिन्न विभागों द्वारा फिल्मों और समाज से सम्बन्धित अन्य अध्ययन क्षेत्रों का निर्धारण।

3.0 **चरण II (ख)—प्रौढ़ साक्षरता कार्यक्रमों का किस प्रकार आयोजन किया जाए।**

3.1 उद्देश्यों का विकास करना। प्रमुख (संकेत) शब्दों का चयन तथा उपयुक्त पाठ्यचर्या तैयार करना।

3.2 अध्ययन/शिक्षण सामग्री तैयार करना।

3.3 साक्षरता दक्षताओं का शिक्षण।

3.4 कार्यक्रम के लिए समय-सारणी।

4.0 **चरण III—मूल्यांकन**

4.1 सीखने वालों द्वारा कार्यक्रम का मूल्यांकन।

4.1.1 सीखने वालों पर यह कार्यक्रम कहां तक लागू होता है।

4.1.2 कार्यक्रम कहां तक प्रभावी है।

4.1.3 सीखने वालों की आवश्यकताओं के अनुरूप कार्यक्रम को चलाने के क्या अवसर हैं?

4.2 सीखने वालों का कार्यक्रम के आयोजक द्वारा मूल्यांकन।

4.2.1 कार्यक्रम के उद्देश्य कहां तक पूरे हो पाए हैं?

4.2.2 विभिन्न शिक्षण तकनीकें कहां तक प्रभावी रही हैं?

4.2.3 मूल्यांकन प्रक्रिया में ही परिवर्तन की आवश्यकता।

4.2.4 सीखने वालों के आचरणात्मक परिवर्तनों की दृष्टि से कार्यक्रम की प्रभावशीलता का मूल्यांकन।

5.0 मूल्यांकन प्रक्रिया कार्यक्रम के साथ-साथ एक निरन्तर प्रक्रिया होनी चाहिए।

निष्कर्ष :

प्रौढ़ शिक्षा की कार्रवाई योजना के लिए रूपरेखा के अन्त में प्रौढ़ शिक्षकों को एक चेतावनी दी जाती है। ऐसा कोई नियम नहीं है कि क्रमबद्ध कार्यक्रम को किन्हीं निश्चित परिधियों के अन्दर ही रखा जाए। शिक्षक की प्रवीणता इसी बात में है कि वह चरण I और चरण II को मिलाकर इसे एक रचनात्मक रूप दे तथा प्रौढ़ सीखने वालों के लिए इसे एक व्यवहार्य कार्यक्रम बनाए।

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के लिए अनेक "फील्ड स्टेशनों" की स्थापना भी की जा सकती है। प्रत्येक "फील्ड स्टेशन" के अधीन 10 से लेकर 15 तक अनौपचारिक शिक्षा केंद्र हो सकते हैं, और वह उनके तत्काल संदर्भ विशेषज्ञता संबंधी आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है जो उनकी क्षेत्र परस्पर क्रिया पर निर्भर करता है। कार्रवाई योजना की यह रूपरेखा प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के ऐसे "फील्ड स्टेशनों" के लिए ही है।

ग्रामीण विकास के लिए शिक्षा का प्रबंध : समग्र समस्याएं तथा तरकीबें

—डी० पी० नायर

भारत में ग्रामीण विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। वास्तव में यह सभी विकासशील देशों के लिए अत्यावश्यक है। इसकी और अधिक अवहेलना आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक रूप से अनर्थकारी होगी। पूंजीगत साधनों की कमी तथा अत्यधिक मानवीय साधनों के साथ, विकास की तरकीबों का मूल मानवीय साधनों का विकास होना चाहिए, इस तरह, शिक्षा विकास प्रक्रिया का केन्द्र होना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा का संबंध अन्य विकास साधनों से जोड़ा जाना चाहिए ताकि उनकी आपसी क्षमताओं का लाभ लिया जा सके। ऐसी प्रणाली के लिए विद्यमान धारणाओं तथा न सिर्फ शिक्षा बल्कि अन्य विकास विभागों की कार्य-प्रणाली में भी मूल रूप से परिवर्तन की आवश्यकता है। ग्रामीण विकास के लिए सामान्य शिक्षा में परिवर्तनों के प्रबंध की तरकीबें, तथा समस्याएं, शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र तथा प्रत्येक लक्षित समूह अलग है, परंतु कुछ समस्याएं तथा तरकीबें शिक्षा के सभी क्षेत्रों में एक-सी हैं। यह मुख्यतः छः हैं : अंतर-एजेंसी समन्वय तथा सम्बद्धता, अंतर-एजेंसी समन्वय, सामुदायिक स्तर पर प्रबंध, लोगों में शैक्षिक परिवर्तन की समझ पैदा करना, स्वैच्छिक एजेंन्सियों का उपयोग तथा साधन एकत्र करना।

अंतर एजेंन्सी समन्वय

जहां तक शिक्षा विभागों में समन्वय का प्रश्न है, देश ने राष्ट्रीय रूप से स्वीकृत नीतियां तैयार करने के लिए एक प्रणाली तैयार कर ली है। तथापि, जिला, ब्लाक तथा गांव स्तर पर प्रशासन के निचले स्तर पर विचार-विमर्श की प्रणाली को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। प्रजातन्त्रात्मक विकेन्द्रीकरण की योजना के अंतर्गत शिक्षा के कुछ भागों का स्थानीय निकायों को स्थानान्तरण होने के कारण यह और भी महत्वपूर्ण हो गया है। राज्य तथा जिला स्तरों के साथ-साथ स्थानीय निकाय स्तर पर भी आयोजन व्यवस्था के सुदृढ़ होने से, यह आशा है कि यह कमजोरी अधिकतर दूर हो जाएगी।

तरकीबों को स्वीकृति के बाद पाठ्यचर्याओं, प्रणालियों, पाठ्यपुस्तकों इत्यादि में सुधार के विस्तृत विवरण तैयार करने पड़ेंगे और उनको छोटे पैमाने पर चलाना होगा और पूर्ण करना होगा। स्कूल स्तर पर भारत में विभिन्न क्षेत्रों में शोध संस्थाओं का जाल है जिसमें सबसे ऊपर रा० शै० अनु० प्र० परि० है। इस व्यवस्था के भीतर ही पारस्परिक प्रभावों को बढ़ावा देना एक महत्वपूर्ण कार्य है ताकि निचले स्तर पर पैदा हुए उपयुक्त विचार पूर्ण होकर संचार साधन द्वारा उच्चतम स्तर पर स्वीकृत हो जाएं। इस संबंध में पांचवीं पंचवर्षीय योजना के मसौदे का निम्नलिखित अंश महत्वपूर्ण है।

"परीक्षण स्कूल--योजना में प्राथमिक शिक्षा की विषय-वस्तु और प्रणाली में कई परिवर्तनों की व्यवस्था है। इनमें राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद, राज्य शिक्षा संस्थाओं तथा अच्छे प्रशिक्षण स्कूलों द्वारा काफी मात्रा में काम शामिल होगा। इन संस्थाओं को सुदृढ़ किया जा रहा है। इनके द्वारा किए गए कार्यों के परिणाम से बड़ी संख्या में प्रशिक्षण स्कूलों के कार्यों में सुधार लाया जाएगा। ये स्कूल अपने साथ संलग्न अथवा अपनाए गए स्कूल के साथ सघन रूप से काम करेंगे। इसके अनुभव बड़ी संख्या में स्कूलों के अनुकूल बनें, इसके लिए यह आवश्यक है कि परिवर्तन के लिए चुने गए स्कूल प्रतिनिधित्व किस्म के हों। प्रयत्न यह होगा कि ऐसे नए विचारों को प्रयोग में लाया जाए जो अधिकतर स्थानीय साधनों, भौतिक और मानवीय, दोनों के प्रयोग पर निर्भर करते हों। यदि यह उपयुक्त पाया गया तो इसे निकट के 10-15 स्कूलों को दिखाया जाएगा और उनके द्वारा बड़ी संख्या में प्राथमिक

स्कूलों को दिखाया जाएगा। उन्हें आवश्यक अतिरिक्त वित्तीय सहायता भी दी जाएगी। एक तरफ राज्य शिक्षा संस्थाओं के उचित संबंधों से तथा उनके माध्यम से रा० शै० अनु० प्र० प०रि० के द्वारा, दूसरी तरफ राज्य प्रशासन और विषय शिक्षक संघों के साथ सम्पर्क से जो या तो विद्यमान हैं या बनाए जा सकते हैं ऊपर से प्रोत्साहन तथा नीचे से सहायता पूर्ण होगी।" *

इसके लिए कि कुछ उपयोगी विचार पैदा हो, यह आवश्यक होगा कि हम अपने कुछ प्रतिभावान अधिकारियों को क्षेत्र स्तर के शोध कार्य में लगाएं। वरिष्ठ तथा अनुभवी अधिकारियों द्वारा संस्थाओं का संचालन बिना समुचित वरिष्ठ प्रशासनिक पदों के विशेषाधिकार शक्तियों और संरक्षण की एक अन्य समस्या है जिसका संतोषजनक समाधान अभी तक नहीं खोजा गया है। विश्वविद्यालय स्तर पर इस समय उच्च शिक्षा के सिद्धान्तों और विकास से इसके संबंध पर कोई विशेष शोध नहीं हो रहा है। ऐसे शोध की आवश्यकता सुस्पष्ट है और पता चला है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इस प्रश्न पर सक्रिय रूप से विचार कर रहा है, विशेषकर 10+2+3 प्रणाली के संबंध में। ऐसा शोध करने के लिए निस्संदेह विश्वविद्यालय ही उत्तम स्थान है, विशेषकर उच्च स्तर के केन्द्र जैसे कि बड़ौदा में तथा अखिल भारतीय प्रबंध संस्थान।

अगला चरण है नयी पद्धति को इस विस्तृत देश के ओर-छोर में संख्या में फैली संस्थाओं तक पहुंचाना। मुख्य समस्या है अधिकतम पहल तथा विभिन्न स्तरों पर अधिकारी सौंप कर कार्यान्वियन एजेन्सियों के विभिन्न भागों में संचार का संयोजन। भारत ने एक सूचना प्रणाली तैयार की है। इसमें बुनियादी आंकड़ों का संकलन शामिल है, जो कि समय से कुछ वर्ष पीछे है, यद्यपि समय के इस अंतर को निरंतर कम किया जा रहा है। सारी प्रक्रिया को कम्प्यूटर द्वारा करने पर विचार किया जा रहा है। तथापि, आंकड़े एकत्र करने के लिए संकलन एजेन्सी को विशेषकर आधार स्तर पर, सुदृढ़ करने तथा कार्मिकों के प्रशिक्षण के लिए कार्यक्रम शुरू करने की आवश्यकता है। शिक्षा मंत्रालय जिला स्तर पर सांख्यिकीय अधिकारियों को फार्म भरने के बारे में समय समय पर प्रशिक्षण देता है। इन फार्मों में प्रायः परिवर्तन किया जाता है और आंकड़े एकत्र करने में इस्तेमाल किया जाता है। राष्ट्रीय स्टाफ कालेज ने हाल ही में मंत्रालय की इस कार्य में सहायता शुरू कर दी है, जो कि भविष्य में बढ़ जाएगी। सामान्य तरीकों से एकत्र किए जाने वाले आंकड़ों का एक अन्य साधन, पंचवर्षीय सर्वेक्षणों के माध्यम से भौतिक रूप में जांच की जाती है जिनका क्षेत्र, जटिलता तथा गहनता निरंतर बढ़ाई जा रही है। दोनों साधनों से एकत्र किए गए आंकड़ों के परिणामों की तुलना करने की समस्या हाल ही में सामने आई है। इस समस्या पर विचार करने और इसका समाधान ढूंढने के लिए राष्ट्रीय स्टाफ कालेज ने फोरम की व्यवस्था की है। विशेष समस्याओं के अध्ययन के लिए, रा० शै० अनु० प्र० प०रि०, राज्य शिक्षा संस्थान, प्रशिक्षण कालेज आदि द्वारा विशेष सर्वेक्षण तथा जांच का आयोजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त हमारे पास राष्ट्रीय, क्षेत्रीय, राज्य, जिला तथा स्थानीय आधार पर पुस्तकालयों के साथ सूचना-साधनों के रूप में संस्थागत पुस्तकालय है। एक काफी अच्छी सूचना प्रणाली तो है, लेकिन तेजी से बदलती हुई शिक्षा प्रणाली तथा परिवर्तनशील और विकासशील समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इसके क्षेत्र, कार्य की गति, कोटि, जटिलता तथा इसके विभिन्न भागों में पारस्परिक सहयोग में पर्याप्त सुधार की आवश्यकता है।

जहां तक अधिकार सौंपने का सम्बन्ध है, स्वतन्त्रता के बाद से कई नए प्रयत्न किये गये हैं। प्रजातन्त्रात्मक विकेन्द्रीकरण इनमें से एक सबसे महत्वपूर्ण प्रयत्न है। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का स्थानीय निकायों को सौंपना इसका एक भाग है। इस स्थानान्तरण की सीमा एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न है। जहां इसमें कुछ सीमा तक स्थानीय सहयोग तथा समर्थन के प्रश्न का समाधान हुआ है और स्थानीय स्तर पर विभिन्न विकास सेवाओं के साथ स्थानीय सम्बद्धता तथा एकीकरण के अवसरों में सुधार हुआ है, वहां इससे स्थानीय निकायों द्वारा प्राप्त नई शक्तियों के गलत प्रयोग, उनमें विशेषज्ञता की कमी, धन की कमी आदि कई प्रश्न उठे हैं। इनमें से कई समस्याओं का अध्ययन किया गया है और उनका समाधान कर लिया गया है। इन समस्याओं की प्रबलता में एक राज्य और दूसरे राज्य में एक-सी नहीं है और उनके समाधान में प्रयोग की गई क्षमता में भी अन्तर है। कुछ समाधान सुस्पष्ट हैं: स्थानीय नेताओं के सामर्थ्य में सुधार जिसके लिए शैक्षिक कार्यक्रम शुरू किये जाने चाहिएं, अधिक धन और विशेषज्ञता का प्रावधान, लोगों की शिक्षा तथा शिक्षा की नीति और कार्यक्रमों में लोगों को शामिल करना। सरकार में स्वायत्त संगठनों तथा स्वायत्त स्कूलों और कालेजों की स्थापना विकेन्द्रीकरण के अन्य प्रयोग हैं। स्वायत्त सरकारी संगठनों में जहां इससे

*पांचवीं पंचवर्षीय योजना का मसौदा, योजना आयोग, भारत सरकार, पृष्ठ 195।

कुछ मामलों में अधिक लचीलापन आया है वहां जहां किसी दूसरे सरकारी विभाग से सहायता का सम्बन्ध है इससे उनके कार्य में शिथिलता आई है। स्वायत्त संगठनों के कर्मचारियों के वेतन आदि उसी स्तर के सरकारी कर्मचारियों से कम होते हैं, अतः भर्ती में कठिनाइयां होती हैं। इसके बाद छोटे "अधिकार क्षेत्रों" को समस्याएं हैं। इन समस्याओं की सामयिक समीक्षाओं द्वारा इनके समाधान के प्रयत्न किये जा रहे हैं। स्वायत्त कालजों की स्थापना की सिफारिश शिक्षा आयोग ने 1964-66 में की थी परन्तु इस बारे में कुछ खास कार्य नहीं हुआ।

शिक्षा विभागों में जो समस्याएं हुई हैं वैसी ही समस्याएं अन्य विभागों में तालमेल से भी पैदा होती हैं। मुख्य समस्या संचार प्रणाली को सुदृढ़ करने की है ताकि नीतियों को ऊपर से लेकर नीचे तक समझा जा सके। दूसरे इन सभी स्तरों पर, विशेषकर निम्नतम स्तर पर, नेतृत्व को प्रोत्साहन देने के लिए पर्याप्त अधिकार सौंपे जाने चाहिए। क्षेत्र स्तर के कार्यकर्ताओं को यह अवसर भी मिलना चाहिए कि वे ऊपर के अधिकारियों को आवश्यक जानकारी दे ताकि यदि जरूरत हो तो इससे नीतियों को भी सुधारा जा सके। प्रक्रिया को सरल बनाने के अतिरिक्त, सभी स्तरों पर अधिकारियों के लिए अनुस्थापन पाठ्यक्रमों की भी आवश्यकता होगी ताकि नये दृष्टिकोण बनाए जा सकें। नये दृष्टिकोण बनाने की आवश्यकता विभिन्न विभागों में भिन्न-भिन्न है और समस्या यह है कि इन्हें कैसे एक-सा बनाया जाये।

अन्तर विभागीय समन्वय तथा सहयोग

बड़ी संख्या में विकास कार्य में लगे विभागों, स्वैच्छिक एजेंसियों, वित्तीय, वाणिज्यक तथा औद्योगिक संस्थाओं इत्यादि के साथ तालमेल की आवश्यकता ग्रामीण विकास के लिए होती है। अन्तर विभागीय तालमेल के बारे में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि विभिन्न कार्यकर्ताओं को अधिकतम परिणाम पाने के लिए तालमेल को आवश्यकता से परिचित कराया जाना चाहिए। उनको अपने कार्य के साथ-साथ उन अन्य कार्यकर्ताओं के कार्यों से भी परिचित कराया जाना चाहिए जिनके साथ उन्हें अपने कार्य के तालमेल करने की आवश्यकता होती है। क्षेत्र स्तर पर तालमेल तभी हो सकता है जबकि सभी वरिष्ठ स्तरों पर तालमेल हो। विभिन्न स्तरों पर तालमेल में सहायता, अधिकारों को सौंपने से मिलेगी जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। तालमेल प्राप्त करने के लिए अब तक अपनाया गया तरीका समन्वय समितियां रही हैं। किसी विशेष स्तर का राजनीतिक/कार्यकारी अधिकारी इन समितियों का अध्यक्ष होता है ताकि इस बात का ध्यान रखा जा सके कि प्रत्येक विभाग अपनी भूमिका निभायें और उसके लिए उसे आवश्यक प्रोत्साहन मिले तथा साथ-साथ यदि वे इसमें असफल रहें तो उन पर दबाव डाला जा सके। इन समन्वय समितियों में स्वैच्छिक एजेंसियों तथा वित्तीय और वाणिज्यिक संस्थाओं को समुचित प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए।

समुदाय स्तर पर प्रबन्धकीय समस्याएं

समुदाय स्तर पर सबसे महत्वपूर्ण कार्य है ऐसे परिवर्तन लाने वाले साधनों का पता लगाना जो समुदाय का संगठन एक-सी रुचि वाले दलों में कर सकते हों, ऐसी सेवाओं का पता लगाने में उनकी मदद करना जो कि "वितरण प्रणाली" दे सकती है और उनका अधिकतम उपयोग करने में उनकी मदद करना। समूह उन प्रयत्नों का भी निर्धारण करेगा जो कि वह स्वयं अपने सुधार के लिए करना चाहता है। ऐसे दल सरकारी नीति-निर्धारकों पर अपना प्रभाव डालेंगे और अपने आपको उन स्थानीय स्वार्थी तत्वों से भी बचायेंगे जो कि विकास का अपने लाभ के लिए गलत उपयोग करते हैं। यदि समाज के कमजोर वर्गों को विकसित करना है तथा उन्हें अपने सुधार के लिए कार्य करने के योग्य बनाना है तो ऐसे दबाव दल अपरिहार्य हैं। ऐसे परिवर्तन लाने वाला साधन निश्चित रूप से स्वार्थी तत्वों के कोप का भाजन बनेगा, अतः उसे सहायता और संरक्षण ऐसी संस्थाओं द्वारा देना होगा जिनकी स्थापना या तो सरकार द्वारा की जा सकती है अथवा शैक्षिक संस्थाओं या स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा। उनका उच्च अधिकारियों पर इतना प्रभाव होना चाहिए कि वे स्थानीय स्वार्थी तत्वों का सामना कर सकें। परिवर्तन के ये साधन या तो विश्वविद्यालय के छात्र हो सकते हैं या ऐच्छिक संस्थाओं के प्रतिनिधि। स्थानीय नेता भी यह कार्य कर सकते हैं। उन्हें केवल राजनीतिक तथा नैतिक समर्थन की ही आवश्यकता नहीं होगी बल्कि प्रशिक्षण तथा तकनीकी सहयोग भी आवश्यक होगा।

शैक्षिक परिवर्तनों की समझ पैदा करना

शिक्षा एक बड़ा कार्य है जिसमें लाखों लोग शामिल होते हैं। इन लोगों के लिए शिक्षा सीधी और तिरछी गतिशीलता का साधन है। अतः हो सकता है कि वे परिवर्तनों का तब तक विरोध करें जब तक कि उन्हें वे समझें न और उनको वे लाभप्रद प्रतीत न हों। ऐसा विशेषकर प्रजातन्त्र में होता है जहां कोई भी ऐसा शैक्षिक परिवर्तन सफल नहीं हो सकता जिसका आम विरोध होता हो। वास्तव में, शिक्षा को न सिर्फ आम सहमति चाहिए

बल्कि आत्म समर्थन भी। अतः प्रत्येक शैक्षिक परिवर्तन के बारे में लोगों को समझाने का हर सम्भव प्रयास किया जाना चाहिए तथा यह शिक्षा विभागों, स्वैच्छिक संगठनों आदि का नियमित कार्य होना चाहिए। शीघ्रता से बदलने वाले समाज की समस्याओं का सामना करने के लिए शिक्षा में भी शीघ्रता से परिवर्तन करने होते हैं। जब भी हमने इस पहलू की अवहेलना की है, शैक्षिक सुधार का प्रभाव विपरीत ही हुआ है, उदाहरणार्थ, बुनियादी शिक्षा। गांधीजी सबसे पहले गांवों पर ध्यान देना चाहते थे क्योंकि वे जनसंख्या के 80 प्रतिशत थे, अतः उन्हें प्राथमिकता मिलनी ही चाहिए थी। दूसरी तरफ ग्रामीणों का विचार था कि यह अभिजात्य वर्ग के मौजूदा शिकंजे को कसने का साधन है।

स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका

मानव के हित के लिए स्वैच्छिक संगठनों की निस्वार्थ सेवा की लम्बी परम्परा है। वे नया काम भली प्रकार कर सकते हैं क्योंकि वे लालफीताशाही से मुक्त होते हैं और समाज के दुर्बल वर्गों में वे बहुमूल्य काम करते हैं। वे सरकार और जन के मध्य एक उत्तम सम्पर्क साधन है–वे लोगों की आवश्यकताओं के बारे में सरकार को बताते हैं और सरकारी नीति से लोगों को अवगत कराते हैं। स्वैच्छिक एजेन्सियों के सहयोग तथा समन्वय के लिए प्रमुख तरीका उनमें से प्रत्येक की क्षमता का पता लगाना तथा उसके उपयुक्त उन्हें कार्य सौंपना है। इस कार्य की स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिए, इसके अतिरिक्त स्वैच्छिक एजेन्सियों के साधनों का बड़ी सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया जाना चाहिए तथा उनको वित्त, प्रशिक्षण इत्यादि सम्बन्धी सुविधाएं दी जानी चाहिए ताकि वे उन्हें सौंपी गई जिम्मेदारियों को प्रभावशाली ढंग से निभा सकें। स्वैच्छिक संगठनों में स्वतः मूल्यांकन प्रणाली होनी चाहिए ताकि उनमें विकास की इच्छा और क्षमता उनसे ही उत्पन्न हो।

साधन एकत्र करना

शिक्षा को प्रभावी होने के लिए अत्यधिक साधनों की आवश्यकता होती है जिसमें अनुवर्ती लागत सबसे अधिक है। अन्य विकासशील देशों की तरह भारत भी शिक्षा के लिए अधिकाधिक धन की व्यवस्था करता रहा है और इन साधनों में लगातार वृद्धि की इनकी क्षमता सीमित है। अतः शिक्षा की प्रक्रिया में शामिल सभी की साधन उपलब्ध करने की क्षमता को विकसित करने और उसे उपयोग में लाने का हर सम्भव प्रयत्न किया जाना चाहिए। दूसरे, साधन पैदा करना और उसके परिणाम-स्वरूप जो स्वावलम्बन उत्पन्न होता है वह स्वयं ही उच्च शिक्षा है। अतः जहां तक सम्भव हो, शिक्षा के प्रत्येक कार्यक्रम को अपने साधन स्वयं जुटाने चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षा उत्पादक कार्यों की ओर केन्द्रित हो तथा शारीरिक, मानसिक तथा वैचारिक विकास के साथ लोगों की उत्पादकता को बढ़ाने का साधन भी बनना चाहिए। औपचारिक प्रणाली का आकार इतना बड़ा है कि प्रति यूनिट उत्पादकता अथवा उत्पादन में थोड़ी सी वृद्धि का भी काफी प्रभाव होगा, इस तथ्य के अतिरिक्त कि अधिक उत्पादन तथा उत्पादकता पर केन्द्रित शिक्षा से बच्चों को आज से कहीं अच्छी शिक्षा मिलेगी। इसी तरह प्रौढ़ शिक्षा भी। गांधी जी ने कहा था कि प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों को उपभोक्ता और उत्पादक सहयोग का रूप लेना चाहिए, जो कि लोगों को अपने भाग्य का स्वयं निर्माता बनने के लिए काफी शक्ति प्रदान करेंगे।

निष्कर्ष

अतः शिक्षा को "ग्रामीण विकास प्रक्रिया का केन्द्र" बनाने से सर्वप्रथम **अन्तर-एजन्सी समन्वय** की कई समस्याएं पैदा होंगी। जहां तक शिक्षा का सम्बन्ध है, राष्ट्रीय रूप से स्वीकृत नीतियां तैयार करने के लिए देश में एक प्रक्रिया तैयार हो गई है जिसके लिए विचार-विमर्श की व्यवस्था को जिला, खण्ड तथा ग्राम स्तरों पर सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। स्वीकृत नीतियों को शैक्षिक कार्यक्रमों में बदलने के लिए हमारे पास विस्तृत शोध और प्रशिक्षण साधन हैं और यहां मुख्यतः समस्या इसके विभिन्न भागों में परस्पर सक्रिय सहयोग की है। इसके लिए पांचवीं पंचवर्षीय योजना के मसौदे में "प्रायोगिक स्कूल" के अन्तर्गत एक प्रभावशाली तरकीब सुझाई गई है। शिक्षा, विशेषकर उच्च शिक्षा को विकास से जोड़ने के लिए किये जा रहे शोध कार्य में विश्वविद्यालयों को भी अधिक प्रभावशाली ढंग से शामिल करना होगा। नवीन परिवर्तनों की बड़ी संख्या में संस्थानों तक पहुंचाने के लिए सूचना प्रणाली को, विशेषकर निचले स्तर पर विद्यमान साधनों के विस्तार तथा अच्छी भर्ती और सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के द्वारा कोटि में सुधार के माध्यम से, सुधारना होगा। मौजूदा सूचना प्रणाली की जटिलताओं और इसके विभिन्न भागों के साथ सहयोग की दृष्टि से सुधार की आवश्यकता है ताकि यह तेजी से बदलती हुई शिक्षा प्रणाली की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। प्रभावी ढंग से क्रियान्वयन के लिए निर्णय लेने के अधिकार का विकेन्द्रीकरण आवश्यक है ताकि विभिन्न स्तरों पर पहल की जा सके जो कि नये सुधार तथा उनके क्रियान्वयन के लिए आवश्यक है। प्रजातन्त्रात्मक विकेन्द्रीकरण से पैदा हुई समस्याओं के समाधान के लिए प्रयत्न करने होंगे जो कि लोगों की बड़ी संख्या में शैक्षिक नीतियों और कार्यक्रमों में शामिल करने के लिए जरूरी था और

है। शिक्षा के अतिरिक्त अन्य विभागों में तालमेल तथा सहयोग को प्रोत्साहन देने के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक विभाग में संचार व्यवस्था को सुदृढ़ किया जाए, अधिकार सौंपे जाएं और अनुभव से सीखने की व्यवस्था की जाए। इसी तरह, **अन्तर-विभागीय** तालमेल तथा सहयोग से कई समस्याएं सामने आती हैं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण है सहयोग की आवश्यकता को व्यापक रूप से समझाना तथा कार्य में लगे प्रत्येक व्यक्ति में उसकी भूमिका और अन्य विभागों में उसके समकक्ष व्यक्तियों की भूमिका के प्रति जागरूकता पैदा करना। किसी भी स्तर पर तालमेल के लिए वरिष्ठ स्तर पर तालमेल की जरूरत है और नई प्रणालियां बनाने के लिए तथा नई आवश्यकताओं के अनुरूप अपने कर्मचारियों की भूमिका को बनाने आदि के लिए अधिकारियों को काफी प्रोत्साहन देने की भी आवश्यकता है। अब तक अपनाई गई तरकीब केवल तालमेल समितियां रही है जिनमें सभी सम्बन्धित विभागों का प्रतिनिधित्व होता है। कभी-कभी जिस बात का अभाव रहा है वह यह है कि अध्यक्ष अच्छे सहयोग के लिए प्रोत्साहन नहीं देते अथवा गलत काम करने वालों की भर्त्सना नहीं करते अथवा वह इस काम में रुचि नहीं लेते और उनके पास अधिकार नहीं होते अथवा वह उन अधिकारों के प्रयोग के अनिच्छुक होते है। समुदाय स्तर पर समस्या है परिवर्तन के उन साधनों की खोज जो कि समाज का एक-सी रुचि वाले वर्गों में संगठन कर सकें, जो अपनी आवश्यकताओं को पहचान सकें और उनके लिए काम कर सकें, प्राप्त होने वाली किसी भी सरकारी सहायता का अधिकतम लाभ उठा सकें और अपने अधिकारों को अच्छी तरह समझ सकें और उनका उपयोग कर सकें। परिवर्तन करने वाले साधनों को आवश्यक सहायता देनी होगी ताकि उन पर स्वार्थी लोग स्थानीय अधिकारों की सहायता से जोर न डाल सकें। **नये परिवर्तनों के लिए लोगों को शिक्षित करने के उद्देश्य से** तथा उनको उसमें शामिल करने और उनका समर्थन प्राप्त करने के लिए शिक्षा विभागों को स्वैच्छिक एजेंसियों तथा स्थानीय संस्थाओं से सहयोग करना चाहिए। स्वैच्छिक एजेंसियों के बारे में सबसे महत्वपूर्ण कार्य है उनकी क्षमताओं का पता लगाना, उसके अनुसार उन्हें कार्य सौंपना तथा उनको आवश्यक सहायता देना। सरकारी सहायता को पूरक होने के लिए **साधन एकत्र करने** और लोगों में आत्म निर्भरता बनाने के अतिरिक्त उन्हें अच्छी शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षा, उत्पादक कार्यों की ओर केन्द्रित होनी चाहिए तथा शिक्षा में लगे सभी व्यक्तियों आदि को साधन एकत्र करने की क्षमता का पूर्ण उपयोग होना चाहिए।

● ● ●

(पृष्ठ 10 का शेष)

नहीं हैं, बल्कि वे समाज के माननीय सदस्य बन सकते हैं यदि वे अपना भूतकाल भूला कर फिर से जीवन शुरू कर दें समग्र का यह कर्तव्य है कि वह उन्हें जीवन शुरू करने में सहायता दे। हमें अपराधी में आत्मविश्वास तथा अपने हाथ में भरोसा पैदा करना चाहिए। हो सकता है समाज उन्हें अपनाने में संकोच करे क्योंकि उनका पिछला जीवन साफ नहीं है। परन्तु हम भूल जाते हैं कि समाज भी उनके अपराधों के लिए उतना ही उत्तरदायी है। जो समाज सुधार में विश्वास नहीं रखता उसको रहने का कोई अधिकार नहीं है।

सततः शिक्षा

निश्चित रूप से सततः शिक्षा भी उतना ही महत्वपूर्ण प्रश्न है। बिना इस उपयोगी व्यवस्था के प्रौढ़ शिक्षा का आंदोलन अधूरा है। हमें पत्राचार पाठ्यक्रमों, सायंकालीन संस्थाओं तथा अंशकालिक व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के रूप में सभी कार्य क्षेत्रों में विस्तृत सुविधाओं की आवश्यकता है। अपने ज्ञान तथा व्यावसायिक कुशलता में सुधार के अवसर सबके लिए हर स्तर पर काफी मात्रा में होने चाहिए। यह अच्छा है कि कुछ स्थानों पर ऐसी सुविधाएं उपलब्ध हैं परंतु हमें अधिक चाहिएं। तथापि हमें व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के बारे में काफी सावधान होना पड़ेगा क्योंकि उनमें व्यावहारिक प्रशिक्षण काफी महत्वपूर्ण है और इसकी अच्छी देखभाल के बिना कोई भी व्यवस्था बेकार होगी। शिक्षा बोर्ड तथा अन्य परीक्षा संस्थाओं को प्राइवेट विद्यार्थियों को अनुमति तब तक नहीं देनी चाहिए जब तक कि उन्होंने कोई पत्राचार, अंशकालिक या सायंकालीन पाठ्यक्रम नहीं किया हो, वास्तव में ऐसी व्यवस्था करना उनका कर्तव्य है।

निष्कर्ष

संक्षेप में, अब समय आ गया है जबकि प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को युद्ध स्तर पर चलाया जाये। एक ऐसा देश, जहां 70% जनसंख्या पढ़ लिख नहीं सकती, बहुत मन्दी गति से आगे बढ़ेगा। साक्षरता तथा शिक्षा और राष्ट्रीय तथा व्यक्तिगत आय में सीधा सम्बन्ध है। प्रौढ़ शिक्षा पर लगाया गया धन हमेशा अच्छा परिणाम सामने लायेगा और किसी विकासशील देश को इस महत्वपूर्ण कार्य में धन लगाने से नहीं हिचकना चाहिए। आज भारत के सामने कई चुनौतियां हैं तथा अपने लोगों को साक्षर तथा शिक्षित बनाने की चुनौती सबसे बड़ी है। यह आवश्यक है कि हम इसका सामना उत्साह तथा गरिमा से करें।

● ● ●

शिक्षा के चमत्कारिक फार्मूले

(10+2+3 अथवा 8+4+3 अथवा 7+5+3)

पी० डी० शुक्ल

शिक्षा आयोग, 1966 की सिफारिशों के अनुसरण में केन्द्रीय सरकार द्वारा अपनाई गई 10+2+3 शैक्षिक पद्धति से काफी अच्छे परिणाम निकलने की आशा थी। इसके अन्तर्गत प्रथम 10 वर्षों की स्कूल शिक्षा के दौरान सभी बच्चों को सामाजिक अध्ययन, भाषाओं, विज्ञान तथा गणित की शिक्षा तथा कार्य अनुभव प्राप्त करने, कक्षा 11 व 12 में विशिष्ट व्यावसायिक पाठ्यक्रमों तथा कक्षा 10 और 12 के अन्त में और सामान्य शिक्षा में तीन वर्षीय प्रथम डिग्री पाठ्यक्रम अर्थात बी०ए०, बी० एस० सी० और बी० काम के अन्त में सार्वजनिक परीक्षाएं आयोजित करने की भी व्यवस्था है। 10 वर्ष से अधिक अवधि के कार्य के परिणामस्वरूप जनता की राय इस पद्धति के पक्ष में होती जा रही है यद्यपि कुछ राज्यों ने इसे कुछ अनिच्छापूर्वक स्वीकार किया है। जनता सरकार ने जो कि 1977 के आरंभ में केन्द्र तथा कुछ राज्यों में सत्तारुढ़ हुई इस पद्धति के प्रति कुछ असंतोष प्रकट किया है। प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने संभवत: काफी सोच विचार के बाद एक वैकल्पिक पद्धति अर्थात 8+4+3 का प्रस्ताव दिया है और गुजरात सरकार संभवत: अगले शैक्षिक सत्र से 7+5+3 पद्धति प्रारंभ करेगी।

सभी फार्मूले एक जैसे हैं।

क्या इन शैक्षिक फार्मूले अर्थात 10+2+3 अथवा 8+4+3 अथवा 7+5+3 से किसी जादू का संबंध है? जी कभी नहीं। यद्यपि हमारा प्रस्ताव भारतीय शिक्षा में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का है परन्तु हम केवल शिक्षा के ढांचे अथवा स्कूल कक्षाओं की योजना के क्षेत्र में केवल अव्यवस्थित कार्य कर रहे हैं। हम जनता पर यह प्रभाव डालना चाहते हैं कि इन चमत्कारिक फार्मूलों से शिक्षा में आमूल परिवर्तन हो जाएंगे। हम शायद भूल जाते है कि सरलता पूर्वक तथा आवधिक ऐसे फार्मूलों की घोषणाओं से अध्यापकों, अन्य शैक्षिक कार्यकर्ताओं, छात्रों, माता-पिताओं, और शिक्षा के साथ किसी न किसी तरह का संबन्ध रखने-वाले लोगों के मन में इसके फलस्वरूप क्या भ्रम पैदा होता है। सच्चाई यह है कि ये सभी फार्मूले मूलत: एक जैसे ही हैं और उनके ढांचे में संशोधन करने मात्र से शिक्षा में कोई परिवर्तन नहीं आ सकता। इस प्रकार से 10+2+3 पद्धति प्रारम्भ करने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। इस फार्मूलें में परिकल्पित सभी सुधारों का इस समय चल रही पद्धति में कुछ हेर-फेर करके लागू किया जा सकता है। स्पष्टत: यह पद्धति, भारतीय शिक्षा आयोग जिसे स्वयं सरकार द्वारा स्थापित किया गया था कि एक सिफारिश को कार्यान्वित करने और देश भर में शिक्षा पद्धति में आम तौर पर एक रूपता लाने के लिए, अपनाई गई थी। परन्तु इस में कुछ लाभ और हानियां भी थीं।

यद्यपि पद्धति को बहुलता से जिसके बारे में हम आजकल बातें कर रहे हैं, गड़बड़ी हो रही है परन्तु वे एक जैसी ही हैं। तीनों पद्धतियों के अन्तर्गत 15 वर्षों (10+2+3=15, 8+4+3=15, 7+5+3=15) के सफल अध्ययन के बाद सामान्य शिक्षा में प्रथम डिग्री प्रदान करने की व्यवस्था है। प्रत्येक पद्धति में स्कूल शिक्षा के लिए 12 वर्षों की अवधि और सामान्य शिक्षा में प्रथम डिग्री के लिए 3 वर्षों की व्यवस्था है। अत: विभिन्नता केवल स्कूल स्तर के आन्तरिक विभाजन में ही विविधता है और वह हमारे द्वारा अपनाई जाने वाली विशेष फार्मूले के अनुसार 10+2 अथवा 8+4 हो सकती है।

यदि प्रथम कक्षा में औपचारिक शिक्षा के लिए वैज्ञानिक तौर पर स्वीकृत पूरे 6 वर्ष वा अधिक की आयु को ध्यान में रखा जाए तो हम यह कह सकते हैं कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 45 में सभी भारतीय बच्चों के लिए आठ वर्षों की नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा निर्धारित है।

आठ वर्षों की शिक्षा के इस प्रथम स्तर का द्वितीय फार्मूले में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है परन्तु इसका उल्लेख प्रथम फार्मूले के अन्तर्गत प्रथम दस वर्षों की स्कूल शिक्षा में भी किया गया है। तीसरे फार्मूले

में शामिल सात वर्ष के प्रथम स्तर से केवल इस तथ्य का पता चलता है कि जहाँ कहीं भी गत वर्षों में प्राथमिक शिक्षा सात वर्षों की अवधि की रही है वहां वैसी ही जारी रहनी चाहिए। इन राज्यों में द्वितीय फार्मूले को आठ वर्षीय स्कूली शिक्षा का उसी फार्मूले के चार वर्षों के द्वितीय स्तर के साथ जोड़ दिया जाता है जिससे कि तीसरे फार्मूले का द्वितीय स्तर पांच वर्षों की अवधि का हो जाता है इस प्रकार दूसरा और तीसरा फार्मूला एक समान ही है जिससे एक फार्मूला कुछ राज्यों पर लागू होता है और दूसरा शेष राज्यों पर लागू होता है।

अखिल भारतीय नई तालीम समिति द्वारा भारत सरकार की सहायता से दिल्ली में दिसम्बर, 1977 को आयोजित राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन ने 8+4+3 पद्धति का समर्थन इसलिए नहीं किया था कि इस फार्मूले से गांधी विचारधारा के प्रसार में विशेष योगदान मिलेगा जो समिति का एक लक्ष्य है। समिति ने 10+2+3 फार्मूलें के इस निहितार्थ का भी समर्थन किया था कि प्रथम सार्वजनिक परीक्षा दस वर्ष की स्कूल शिक्षा के अन्त में आयोजित की जाएगी इस व्यवस्था से प्रथम फार्मूले के अन्तर्गत 10 वर्ष की स्कूली शिक्षा वैसे ही दी जाती है जैसे कि द्वितीय फार्मूले के अन्तर्गत 8+2 वर्ष की स्कूली शिक्षा अथवा तीसरे फार्मूले के अन्तर्गत 7+3 वर्ष की स्कूली शिक्षा इस एक जैसी व्यवस्था में द्वितीय फार्मूले द्वारा परिकल्पित माध्यमिक शिक्षा की चार वर्ष की माध्यमिक शिक्षा अथवा तीसरे फार्मूले द्वारा परिकल्पित पांच वर्ष की माध्यमिक शिक्षा की समेकित पदधति का स्वरूप नष्ट हो जाता है। यह कथन महत्वपूर्ण है क्योंकि चार अथवा पांच वर्षों के समेकित माध्यमिक स्तर की व्यवस्था दूसरे और तीसरे फार्मूले की एक स्पष्ट विशेषता है।

प्रथम फार्मूला के + 2 स्तर को जिसे देश के विभिन्न भागों में उच्चतर माध्यमिक जूनियर कालेज अथवा इन्टरमिडियट स्तर के विविध रूपों में पुकारा गया है, सदा ही स्कूल शिक्षा का एक अंग माना गया है और उसे चलाया जाना है। परन्तु विभिन्न राज्यों में जिन्होंने पहले प्रथम फार्मूले को लागू कर दिया है, इस विशेष स्तर को या जो डिग्री कालेज के साथ पहले जोड़ दिया है या इसे हाईस्कूल स्तर के साथ जोड़ने के बावजूद इसके लिए एक स्वतन्त्र इकाई की स्थापना की है। द्वितीय तथा तृतीय फार्मूले को लागू किए जाने पर भी सम्भवतः व्यवहार्यतः यही स्थिति उत्पन्न होगी।

शिक्षा के ये तीनों फार्मूले वस्तुतः एक जैसे ही हैं, इस बात की पुष्टि हाल ही में गुजरात के शिक्षा मंत्री द्वारा की गई है जहाँ कि 7+5+3 फार्मूला को अगले शैक्षिक सत्र से लागू किए जाने की संभावना को बताया गया है कि मंत्री ने यह कहा है कि "नई पद्धति को अपनाते समय राज्य सरकार में कोई संरचनात्मक परिवर्तन नहीं होगा। इसलिए छात्रों, अध्यापकों और माध्यमिक स्कूलों पर कोई विपरित प्रभाव नहीं पड़ेगा। पाठ्यक्रम में भी कोई परिवर्तन नहीं होगा। 10वीं तथा 12वीं कक्षाओं के अन्त में सार्वजनिक परीक्षाएं आयोजित करने की वर्तमान पद्धति जारी रहेगी। 10 वीं कक्षा उत्तीर्ण करने वाले छात्रों को विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में दाखिला लेने की स्वतन्त्रता होगी। ...."

एक महत्वपूर्ण नीति वक्तव्य :—

इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि 1977 के मध्य में वर्ष 1977-78 के लिए शिक्षा के वास्ते मांगों पर लोकसभा बहस में उत्तर देते हुए केन्द्रीय शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्री ने शिक्षा की नई पद्धति के बारे में एक नीति वक्तव्य दिया था। उन्होंने पद्धति के 10+2 भाग पर भारत सरकार के दृष्टिकोण को दोहराया और बताया कि यह पुनरीक्षणाधीन नहीं हैं। मंत्री जी की घोषणा बहुत महत्वपूर्ण है जबकि वैकल्पिक पद्धतियों के बारे में वक्तव्य दिए जा रहे हैं, परन्तु भारत सरकार ने इस मामले में सरकारी तौर पर अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है।

अतः शिक्षा की सभी तीनों पद्धतियां छात्रों, अध्यापकों, माता-पिताओं, शैक्षिक संस्थाओं के प्रबन्धकों तथा सरकारी खजाने की दृष्टि से एक समान है, इसलिए शिक्षा की वैकल्पिक पद्धति पर जोर देने का कोई तुक नहीं हैं क्योंकि सारे देश में प्रथम पद्धति को पूर्ण रूप से सर्मकित नहीं किया गया है। भारत के संदर्भ में यह विशेष रूप में उपयुक्त नहीं हैं जहाँ तक कि गत तीस वर्षों के दौरान देश की शिक्षा प्रणाली में बार-बार अनेक परिवर्तन करने से जनता उब गई है। ऐसे परिवर्तनों को रोकने, कम से कम शिक्षा पद्धति में रोकने की मांग है, जो निःसंदेह इसका कोई महत्वपूर्ण पहलू नहीं है। अतः यह आशा की जाती है कि केन्द्रीय शिक्षा मंत्री, देश में सभी राजनैतिक दलों तथा विभिन्न राज्य सरकारों के परामर्श से यह निश्चय कर सकेंगे कि कम से कम अगले 10 वर्षों के दौरान शिक्षा की पद्धति में कोई परिवर्तन नहीं होगा। शिक्षा के सम्बंध में कोई अन्तिम बात नहीं कही जा सकती है और इसलिए शिक्षा के क्षेत्र में सार्थक प्रयोग जारी रहने चाहिए तथा पाठ्यचर्या, पाठ्य सामग्री शिक्षण तथा मूल्यांकन की पद्धतियों और शिक्षा के शैक्षणिक पहलुओं में सुधार के कार्य को जारी और प्रोत्साहित भी किया जाना चाहिए किन्तु यह सभी कार्य एक समान शिक्षा पद्धति की रूप रेखा के अन्दर होना चाहिए।

● ● ●

4—446 एजूकेशन/78

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी ग्रामीण क्षेत्र तक

सन्त प्रकाश

भूमिका

हमारी वर्तमान केन्द्रीय सरकार ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में गहरी रुचि ले रही है। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि कृषि के लिए केन्द्रीय बजट में 1978-79 के लिए बजट व्यवस्था 490 करोड़ से बढ़ाकर 1,754 करोड रु० कर दी गई है।

हमारे देश में 70 %से अधिक लोग गांवों में रहते हैं। अत: आयोजना की प्रक्रिया को ग्रामीण विकास की ओर बदलने की आवश्यकता है। तथापि, इसका यह तात्पर्य नहीं है कि शहरी क्षेत्रों में जो स्तर प्राप्त किये गये हैं उन्हें बनाये न रखा जाये अथवा उन्हें और न बढ़ाया जाये। यदि लक्ष्य हमारे सामने स्पष्ट हो, यदि हमारी पहुंच सही हो, सही दृष्टिकोण हो, और यदि हम अपने साधनों, मानवीय तथा भौतिक दोनों ही सही अनुमान लगाते हों, तो हम निश्चित रूप से इसके लिए युक्तियां और तरकीबें तैयार कर सकते हैं। ग्रामीण विकास के पूरे पहलू पर एक ग्रामीण की नजर से एक नये दृष्टिकोण की आवश्यकता पर हमें जोर देना चाहिए, ताकि उसको आवश्यकताओं तथा जरूरतों, उसकी आशाओं तथा आकांक्षाओं, उसकी समस्याओं और कठिनाइयों को भविष्य में तैयार की जाने वाली योजनाओं में स्थान मिल सके। इस लेख का उद्देश्य कुछ ऐसे सुझाव देना है जोकि विज्ञान और प्रौद्योगिकी सहायता से हमारे ग्रामीण क्षेत्र के विकास में वास्तव में सहायक होंगे।

विज्ञान का सही अध्यापन कराना

स्वतंत्रता के बाद से ही हमारी सरकार ने व्यापक प्राथमिक शिक्षा देने का प्रयास किया है। शिक्षा की सुविधाओं के विस्तार के साथ-साथ इसके गुणात्मक सुधार के लिए भी प्रयत्न किये गये है। जब हम पीछे मुड़ कर देखते हैं तो मालूम होता है कि हम काफी दूर निकल आयें हैं, परन्तु अभी मीलों और चलना है। सभी के लिए शिक्षा की प्राप्ति के अपने स्वप्न से हम काफी दूर हैं। ऐसा लगता है कि हमें अन्य तरकीबों और तरीकों के बारे में सोचना पड़ेगा। हमें वैकल्पिक तरीके न सिर्फ स्थानीय आवश्यकताओं, साधनों तथा अर्थव्यवस्था के अनुरुप खोजने चाहिए बल्कि अब हमें ग्रामीण जनता के लिए एक अलग शिक्षा प्रणाली के बारे में सोचना चाहिए। दूर-दराज तथा अगम्य ग्रामीण क्षेत्रों में दाखिले की समस्या अधिक जटील है। बच्चों को स्कूल न भेजने अथवा उनके द्वारा स्कूल छोड़ जाने के लिए हम लोगों को दोष नहीं दे सकते। ग्रामीण क्षेत्रों में जो लोगों की आम शिकायत है वह यह है कि स्कूल बच्चों को उपयुक्त व्यवसाय प्राप्त करने में सहायता नहीं करते। इसके विपरित ये बच्चों को परिवार के व्यवसाय और संस्कृति से अलग करा देते हैं। अत: जब तक ग्रामीणों को शिक्षा को उपयोगिता के बारे में ज्ञान नहीं होता तथा बच्चों को स्कूल भेजने के बारे में वे विश्वस्त नहीं हो जाते, जब तक बच्चों को स्कूल भेजने और उन्हें स्कूल में रोके रखने की उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस दृष्टि से अब वह समय है जबकि हम विज्ञान शिक्षण को विशेषकर अधिक उपयोगी बनाने की योजना बनायें जिसके परिणामस्वरूप हम अधिक छात्रों को भी दाखिल कर सकेंगे। यह सिर्फ तभी सम्भव है जब कि विज्ञान शिक्षा के कार्यक्रम ग्रामोन्मुख हों। उदाहरणार्थ, हम ये पढ़ाते हैं: मिट्टी और उसका टेस्ट, अम्ल, क्षारक तथा नमक, हवा, पानी और उसकी उपयोगिता, उपयोगी जानवर तथा पक्षी, पानी की शुद्धता; पौधों का विकास, पौधों के रोग, स्वास्थ्य तथा सफाई, और परिवार, ऋतु चक्र, बैलगाड़ी, हल, चरखा आदि के सिद्धांत। यह कार्यक्रम दूसरी कक्षा से आसानी से शुरु किये जा सकते हैं और दसवीं कक्षा तक चलाये जा सकते हैं। स्थानीय साधनों का उपयोग करते हुए ऐसे कार्य इस तरह किये जाने चाहिए कि दिल्ली विश्वविद्यालय के सहयोग से बच्चे प्रयोग स्वयं कर सके। होशंगाबाद के किशोर भारती तथा फ्रेन्डस रुरल सेन्टर ने, टाटा बुनियादी शोध संस्थान तथा मध्य प्रदेश सरकार ने इसी तरह का कार्यक्रम तैयार किया है और होशंगाबाद जिले के 16 मिडिल स्कूलों में कार्यान्वित किया है। उनका दावा है कि इस तरह के प्रयोग वैज्ञानिक सिद्धांतों को ग्रामीण

जीवन की आवश्यकताओं और अनुभवों में जोड़ने से सम्बन्धित हैं जिनका उद्देश्य व्यक्ति की अपने विवेक, विचार और निर्णय की क्षमता में सुधार करना है। यहां यह भी महत्वपूर्ण है कि उनकी अपनी परीक्षा प्रणाली भी है। अगले सत्र से इस कार्यक्रम को होशंगाबाद जिले के सभी मिडिल स्कूलों में लागू किया जायेगा। इस कार्यक्रम में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद भी रुचि ले रही हैं। और शायद निकट भविष्य में क्षेत्रीय शिक्षा कालेज, भोपाल में एक शिक्षा सेल स्थापित किया जाएगा।

किशोर भारती कार्यक्रम की एक कमी यह है कि यह विज्ञान शिक्षण के एक पहलू से ही सम्बन्धित है, अर्थात् विज्ञान परीक्षण करते रहना है। उन्होंने स्थानीय साधनों को पूरी सहायता नहीं ली हैं। इनकी पाठ्यचर्या में ऊपर बताये सभी विषय शामिल नहीं है। वे परम्परागत ढंग से स्कूल चलाते हैं, अर्थात प्रातः 10 से सायं 4 बजे तक। वे हल, चरखा आदि के बुनियादी सिद्धांतों को नहीं पढ़ाते।

परन्तु हमें मालूम है कि विज्ञान केवल परीक्षण करना ही नहीं है। इसमें कई बातें शामिल हैं। उदाहरणार्थ विज्ञान का अर्थ करना है, प्रेक्षण करना है, खोज करना है, प्राप्त करना है, प्रदर्शन करना है, विज्ञान सूक्ष्मता है, आदि। हम स्थानीय साधनों का उपयोग कैसे करते हैं? स्थानीय उपलब्ध साधनों का प्रयोग कर एक सेल तैयार करके विद्युत की धारणा को विकसित किया जा सकता है। लेखक ने एक ऐसा सेल तैयार किया है जिसमें बेरी, टमाटर, अमरुद का घोल आदि विद्युत अपघटन के रूप में प्रयोग किए गए हैं। इसमें प्रयोग में लाई गई विद्युत छड़े हैं: अल्यूमिनियम के चम्मच तथा कार्बन की छड़ें। शिक्षण का सबसे महत्वपूर्ण भाग यह है कि हम कार्यक्रमों का आयोजन इस तरह करें कि बच्चे पढ़ने के लिए तब आए जब वे खाली हों। वे परम्परागत रूप में स्कूल न जायें, अर्थात् 10 बजे से 4 बजे तक। हमें इसे अनौपचारिक विज्ञान शिक्षा नहीं कहना चाहिए बल्कि ग्रामीणों के लिए औपचारिक विज्ञान शिक्षा कहना चाहिए। हम स्कूलों में दाखिले बढ़ा सकेंगे और विज्ञान शिक्षण कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से कार्यान्वित कर सकेंगे।

ग्रामीण क्षेत्र के लिए सही प्रौद्योगिकी

ट्रैक्टरों तथा अन्य जटील तकनीकों के प्रयोग से कृषि में अत्यधिक उन्नति के बारे में हम प्रायः बातें करते हैं। परन्तु क्या हम ट्रैक्टर खरीद सकते हैं। एक ट्रैक्टर की लागत लगभग 30,000 रु० अथवा इस से भी अधिक होती है। एक निर्धन कृषक इसे नहीं खरीद सकता। हम यह भी सुनते हैं कि बैंक आदि संगठन ट्रैक्टर खरीदने के लिए कर्ज देते हैं। परन्तु यह भी बिना समस्याओं के नहीं है। "हल.." ही गरीब का ट्रैक्टर है। तदनुसार हमें सोचना है कि हल की कार्यक्षमता कैसे बढ़ाया जाये।

हाल ही में बैलगाड़ी समाचारों में थी। केन्द्रीय सरकार ने देश में बैलगाड़ी प्रणाली की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए एक स्थायी दल का गठन किया है। भारतीय कृषि में प्रमुख चालक शक्ति के रूप में तथा ग्रामीण परिवहन के साधन के रुप में बैल तथा बैलगाड़ी हमारे साथ सदियों से है। हमारे लिए बैलगाड़ी युग अभी समाप्त नहीं हुआ है। यह अनुमान लगाया गया है कि देश में एक करोड़ तीस लाख जानवरों द्वारा चलाई जाने वाली गाड़ियां हैं। उनमें से अधिकतर बैलों द्वारा खींची जाने वाली है। प्रतिदिन हमारी बैल शक्ति जीव-ऊर्जा का दो करोड़ अस्सी लाख अश्व शक्ति प्रदान करती है जो कि हमारे देश में लगाई जाने वाली कुल शक्ति का दो तिहाई है। यहीं जीवन शक्ति है जोकि बैलगाड़ी परिवहन की हमारी प्रणाली की प्रमुख चालक शक्ति है।

बैलगाड़ियों और बैलों पर लगी अनुमानतः 3,000 करोड़ रू० की राशि, बैलगाड़ी परिवहन से 1000 करोड़ रु० प्रति वर्ष को महत्वपूर्ण आय, बैलगाड़ी की अर्थ-व्यवस्था पर 2 करोड़ लोगों की निर्भरता तथा गांवों और शहरों के मध्य माल परिवहन के लिए अभी भी बैलगाड़ी एक प्रमुख साधन है—इन सब के कारण हमारे पास इसके सिवा और कोई विकल्प नहीं है कि थोड़े समय में ही बैलगाड़ियों का सुधार और आधुनिकीकरण किया जाये। ताकि जानवर चालक शक्ति के प्रयोग में अधिक कार्यक्षमता आ सके और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिल सके। बैलगाड़ियों में सुधार अथवा आधुनिकीकरण का उद्देश्य भार ढ़ोने की क्षमता को बढ़ाना, बैलों को कम से कम क्षति पहुंचाना, सभी सम्बन्धित उपकरणों, गाड़ी तथा सड़क की टूट-फूट को कम करना है। माल ढ़ोने की क्षमता में केवल दुगनी वृद्धि अर्थात्, 1000 करोड़ से 2000 करोड़ प्रति वर्ष से ही फार्म उत्पादन के ढ़ोने में काफी तेजी आ जायगी तथा ग्रामीण क्षेत्र की परिवहन क्षमता में भी वृद्धि होगी। गाड़ी के ऐसे नमूने से जो कि जानवर पर अत्याचार को कम करें, न सिर्फ बैलों का कार्यजीवन बढ़ेगा बल्कि उपलब्ध जीव-शक्ति का कुशल उपयोग सम्भव होगा। यह भी महत्वपूर्ण है कि बैलगाड़ी परिवहन प्रणाली की कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए गाड़ी की ज्यामिति, को दुबारा बनाना होगा। राष्ट्रीय डिजाइन संस्थान, अहमदाबाद ने बैलगाड़ी का एक नमूना तैयार किया है। इस डिजाइन की विशेषताएं हैं, गाड़ी गांवों में ही तैयार की जा सकती है। रोजगार के अवसरों

में वृद्धि के साथ-साथ इससे ग्रामीण उद्योगों के विकास को भी प्रोत्साहन मिलेगा। इस डिजाइन में सामान तथा साधारण उपकरणों के प्रयोग के वैकल्पिक तरीके तैयार करने के भी प्रयत्न किये गये हैं। यह अच्छा है कि आज कुछ सुधार हुआ है। हमें विश्वास है कि एक दिन हम इस समस्या का समाधान भी कर लेंगे।

साधारण प्रौद्योगिकी तैयार करने की आवश्यकता

स्थानीय प्रणालियों तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप एक साधारण और सस्ती प्रौद्योगिकी तैयार करने की आवश्यकता किसी भी ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लिए अनिवार्य है। आज सर्व स्वीकृत उचित प्रौद्योगिकी की धारणा का महात्मा गांधी के "चरखा" बावजूद व्यावहारिक प्रयोग अभी हमारे देश में होना है। ऐसा आत्मनिर्भर स्थानीय उत्पादन, जिसमें न्यूनतम जटिल मशीनों का उपयोग किया गया हो, सभी ग्रामीण बुराइयों के लिए रामबाण उपाय नहीं है परन्तु यदि इसे अच्छी तरह समझा जाये और उपयोग किया जाये तो यह पारम्परिक प्रणाली के कई पहलुओं के परिवर्तन में सहायता दे सकता है। चाहे पारम्परिक "चूल्हा" स्टोव अथवा 'पन चक्की' या पहाड़ी धाराओं से चलने वाले अनाज पीसने वाले यंत्र हों, इनके सुधार में अत्यधिक प्रशिक्षित जनशक्ति, खर्चीली पूंजी अथवा बड़ी संरचना की आवश्यकता नहीं होती।

कई ग्रामीण उद्योग हैं जो कि तेजी से समाप्त होते जा रहे हैं। यदि अनुकूल प्रौद्योगिकी तैयार की जाये तो इनका कायाकल्प किया जा सकता है। गांव का बुनकर परम्परागत करघे के साथ, जिसके चलाने में दो आदमी लगते हैं, शक्ति द्वारा चलने वाले करघों के विशाल उत्पादन के साथ प्रतियोगिता नहीं कर सकता, चाहे वह कितना ही कुशल क्यों न हो। यदि उसे शहर की किसी फैक्टरी में नीरस आत्म हनन, काम पर जीत से रोकना है तो उसे पहले एक अधिक कुशल करघा प्राप्त करना होगा। ग्रामीण स्थिति में कभी-कभी पद्चालित शक्ति उचित विकल्प होती है।

हम एक और उदाहरण लेते हैं—बैल द्वारा चलाया जाने वाला तेल निकालने का तरीका—"कोल्हू"। इससे खली तैयार होती है जिसमें तेल का अंश अधिक होता है। परन्तु अधिक कुशल तेल उद्योग ऐसी खली तयार करते हैं जिनमें तल की मात्रा कम होती है और अधिक सस्ता होता है। तेल वालों के सामने कई समस्याएं आ रही हैं। ऐसी समस्याओं का समाधान सुधरी हुई प्रौद्योगिकी में निहित है जिसके लिए उपयुक्त सामाजिक परिस्थितियों की आवश्यकता है।

उपयुक्त सामाजिक परिस्थितियों के बिना कई बार सुधरी हुई प्रौद्योगिकी के अप्रत्याशित परिणाम मिलते हैं। इसका प्रमुख उदाहरण अत्यधिक प्रचारित गोबर-गैस संयंत्र है जिनसे ग्रामीण समाज के धनी वर्गों को ही लाभ हुआ है। यद्यपि यह स्थानीय साधनों तथा साधारण प्रौद्योगिकी पर आधारित है तो भी इसकी लागत तथा इसके लिए दो या तीन जानवरों को रखना अधिकतर ग्रामीण जनसंख्या के बस में नहीं है। इसके अतिरिक्त गरीब ग्रामीणों को, जिन्हें अपना ईन्धन इधर-उधर फैला हुआ गोबर इकट्ठा करके ही मुफ्त मिल जाता था, अब नहीं मिलता क्योंकि गोबर गैस संयंत्र के सम्पन्न मालिकों को अपने प्रयोग के लिए गोबर की आवश्यकता होती है। गरीब आदमी को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए जलाने की लकड़ी का प्रयोग करना पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप कई समस्याएं पैदा होंगी।

स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका

हमारे कार्यक्रमों के सफल कार्यान्वियन के लिए यह अत्यावश्यक है कि प्रतिष्ठित स्वैच्छिक एजेंसियों की सहायता ली जाये जो कि राजनीतिक प्रभाव से मुक्त होते हैं। इस बात का ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि कार्यक्रम में दी हुई ग्रामीण परिस्थितियों के सुधार से सीधे सम्बन्धित हों और ग्रामीण समुदाय को उसमें शामिल किया जाये। यदि क्षेत्र में काम करने वाले लोगों और शहरों में स्थित मुख्यालयों के मध्य सम्पर्क की कमी हो और लोग शहरों में नियुक्ति गांवों में काम करने की अपेक्षा पसन्द करते हैं, तो ऐसी स्थिति में कर्तव्य निष्ठ स्वयं-सेवकों के दलों का सुझाव उचित है। कार्य के प्रतिनिष्ठा तथा ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं का पता लगाने की इच्छा महत्वपूर्ण तत्व है जो कि अब तक नहीं थे। निस्संदेह कई स्वच्छिक विकास एजेन्सियां विद्यमान है और महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं परन्तु उनके कार्य में तालमेल नहीं होता तथा वह अलग अलग तरीके से होता है। हमें ग्रामीण विकास से सम्बन्धित असंख्य संगठनों की प्रभावशाली तथा सन्तोषजनक विवरण प्रणाली की ओर अभिमुख करना चाहिए। वज्ञानिकों, प्रौद्योगिक-विदों तथा शिक्षाविदों को भी ऐसे कार्यक्रम तैयार करने तथा कार्यान्वित करने के लिए आगे आना चाहिए। हम कुछ कर्तव्यनिष्ठ सेवा निवृत्त कार्मिकों की सेवाओं का भी उपयोग कर सकते हैं। काम करने वालों की कमी की हम शिकायत नहीं कर सकते क्योंकि हमारे पास बड़ी संख्या में शिक्षित बेरोजगार हैं। अतः एक तरफ उपलब्ध कार्यकर्त्ताओं और दूसरी और आशाओं, चुनौतियों और अवसरों के मध्य की खाई इस क्षेत्र में हमारी असफलता का उदाहरण है। आज समस्या के युद्ध स्तर पर समाधान की तथा वातावरण और व्यवस्था के साथ अपने साधनों के उपयोग की आवश्यकता है। जिससे ये प्रभावी ढंग से चलेंगे।

●●●

कक्षा में श्रव्य-दृश्य साधनों का प्रभावी उपयोग

धीरेन्द्र वर्मा

यह बात आज सामान्यत: मानी जाती है कि कोई भी श्रव्य-दृश्य साधन कक्षा अध्यापक का स्थान नहीं ले सकता है। शिक्षण एक ऐसी जटिल तथा उच्च व्यावसायिक कला है जो दो व्यक्तियों अर्थात् शिक्षक और छात्र के पारस्परिक संबंधों पर निर्भर करती है। यह संबंध अब तक किसी भी श्रव्य अथवा दृश्य साधन द्वारा कायम नहीं किया जा सका है।

हम "श्रव्य-दृश्य साधन" को स्पष्ट व्याख्या किसी ऐसे औजार, तरीके अथवा मशीन के रूप में कर सकते हैं जो दृश्य अथवा आवाज के जरिए शिक्षक के कार्यों से पड़ने वाले प्रभाव को बढ़ा देती है। व्यापक रूप से इसके अन्तर्गत चाक बोर्ड, फ्लैश कार्ड्स, चार्ट फ्लैनल बोर्ड, नक्शे, चित्र, पुस्तकें, पढ़ाई-किट, स्कूल प्रसारण, फिल्में अथवा फिल्म पट्टियां, ओवर हैड प्रोजेक्टर, दूरदर्शन कार्यक्रम, टेप-रिकार्डर तथा अन्य ऐसी ही वस्तुएं आती हैं।

यहां तक कि श्रव्य-दृश्य साधनों में वे साधारण से साधारण वस्तुएं भी सम्मिलित की जा सकती हैं जो छात्र को आंख अथवा कान के जरिए कुछ सीखने में सहायता करती हैं। शिक्षक के हाथ और आवाज को भी इसमें सम्मिलित किया जा सकता है और इनके महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

हम रोजमर्रा के अनुभव से ही इस बात को समझ सकते हैं कि स्थायी प्रभाव के लिए दृश्य साधन महत्वपूर्ण होते हैं। हम असामान्य बातों और उन वस्तुओं को याद रखते हैं जिन्हें हमने ठीक से देखा हो। दृश्य साधनों के उपयोग के प्रारंभिक स्तर पर यह सोचा जाता था कि शैक्षिक प्रक्रिया में आंख ही सबसे महत्वपूर्ण साधन है। कुछ तो यहां तक कहते थे कि जो कुछ हम जानते हैं उसके संबंध में 80 से 85 प्रतिशत तक जानकारी हमें आंख के जरिए प्राप्त होती है। बाद में यह देखा गया कि शिक्षण सामग्री को स्पष्ट रूप से समझने में अन्य इन्द्रियों का भी बहुत महत्व होता है। यह पता चला कि छूने की शक्ति से किसी वस्तु, नमूने, माडल को ठीक से समझने में भौतिक रूप से सहायता मिलती है। अनेक परिस्थितियों में सूंघने की शक्ति महत्वपूर्ण काम करती है। अन्य मामलों में स्वाद सहायक सिद्ध होता है। अन्त में, शिक्षा की दृष्टि से काम को उच्च महत्व दिया गया है।

यहां हम यह कहना चाहते हैं कि आंख और कान प्रमुख इन्द्रियां हैं और अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा हम उन्हें ठीक ही अधिक महत्व देते हैं। अत: आवाज वाली पिक्चरों, रेडियो कार्यक्रमों, आवाज रिकार्ड करने, दूरदर्शन और अन्य ऐसे ही साधनों का विकास हुआ। इन सभी का स्कूलों में व्यापक उपयोग किया जा रहा है और सामान्यत: इन्हें ही "श्रव्य-दृश्य" साधन कहा जाता है। इसमें लगभग समस्त निदर्शी सामग्री सम्मिलित है, अर्थात्, दृश्य साधन, श्रव्य साधन और इन दोनों के मिले-जुले विभिन्न रूप। इन्हें सामान्य शीर्षक "शिक्षा के वैज्ञानिक साधन" के अन्तर्गत वर्गीकृत करना शायद अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि छात्र को व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने में इनसे ज्यादा कोई सहायता नहीं कर सकता।

कक्षा में श्रव्य-दृश्य साधनों को प्रभावी बनाने के लिए पांच महत्वपूर्ण बातें हैं। ये निम्नलिखित हैं :

1. शिक्षक की तैयारी
2. छात्र की तैयारी
3. प्रस्तुतीकरण
4. अनुवर्ती कार्य
5. मूल्यांकन

1. शिक्षक की तैयारी

क. सामान्य तैयारी

श्रव्य-दृश्य शिक्षण कार्यक्रम लागू करने और उसका विकास करने की दिशा में शिक्षकों की शिक्षा पहला कदम है जिससे वे अधिक कुशल और इसके समर्थक बन जाएंगे। इसके अभाव में कार्यक्रम निश्चय ही असफल होगा। शिक्षकों

को इस प्रकार की शिक्षा अनेक तरह से दी जा सकती है, जैसे कि :

(i) शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान
(ii) इस विषय पर साहित्य की समीक्षा
(iii) सामान्य संकाय परिचर्या
(iv) अन्य स्कूलों में लागू पद्धतियों पर रिपोर्ट
(v) योग्य शिक्षकों तथा विशेषज्ञों की वार्ताएं
(vi) विस्तार पाठ्यक्रम
(vii) अन्य स्कूलों का दौरा
(viii) सामग्री और उपस्कर का प्रदर्शन

यह अच्छा होगा कि एक अथवा अधिक शिक्षक इसका अपनी कक्षा में उपयोग के लिए विकास करें । यह प्रारंभिक प्रयोग लाभप्रद सिद्ध हो सकता है और इसके परिणामस्वरूप अन्य शिक्षक अपने उपयोग के लिए उसे अपना सकते हैं ।

अनेक दृश्य साधनों का इतना अधिक प्रयोग हो चुका है कि उनके संबंध में आज किसी परीक्षण की आवश्यकता नहीं है । दूसरी ओर, नये और विभिन्न प्रकार के साधनों को लागू किया जा रहा है जिनके परीक्षण की जरूरत है ।

जो शिक्षक ध्वनि रिकार्डर, ओवर-हेड प्रोजेक्टर अथवा अन्य किसी ऐसे ही यांत्रिक साधन का प्रयोग करना चाहता है उसे उसके पुर्जों तथा संचालन से भली-भांति परिचित होना चाहिए । कभी-कभी स्कूल पद्धति के अन्तर्गत ही योग्य शिक्षकों द्वारा अल्प पाठ्यक्रम चलाये जाते हैं । ऐसे पाठ्यक्रम वे व्यापारिक फर्में भी प्रदान करती हैं जो इस प्रकार के उपस्कर बेचती हैं ।

अनेक साधन स्वयं शिक्षक द्वारा बहुत कम अथवा बिना किसी लागत के तैयार किये जा सकते हैं । इस वर्ग में चार्ट, पोस्टर्स, फ्लैश कार्डस, माप-साधन, आदि आते हैं । क्षेत्रीय दौरे भी एक सस्ता साधन हैं जिन्हें यदि उचित तरीके से आयोजित किया जाए तो बहुत प्रभावी सिद्ध होते हैं ।

ख. विशेष तैयारी

वास्तविक तैयारी में प्रमुख बातें यह है कि उपयुक्त श्रव्य-दृश्य साधन का चयन उचित समय पर होना चाहिए और उसका उपयोग ठीक प्रकार से हो । शिक्षक को शैक्षणिक साधनों को केवल "साधन" समझना चाहिए क्योंकि इनके उपयोग का उद्देश्य अच्छी शिक्षण तकनीकों का स्थान लेना नहीं है ।

शिक्षक के लिए सब से पहली जरूरत इस बात की है कि उसके पास सावधानीपूर्वक तैयार की गई एक अध्यापन योजना हो । इसके बाद शिक्षक उस पाठ विशेष के लिए उचित साधन का चुनाव करेगा और उससे पूर्णतः परिचित हो जाएगा । फिल्म के मामले में शिक्षक द्वारा उसे पहले देखा जाना चाहिए । यदि साधन मात्र दृश्य-साधन हो तो इसका प्रयोग सैद्धांतिक जानकारी देने के दौरान अथवा उसके बाद किया जाना चाहिए । यदि आवश्यक हो तो प्रश्नों सहित इसे दोबारा दिखाना चाहिए और कुछ मामलों में बाद में परीक्षण किया जाना चाहिए ।

क्षेत्रीय दौरे के लिए पहले काफी सोच-विचार और नियोजन की जरूरत होती है ।

फिल्म के प्रयोग के संबंध में निम्नलिखित प्रक्रिया की सिफारिश की जाती हैं :

(i) फिल्म का पूर्वदर्शन ।
(ii) छात्रों को फिल्म की विषय-वस्तु की जानकारी दें और इसे क्यों दिखाया जा रहा है तथा छात्रों को इससे क्या सीखना चाहिए, यह बताएं ।
(iii) आवश्यक उपस्कर की व्यवस्था करें । प्रोजेक्टर को पूरी तरह तैयार रखें और कमरा पूर्णतः हवादार हो ।
(iv) फिल्म दिखायें ।
(v) मुख्य बातों को संक्षेप में बतायें ।
(vi) ठीक-से न समझ आने वाली बातों पर चर्चा करें ।
(vii) यदि आवश्यकता हो तो प्रश्न पूछें और परीक्षा लें ।

2. छात्र तैयारी

शिक्षक ने चाहे कितनी ही सावधानी पूर्वक योजनाएं बनाई हों तो यदि छात्र उचित रूप से तैयार नहीं है तो शिक्षक के सारे प्रयत्न विफल हो जाएंगे । छात्र को तैयार करने के लिए उसे निम्नलिखित जानकारी दी जानी चाहिए :

(i) उसे इन शिक्षा से क्या लाभ होगा ।
(ii) निदर्शी सामग्री में उसे किस बात पर ध्यान देना है ।
(iii) उसके ज्ञान की परीक्षा होगी ।

दोबारा यदि फिल्म का ही उदाहरण लें तो फिल्म को शिक्षा-प्रद बनाने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि छात्र को भौतिक सुविधाओं का ध्यान रखा जाए । छात्र को फिल्म के उद्देश्य को स्पष्ट रूप से समझना चाहिए । उसे इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि उसकी वर्तमान समस्या अथवा पाठ से फिल्म का क्या संबंध है । यदि छात्र को यह पता हो कि फिल्म के बाद उसके ज्ञान की परीक्षा होनी है तो उसकी फिल्म में दिलचस्पी सामान्यतः बढ़ जाएगी, वह फिल्म को अधिक ध्यान से देखेगा और उसके सीखने की क्षमता अधिक प्रभावी होगी ।

जहां भी संभव हो छात्र की भागेदारी को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए । कुछ मामलों में छात्र उपस्कर के संचालन, माडलों सहित प्रदर्शन तथा फिल्मों की तैयारी में सहायता कर सकते हैं ।

3. प्रस्तुतीकरण

श्रव्य-दृश्य सामग्री के प्रस्तुतीकरण को कोई निश्चित प्रणाली अथवा तरीका नहीं है । साधनों में विभिन्नता, भिन्न-भिन्न तरह के बच्चों और सामग्री के उपयोग में शिक्षक के उद्देशों में विभिन्नता के कारण उसे उपयोग करने का तरीका अलग-अलग होगा ।

तथापि कुछ बातों को ध्यान में रखना चाहिए उनमें से एक यह है कि सर्वोत्तम भौतिक सुविधाएं उपलब्ध होना चाहिएं । बच्चे के लिए फिल्म की विषय-वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करना बहुत कठिन होता है यदि वह बहुत प्रयत्न करने पर चित्रपट (स्क्रीन) देख पाता है । ऐसे छोटे और अपर्याप्त साधन जिनसे उस उद्देश्य की पूर्ति न होती हो जिसके लिए उन्हें प्रयोग किया जाता है इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है । अपर्याप्त रोशनी, दोषपूर्ण ध्वनि व्यवस्था, कमरे के असामान्य तापमान इन सभी का शिक्षण-साधन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है ।

यह बात महत्वपूर्ण है कि शिक्षक किसी एक प्रकार की सामग्री पर निर्भर नहीं कर सकता क्योंकि इससे उसके विचार में निर्भरता और दृढ़ता आ जाती है । बच्चे जब हमेशा एक ही प्रकार की सामग्री का प्रयोग करते हैं तो उसका प्रभाव खत्म हो जाता है और वह शिक्षा का साधन नहीं रह जाता । अक्सर ऐसा होता है कि यदि बच्चे शिक्षक के इस विचार से सहमत हो जाएं कि एक मात्र 'यही' साधन है तो वे अन्य साधनों के प्रति जिज्ञासु नहीं होंगे और इससे वे उससे अच्छे साधनों के लाभ से वंचित रह सकते हैं ।

किसी श्रव्य-दृश्य साधन के प्रयोग में शिक्षक का कुछ उद्देश्य अवश्य होना चाहिए और इस उद्देश्य के विषय में छात्रों को स्पष्ट जानकारी दी जानी चाहिए । यदि कोई सामग्री पाठ्यचर्या से सम्बन्धित नहीं हो तो वह आगामी चरणों को समझने और पहली बातों को स्पष्ट करने में उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती, उदाहरण के लिए, खनिज संबंधी किसी फिल्म का बच्चे के लिए तब तक अधिक महत्व नहीं होगा जब तक कि वह खनिज संबंधी अध्ययन न कर रहा हो और अपने शिक्षक तथा सहपाठियों से इस संबंध में विचार विमर्श न करता हो ।

उपयोग किये जाने वाले तरीकों तथा औजारों में परस्पर संबंध होना बहुत जरूरी है । छात्र की रूचि को बढ़ाने और उसे बनाये रखने के लिए विषय-वस्तु में क्रम होना चाहिए—निर्धारित लक्ष्य से लेकर अगले उद्देश्य की प्राप्ति से संबंधित कार्यकलाप तक एक उचित क्रम होना चाहिए । इसके अभाव में बच्चों की रूचि समाप्त हो जाएगी, वे उलझन में पड़ जाएंगे अथवा गलत धारणाएं बना लेंगे । "छोटे-छोटे हिस्सों और टुकड़ों" के बजाय सामग्री पूर्णतः एकीकृत होनी चाहिए और प्रत्येक चरण पहले वाले चरण पर निर्भर और उससे सम्बन्धित होना चाहिए ।

श्रव्य-दृश्य साधनों का प्रमुख उद्देश्य बच्चों को "वस्तु से उसे विश्लेषण तक" के आधार पर अनुभव कराने और उनके ज्ञान का विस्तार करने में सहायता करना है । जैसा कि समकालीन मनोविज्ञान से पता चलता है, शुरूआत वहां से की जाती है जहां पहले से जानता है, जिससे वह पहले परिचित हो अथवा जिसे वह देख या सुन सकता हो और तब वह अमूर्त का विश्लेषण करने का प्रयास करता है । इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मूर्त वस्तु और अमूर्त वस्तु का अंतर अचानक अथवा तेजी से नहीं होना चाहिए और ऐसा होना चाहिए कि बच्चे धीरे-धीरे इस दिशा में आगे बढ़ सकें ।

श्रव्य-दृश्य साधनों के प्रस्तुतीकरण पर जोर, समझ और व्यापकता पर दिया जाना चाहिए; न कि याददाश्त पर । यदि शिक्षक इस बात पर उचित ध्यान नहीं देता है तो इससे शिक्षण साधनों का उद्देश्य ही निरर्थक हो जाएगा क्योंकि ये सामान्यतः जिस विषय के लिए उपयोग किये जाते हैं उसमें बच्चे की योग्यता और सूझ-बूझ में सुधार लाने के लिए तैयार किये जाते हैं ।

जैसा कि पहले कहा गया है, एक ही शिक्षण साधन विभिन्न उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया जा सकता है, अतः किसी निश्चित तरीके को अपनाने के संबंध में कुछ कहना कठिन है । उदाहरण के लिए, ओवर-हेड प्रोजेक्टर जैसे किसी नये साधन को प्रयोग करते समय यह आवश्यक है कि बच्चों के मशीन को देखने से पहले ही उसके उपयोग, वह कैसे काम करती है (अन्य माध्यम के जरिए) के संबंध में उन्हें बताया जाए और तब ही उसे बच्चों के सामने लाया जाये और उसका संचालन दिखाया जाये । शिक्षक को पहली बार मशीन को शिक्षण साधन के रूप में प्रयोग करने से पहले सभी प्रारंभिक कार्य कर लेना चाहिए, अन्यथा बच्चों का सारा ध्यान मशीन और उसके संचालन को देखने पर ही रहेगा, न कि इस पर कि उन्हें क्या पढ़ाया जा रहा है ।

शिक्षकों को बच्चों को यह अवश्य बताना चाहिए कि कोई वस्तु कितनी ही लुभावनी क्यों न हों उसका शैक्षिक महत्व अवश्य होता है । तार में पिरोये हुए मनके अथवा गिनतार भले ही खेलने की वस्तु हो परन्तु गिनती, रंगो में भेद, वर्गीकरण, समानता आदि की दृष्टि से उनका बहुत महत्व होता है ।

किसी भी सामग्री को स्पष्ट और रूचिकर रूप से प्रस्तुत किया जाना चाहिए परन्तु बच्चों को इनके उद्देश्य की पूर्व जानकारी अवश्य होनी चाहिए । इसके बाद विभिन्न तरीकों और साधनों के जरिए धीरे-धीरे प्रमुख विषय

पर आना चाहिए। मुख्य बातों और धारणाओं को समझ लेने के बाद ही आगामी कार्यवाही शुरू की जानी चाहिए।

4. अनुवर्ती कार्य

श्रव्य-दृश्य साधन के प्रयोग के बाद उसकी समीक्षा अथवा उस पर विचार-विमर्श को अनुवर्ती कार्य कहा जा सकता है। इसी स्तर पर "अस्पष्ट" अथवा न समझ आने वाले सिद्धान्त अथवा सम्बन्ध को स्पष्ट किया जा सकता है और उससे संबंधित छात्रों के प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, इस प्रक्रिया के जरिए प्रदर्शन में निहित विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है और छात्रों की विशेष रूचियों का पता लगाया जा सकता है। उनकी रूचियां यदि उपयुक्त हों तो वे छात्र के कार्यों अथवा उन भावी कार्यकलापों का आधार हो सकती है जो विषय से संबंधित हों।

ऐसे अनेक अनुवर्ती कार्य है जिनका उपयोग प्रत्येक छात्र की जरूरतों को पूरा करने के लिए किया जा सकता है। अनेक कामों में से प्रत्येक छात्र को कम-से-कम एक काम अपनी रूचि का करने को मिल जाएगा और वह उसे समझ सकेगा। कुछ छात्र लेखन, पठन, शोध और परामर्श के जरिए सामग्री एकत्र करना, भ्रमण अथवा शैक्षिक दौरे पर जाना पसंद करेंगे जबकि अन्य चित्रकारी, नक्शे तथा चित्र बनाना, प्रसारण नाटक तथा संगीत जैसे अधिक कलापूर्ण कार्य करना चाहेंगे।

शिक्षण सामग्री का पुनः उपयोग लाभकारी और मितव्ययी होता है क्योंकि इससे छात्र दूसरी बार में उस सिद्धान्त को भली प्रकार समझ सकेंगे जिसे वे पहले बार में अच्छी तरह नहीं समझ पाये थे। दूसरी ओर, विभिन्न प्रकार की सामग्री का उपयोग भी लाभप्रद सिद्ध हो सकता है क्योंकि एक प्रकार के श्रव्य-दृश्य साधन से यदि कोई बात स्पष्ट न हो सके तो दूसरे साधन से उसे भली भांति स्पष्ट किया जा सकता है। विभिन्न साधनों का उपयोग छात्रों को एकरसता से बचाता है और इस प्रकार उस विषय में उनकी रूचि बनी रहती है।

5. मूल्यांकन

शिक्षण में श्रव्य-दृश्य साधनों के उपयोग को प्रभावी बनाने के लिए अन्तिम और सबसे महत्वपूर्ण बात है मूल्यांकन। प्रभावी शिक्षण साधनों को निम्नलिखित किसी एक अथवा अधिक उद्देश्य को पूरा करना चाहिए :

नई रूचियां पैदा करना
और कार्यकलापों को बढ़ावा देना
सूचना प्रदान करना
प्रस्तावना अथवा समीक्षा का अवसर प्रदान करना
अभिवृत्तियों का विकास करना

उपरोक्त बातों को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि अनुवर्ती कार्यों के बाद शिक्षक को समय निकालकर प्रयोग में लाये गए श्रव्य-दृश्य साधनों की कमियों और अच्छाइयों का पता लगाना चाहिए। यह मूल्यांकन साधनों के उपयोग के दौरान और उसके बाद को छात्रों की अभिवृत्तियों को देखकर किया जा सकता है। शिक्षक द्वारा अनुवर्ती कार्यों के परिणामों की सावधानीपूर्वक जांच, छात्रों की प्रतिक्रिया के संबंध में कुशलतापूर्वक उनसे पूछे गये प्रश्नों और उसके उपयोग से अन्य साथी शिक्षकों द्वारा प्राप्त परिणामों के संबंध में विचार-विमर्श किसी साधन विशेष की सफलता का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने में सतर्क शिक्षक को सहायक होंगे। मूल्यांकन यदि उचित प्रकार से किया जाए तो भविष्य में उस श्रव्य-दृश्य साधन के उपयोग के बारे में निर्णय लेने में बहुत सहायता मिलती है।

सारांश

शिक्षा-प्राप्ति की प्रक्रिया को देखने, सुनने, रुचि, स्पर्श और गंध संबंधी इंद्रियों से गहरा सम्बन्ध होता है। श्रव्य और दृश्य साधनों के जरिए शिक्षक अपने विचारों को बड़ी हद तक सम्प्रेषित कर सकता है। अन्य तीन इंद्रियां इस प्रक्रिया में कम मात्रा में सहायता करती हैं। अतः जो कुछ छात्र देखता है और सुनता है उसका उसके व्यवहार पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है और इसका प्रभाव उसकी शिक्षा-प्राप्ति पर पड़ता है।

सम्प्रेषण के अनेक ऐसे साधन उपलब्ध हैं जिनका प्रयोग इन इंद्रियों की सहायता से छात्रों की शिक्षा को बढ़ाने और उन्हें निर्देश देने के लिए किया जा सकता है। इन साधनों को ही हम श्रव्य-दृश्य साधनों के रूप में जानते हैं। आज के शिक्षक के लिए सम्प्रेषण के सभी साधनों से परिचित होना आवश्यक है ताकि अपने छात्रों के समक्ष श्रव्य अथवा दृश्य किसी भी साधन को अच्छी तरह प्रस्तुत कर सकें। शिक्षक को यह समझ लेना चाहिए कि श्रव्य-दृश्य साधन क्योंकि विस्तृत सूचना प्रदान करते है; अतः किसी साधन को शिक्षण के साधन के रूप में प्रयोग करने से पहले छात्र को इसका कुछ पूर्व अनुभव और जानकारी होनी चाहिए। आज के शिक्षक को न केवल विषय-वस्तु तथा शिक्षण के मनोविज्ञान से ही पूर्णतः परिचित होना चाहिए बल्कि श्रव्य-दृश्य साधनों और सामग्री के चयन, उपयोग और मूल्यांकन की भी विशिष्ट और स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए। तब ही वह शिक्षण के लिए श्रव्य-दृश्य साधनों का उचित उपयोग कर सकेगा। इस लेख में उल्लिखित पांच प्रमुख बातों को अपनाकर ही शिक्षक श्रव्य-दृश्य साधनों के माध्यम से वांछित फल प्राप्त कर सकता है।

●●●

विभिन्न प्रबंधों के अधीन कार्यरत शिक्षकों का कार्य के प्रतिसंतोष

ए० वेंकटा रामी रेड्डी
तथा एन० कृष्णा रेड्डी

औद्योगिक कामगरों के संबन्ध में उनके कार्य के प्रति संतोष के विभिन्न पहलुओं पर काफी शोध कार्य किया गया है। तथापि शिक्षकों के कार्य के प्रति संतोष के अध्ययन में उतनी रुचि नहीं दिखाई जा रही है जबकि शिक्षक देश की सबसे बड़ी कार्य-शक्ति का एक अंग है और जो राष्ट्र के भाग्य निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षकों के कार्य संतोष के बारे में जो थोड़े से अध्ययन किये गये हैं, उनमें कार्य के प्रति संतोष और लिंग आयु आदि जैसी परिस्थिति भिन्नताओं तथा कुछ व्यक्तित्व तथ्यों के बारे में खोज की गई। [चेज, 1951; मेहदी तथा सिन्हा, 1971; सरला जावा, 1971; वेलस्को तथा एलयूटो, 1972; इंगलहार्डट, 1973; आहूजा, 1976; आनन्द, 1977; वेंकटा रामी रेड्डी तथा कृष्णा रेड्डी ए]। परन्तु, शिक्षकों की कार्य संतुष्टि के सबंध में प्रबन्ध के प्रकार, के प्रभाव की किस्म के बारे में अधिक जानकारी नहीं है।

भारत में स्कूल विभिन्न प्रकार के प्रबन्धों के अधीन हैं, उदाहरणार्थ सरकारी स्कूल, प्राइवेट (सहायता प्राप्त) स्कूल तथा विभिन्न स्थानीय निकायों द्वारा संचालित स्कूल यद्यपि इनमें से किसी भी प्रबन्ध के अधीन कार्य करने वाले शिक्षकों को एक जैसे वेतनमान मिलने चाहिए परन्तु उनमें भुगतान की नियमितता, स्थानान्तरण, अन्य लाभ, पर्यवेक्षण की मात्रा और प्रकार आदि के बारे में पर्याप्त अन्तर है। आमतौर पर महसूस किया जाता है कि प्राइवेट स्कूलों में कार्य करने वाले शिक्षकों को मेडिकल छुट्टी, अर्जित अवकाश आदि की रुप में प्राप्त होने वाले लाभ और सुविधाएं बहुत कम है, और उनके पूर्ववृत्त और प्रत्यय-पत्रों को बारीकी से देखा जाता है, और उन्हें नौकरी की सुरक्षा कम है, अत: वे अन्य प्रबन्धों के अधीन कार्य करने वाले शिक्षकों की अपेक्षा कम संतुष्ट होंगे। तथापि, इस पहलू के सम्बन्ध में बहुत कम अनुभूति मूलक प्रमाण उपलब्ध हैं।

समस्या :

अतः इस अध्ययन में खोज किए जाने के लिए जो समस्या चुनी गई है वह है चार विभिन्न प्रकार के प्रबन्धों के अधीन कार्य करने वाले शिक्षकों के कार्य संतोष के स्तरों में अन्तर खोजना।

नमूना :

चार तरह के प्रबन्धों द्वारा संचालित स्कूलों में काय करने वाले 240 शिक्षक इस अध्ययन में नमूने के तौर पर चुने गए। चार तरह के जो स्कूल चुने गये थे वे (i) सरकारी स्कूल, जिनका संचालन सीधा राज्य सरकारों, अर्थात् जन शिक्षा निदेशक के हाथ में हैं, (ii) जिला परिषद स्कूल जिनका संचालन जिला परिषद द्वारा किया जाता है, जो पंचायती राज्य प्रणाली के अन्तर्गत जिला स्तर पर स्थानीय स्वशासन का सबसे उच्च निकाय है, (iii) नगरपालिका स्कूल, जिनका संचालन वहाँ की नगर पालिका परिषदों द्वारा किया जाता है जहाँ स्कूल स्थित हैं, (IV) प्राइवेट स्कूल जो कि प्राइवेट संस्थाओं द्वारा चलाये जाते हैं जिनमें प्रत्येक में एक प्रबन्धक होता है जो स्कूल के सारे प्रशासन पर नियंत्रण करता है।

चित्तूर जिले में जहाँ पर यह जांच कार्य किया गया, शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में 62 माध्यमिक स्कूल हैं, जिनमें से 17 सरकारी स्कूल, 30 जिला परिषद स्कूल, 5 नगरपालिका स्कूल और 10 प्राइवेट स्कूल थे। इस नमूने को केवल शहरी और अर्ध-शहरी स्थानों में स्थित स्कूलों तक सीमित रखा गया था क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में कोई नगरपालिका, सरकारी अथवा प्राइवेट स्कूल नहीं था। जैसा कि ऊपर बताया गया है चार प्रबन्धकों के अन्तर्गत विभाजित 62 स्कूलों में से, 31 स्कूल (सरकारी, जिला परिषद, नगरपालिका और प्राइवेट स्कूलों में से क्रमशः 8, 15, 3 और 5) नमूने के तौर पर चुने गये। इनमें पूर्णतः लड़के वाले पूर्णतः लड़कियों वाले और सह शिक्षासंस्थाएं भी शामिल थी। इन 31 स्कूलों में काम करने वाले सभी बी० एड० सहायक तथा प्रथम ग्रेड पंडित (जिन्हें वही वेतनमान मिलता है जो कि बी०एड० सहायकों को मिलता है) जिनकी संख्या 240 थी, इस अध्ययन के विषय थे। विभिन्न प्रकार के स्कूलों में नमूने के तौर पर चुने गए अध्यापकों का विभाजन इस प्रकार था; सरकारी स्कूल 75,

जिला परिषद स्कूल 81, नगरपालिका स्कूल 22, तथा प्राइवेट स्कूल 62। चारों तरह के प्रबन्धकों में से नमूने के तौर पर चुने गए शिक्षकों में पुरुष और महिला विषयों के अनुपात में कोई अधिक अन्तर नहीं था।

प्रणाली :

माध्यमिक शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि को मापने के लिए इस लेख के लेखकों द्वारा तैयार की गई एक कार्यसूची इस अध्ययन में प्रयोग की गई। इसमें 73 मदें थीं जो कि एक 5 बिन्दुओं वाले पैमाने पर आधारित थी—पूर्णतः सहमत, सहमत—पूर्णतः असहमत। ये मदें 90 मदों वाले प्रारंभिक फार्म को 100 शिक्षकों में परिचालित करके तथा लिकरात (1932) की आंतरिक सामंजस्य मानदण्ड पद्धति द्वारा पद विश्लेषण के बाद चुनी गयी थीं। इन 73 मदों में से 46 सकारात्मक तथा 27 नकारात्मक थीं जिन्हें स्थान की गल्ती से बचने के लिए बेतरतीबी रूप से बांटा गया था। अंक देने की पद्धति भी लिकरात (1932) के अनुसार ही थी जिसने यह खोजा था कि अपेक्षाकृत साधारण कार्य पर आधारित अंकों का संबंध सामान्य जटिल अंक प्रणाली के साथ 0.99 बैठता है। सकारात्मक विवरणों के मामले में पांच विकल्पें पूर्णतः सहमत, ... पूर्णतः असहमत को क्रमशः 5,4,3,2 और 1 अंक दिये गए। नकारात्मक मदों के मामले में अंक देने की प्रक्रिया को उलट दिया गया। इस पद्धति की विभाजन विश्वसनीयता, पूरी प्रणाली के लिए हार्ट (1951) के फार्मूले द्वारा शुद्धता 0.88 थी। प्रणाली की विषय वस्तु, स्वरूप तथा सम्भावी वैधताएं निर्धारित की गई। इस प्रणाली में अंकों को 73 से 365 के बीच अंकित किया जा सकता है। एक अन्य अध्ययन के भाग के रूप में इस प्रणाली को विषयों के नमूने के रूप में अलग-अलग लागू किया गया था।

परिणाम तथा परिचर्चा :

चारों प्रबन्धों के अधीन नियुक्त शिक्षकों के मध्य अंक तथा माध्य-विचलन तालिका 1 में दिये गए हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि सरकारी स्कूलों में कार्य करने वालों का मध्य अंक न्यूनतम है और प्राईवेट स्कूलों में कार्य करने वालों का सबसे अधिक हैं।

तालिका 1

चार प्रबन्धों के अधीन नियुक्त शिक्षकों के मध्य अंक तथा माध्य विचलन

	सरकारी स्कूल	जिला परिषद स्कूल	नगर पालिका स्कूल	प्राईवेट स्कूल
संख्या	75	81	22	62
माध्य	214.00	226.12	218.86	231.77
माध्य विचलन	30.69	23.73	32.37	27.52

तालिका 2

शिक्षकों की कार्य संतुष्टि अंकों के ए० एन० ओ० वी० ए० के परिणाम

स्रोत	संतुष्टि अंक	अन्तर	माध्य अंक	बारम्बारता
वर्गों के बीच में	12010	3	4003.33	5.08*
वर्गों के अन्तर	1,86,001	236	788.14	
कुल	1,98,011	239		

*बारम्बारता 0.01 स्तर पर महत्वपूर्ण है।

चारों वर्गों के शिक्षकों के कार्य तुष्टि अंकों में भिन्नता के एक तरफा विश्लेषण द्वारा और अधिक विश्लेषित किया गया। तालिका 2 में प्रदर्शित इस विश्लेषण के परिणामों से यह पता चलता है कि "बारम्बारता" अनुपात 3 और 236 के अन्तर के लिए 0.01 के स्तर पर महत्वपूर्ण था जिससे यह पता चलता है कि चारों वर्गों के कार्यसंतुष्टि स्तर में महत्वपूर्ण अन्तर है।

यह देखने के लिए कि कौन सा वर्ग अन्य वर्गों से भिन्न है 'टी' टेस्ट प्रयोग में लाया गया। यह देखा गया कि सरकारी स्कूलों में कार्य करने वाले शिक्षकों के माध्य अंक (i) प्राइवेट स्कूल (टी०=3.37; 135 अन्तर के लिए 0.01 स्तर पर महत्वपूर्ण) (ii) जिला परिषद स्कूलों (टी०= 2.77; 154 के अन्तर के लिए 0.01 पर महत्वपूर्ण की अपेक्षा अन्तर अधिक महत्वपूर्ण था। 0.05 स्तर पर

माध्यों में कोई भी अन्तर महत्वपूर्ण नहीं था। इससे यह स्पष्ट है कि प्राईवेट स्कूलों तथा जिला परिषद स्कूलों के शिक्षण सरकारी स्कूलों के शिक्षकों की अपेक्षा अधिक संतुष्ट थे।

अन्य प्रबन्धों के अधीन काम करने वालों की तुलना में सरकारी स्कूलों के शिक्षकों को वेतन अधिक नियमित रूप से मिलता है। प्राइवेट स्कूल वालों की अपेक्षा इनकी नौकरी अधिक सुरक्षित है। उनकी पदोन्नति के अवसर अच्छे हैं। उन्हें पेन्शन, निर्वाह निधि आदि जैसे लाभ भी "सामान्यतः" मिलते है जबकि प्राइवेट अथवा नगरपालिक स्कूलों में कार्य करने वाले शिक्षकों को ये लाभ प्राप्त होने के बारे में कोई निश्चितता नहीं होती। यद्यपि इस बारे में नियम "कागज पर" निर्धारित हैं। सरकारी स्कूलों के शिक्षकों का स्थानान्तरण राज्य में किसी भी स्थान पर हो सकता है परन्तु ऐसे स्थानान्तरण बहुत कम होते हैं और अनेक अध्यापक अपनी इच्छानुसार स्थान पर लगातार कई वर्षों तक कार्य करते रहते हैं।

अतः प्रत्येक व्यक्ति को यह आशा है कि अन्य प्रबन्धों के अधीन विशेषकर प्राइवेट स्कूलों में काम करने वालों की अपेक्षा सरकारी स्कूलों में काम करने वाले अपने कार्य से अधिक संतुष्ट होंगे। परन्तु इस अध्ययन से प्राप्त परिणामों से पता चलता है कि प्राइवेट अथवा जिला परिषद स्कूलों में काम करने वालों की अपेक्षा सरकारी स्कूलों के शिक्षक कम संतुष्ट हैं।

यह पता लगाना उपयोगी होगा कि सरकारी स्कूलों के शिक्षक, प्राइवेट तथा जिला परिषद स्कूलों की अपेक्षा किस दृष्टि से कम संतुष्ट हैं ताकि ऐसे उपाय किये जा सकें कि वे अपने काम से संतुष्ट हों और अपना काम अधिक कुशलता से कर सकें।

निष्कर्ष :

प्राइवेट प्रबन्धों के अधीन कार्य करने वाले शिक्षक सबसे अधिक सन्तुष्ट थे जबकि सरकारी स्कूलों के शिक्षक सबसे कम सन्तुष्ट थे। प्राइवेट स्कूलों तथा जिला परिषदों के स्कूलों में काम करने वाले शिक्षक सरकारी स्कूलों के शिक्षकों की अपेक्षा अधिक संतुष्ट थे।



शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय की गतिविधियाँ—संक्षेप में

शिक्षा मंत्रियों का सम्मेलन :

सभी राज्यों तथा संघीय क्षेत्रों के शिक्षा मंत्रियों का सम्मेलन 13 व 14 जुलाई 1978 को नई दिल्ली में आयोजित किया गया। सम्मेलन में, प्रारंभिक शिक्षा को व्यापक बनाने, शैक्षिक पद्धति तथा विषयवस्तु, प्रौढ़ शिक्षा, कला और संस्कृति, शारीरिक शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति के संबंध में निर्णय लिए गए। सम्मेलन में तीन संकल्प पारित किए गए जिनकी प्रतियां नीचे उद्धरित की गई हैं :

I. शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन में, कार्य-सूची नोट में सुझाई गई कार्रवाई की रूपरेखा पर विचार किया गया और उसे अनुमोदित किया गया। सम्मेलन में निम्नलिखित बातों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया :

1. प्रारंभिक शिक्षा, विशेष रूप से अनौपचारिक शिक्षा के व्यापक विस्तार के लिए स्वैच्छिक प्रयासों की व्यवस्था करना।
2. प्राथमिक स्कूलों में कारगर शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक सुविधाओं, विशेष-रूप से एक सादे कार्यात्मिक भवन की व्यवस्था की जाए।
3. अध्यापकों की कोटि में सुधार किया जाना चाहिए और इसलिए अध्यापक शिक्षा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।
4. लड़कियों, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के दाखिले तथा उन्हें स्कूलों में बनाए रखने के लिए विशेष प्रयास करने की आवश्यकता है, और जहां कहीं आवश्यक हो, मध्याह्न भोजन, वर्दियां, उपस्थिति छात्रवृत्तियां इत्यादि जैसी विशेष प्रेरणाएं दी जानी चाहिए।
5. क्योंकि बड़ी मात्रा में धन की आवश्यकता होगी इसलिए स्कूल सुधार कार्यक्रमों के लिए निजी रूप से दान प्राप्त करने के लिए प्रयास करने होंगे, जो आयकर से छूट पाने के पात्र हों।
6. पर्वतीय राज्यों तथा मरुस्थलीय क्षेत्रों में पेश आने वाली समस्याओं को हल करने के लिए विशेष प्रयास करने की आवश्यकता है।
7. एक समयबद्ध कार्यक्रम शुरू किया जाना चाहिए जिसके अनुसार रा०शै०अ०प्र० परिषद् को, अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों के लिए न केवल मार्गदर्शी रूपरेखाओं की व्यवस्था करनी चाहिए, बल्कि आदर्श शिक्षण सामग्री की भी व्यवस्था करनी चाहिए।

II. शिक्षा पद्धति के संबंध में संकल्प

शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन में देश में औपचारिक शिक्षा पद्धति पर विचार किया गया। सम्मेलन ने इस तथ्य को नोट किया कि 26 राज्यों तथा संघीय क्षेत्रों ने 10+2+3 प्रणाली पहले ही लागू कर दी है, जैसाकि शिक्षा आयोग, 1964-66 ने तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 में सिफारिश की गई है।

सम्मेलन ने, प्रारंभिक शिक्षा के संबंध में राज्यों के दायित्वों पर भी विचार किया और उसका यह मत था कि यह पद्धति राज्य नीति के निर्देशात्मक सिद्धान्त के प्रतिकूल नहीं है जब तक कि 14 वर्ष की आयु तक (कक्षा VIII) निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के दायित्व को स्वीकार किया जाता है।

सम्मेलन इस बात से सहमत है कि स्कूल शिक्षा पद्धति में, प्रारंभिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तरों की 12 वर्ष की अवधि शामिल होनी चाहिए।

उच्च शिक्षा को अवर-स्नातक स्तर की अवधि तीन वर्ष की हो सकती है। तथापि, यदि कोई राज्य सरकार चाहे तो वह दो वर्ष का पास पाठ्यक्रम तथा तीन वर्ष का आनर्स पाठ्यक्रम रख सकती है।

III. दस वर्षीय पाठ्यचर्या की विषयवस्तु संबंधी संकल्प

शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन ने ईश्वर भाई पटेल समिति की रिपोर्ट पर विचार किया, गणित और विज्ञान में, वैकल्पिक पाठ्यक्रमों से संबंधित सिफारिश को छोड़कर उसे स्वीकार कर लिया। सम्मेलन ने सुझाव दिया कि इस सिफारिश विशेष, का रा०शै०अ०प्र० परिषद् द्वारा और अध्ययन किया जाना चाहिए तथा उसके विचार राज्य सरकारों/माध्यमिक शिक्षा बोर्डों को उपलब्ध किए जाएं।

शैक्षिक प्रौद्योगिकी

शैक्षिक प्रौद्योगिकी परियोजना, शैक्षिक प्रौद्योगिकी के लिए केन्द्र, नई दिल्ली

शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र ने, रेडियो की मदद से तथा मुद्रित सामग्री की सहायता से कक्षा I से III में बच्चों को प्रथम भाषा के रूप में हिन्दी पढ़ाने के संबंध में एक व्यवहार्य योजना तैयार की है। प्रारंभ में, इस परियोजना को कक्षा I के लिए सन् 1979 से जयपुर में शुरू करने का प्रस्ताव है।

केन्द्र ने, यूनेस्को के शरद 1978 में होनेवाले 20 वें महासम्मेलन में आयोजित की जाने वाली प्रदर्शनी के लिए अनेक लोक और परम्परागत खिलौने भेजे हैं।

विज्ञान में प्राथमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए बहु-माध्यम पैकेज उपलब्ध करने की दृष्टि से केन्द्र ने पैकेज का प्रदर्शन करने के लिए जोरहाट में जून 1978 में एक चार-दिवसीय कार्यशाला आयोजित की। इसमें उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के सात राज्यों/संघ क्षेत्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

ऐसा ही एक प्रदर्शन, अगस्त में पोर्ट ब्लेयर में आयोजित किया गया।

राज्यों में शैक्षिक प्रौद्योगिकी कार्यक्रम

शै०प्रौ०सैल, गुजरात—गैर-औपचारिक शिक्षा के लिए शिक्षण सामग्री तैयार करने के लिए जुलाई में दो कार्यशालाएं आयोजित कीं।

—वल्लभ विद्यानगर में दो वार्ता लेखक कार्यशालाएं आयोजित की गई जिनमें कक्षा VII के लिए 'अंग्रेजी शिक्षण' श्रृंखला के लिए रेडियो वार्ताएं तथा समर्थन सामग्री तयार की गई।

—शैक्षिक खेलों तथा खेल सामग्री के जरिए शिक्षा को किस प्रकार और अधिक कारगर व रुचिकर बनाया जा सकता है, इस दृष्टिकोण से एस०आई०ई० और एस०आई०एस०ई० के स्टाफ सदस्यों को प्रशिक्षित करने के लिए एक कार्यशाला आयोजित की।

—आकाशवाणी के सहयोग से कक्षा VII के लिए 'अंग्रेजी शिक्षण' रेडियो पाठ श्रृंखला शुरू की गई है। प्रत्येक शनिवार को आधे घंटे के लिए पाठ प्रसारित किए जाते हैं।

शै०प्रौ०सैल, महाराष्ट्र—तीन प्रकाशन प्रकाशित किए हैं, अर्थात् कक्षा V और VI के लिए अंग्रेजी के अध्यापकों के लिए टेलीविजन पुस्तिका और कक्षा VIII के लिए विज्ञान अध्यापकों के लिए पुस्तिका। इसके अतिरिक्त एक वार्षिक कार्यक्रम चार्ट भी तैयार किया गया था। विभिन्न विषयों पर 47 अध्यापक-टिप्पणियां तैयार की गई और टी०वी० रखने वाले सभी स्कूलों को भेजी गई।

—स्कूलों को, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों के स्कूलों को टी०वी०सेट सप्लाई करने के प्रयास जारी रहे। अब तक 802 टी०वी०सेट सप्लाई किए गए हैं।

—जुलाई से, ई०टी०वी० कार्यक्रम सुबह प्रसारित किए जाते हैं। एक महीने में अध्यापकों के लिए एक पाठ और कक्षा V, VI और VIII के लिए चार-चार पाठ। दोपहर बाद इन कार्यक्रमों को पुनः प्रसारित किया जाता है। लगभग 2,50,000 छात्र इन कार्यक्रमों का लाभ उठा रहे हैं।

—इलेक्ट्रानिक्स फोटोग्राफी और कठपुतली कला में विशिष्ट पाठ्यक्रम आयोजित किए। 70 से अधिक अध्यापकों ने इन पाठ्यक्रमों का लाभ उठाया।

शै० प्रौ० सैल, राजस्थान—राज्य सामुदायिक विकास विभाग के सहयोग से टी०वी० उपभोक्ता अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए एक दिन का प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित करेगा, 13 केन्द्रों में यह प्रशिक्षण दिया जायगा। ई०टी०वी० के हार्डवेयर और सोफ्टवेयर साइडों में छः जिलों के लगभग 500 उपभोक्ता अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाएगा। इसका वित्तीय दायित्व विकास विभाग द्वारा वहन किया जाएगा।

अध्यापकों को राष्ट्रीय पुरस्कार, 1977

वर्ष 1977 के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार वितरण समारोह 28 अगस्त, 1978 को विज्ञान भवन, नई दिल्ली में

जिला परिषद स्कूल 81, नगरपालिका स्कूल 22, तथा प्राइवेट स्कूल 62। चारों तरह के प्रबन्धकों में से नमूने के तौर पर चुने गए शिक्षकों में पुरुष और महिला विषयों के अनुपात में कोई अधिक अन्तर नहीं था।

प्रणाली :

माध्यमिक शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि को मापने के लिए इस लेख के लेखकों द्वारा तैयार की गई एक कार्यसूची इस अध्ययन में प्रयोग की गई। इसमें 73 मदे थीं जो कि एक 5 बिन्दुओं वाले पैमाने पर आधारित थी—पूर्णत: सहमत, सहमत—पूर्णत: असहमत। ये मदें 90 मदों वाले प्रारंभिक फार्म को 100 शिक्षकों में परिचालित करके तथा लिकरात (1932) की आंतरिक सामंजस्य मानदण्ड पद्धति द्वारा पद विश्लेषण के बाद चुनी गयी थीं। इन 73 मदों में से 46 सकारात्मक तथा 27 नकारात्मक थीं जिन्हें स्थान की गल्ती से बचने के लिए बेतरतीबी रूप से बांटा गया था। अंक देने की पद्धति भी लिकरात (1932) के अनुसार ही थी जिसने यह खोजा था कि अपेक्षाकृत साधारण कार्य पर आधारित अंकों का संबंध सामान्य जटिल अंक प्रणाली के साथ 0.99 बैठता है। सकारात्मक विवरणों के मामले में पांच विकल्पें पूर्णत: सहमत, ... पूर्णत: असहमत को क्रमश: 5,4,3,2 और 1 अंक दिये गए। नकारात्मक मदों के मामले में अंक देने की प्रक्रिया को उलट दिया गया। इस पद्धति को विभाजन विश्वसनीयता, पुरी प्रणाली के लिए होर्ट (1951) के फार्मूले द्वारा शुद्धता 0.88 थी। प्रणाली की विषय वस्तु, स्वरूप तथा सम्भावी वैधताएं निर्धारित की गई। इस प्रणाली में अंकों को 73 से 365 के बीच अंकित किया जा सकता है। एक अन्य अध्ययन के भाग के रूप में इस प्रणाली को विषयों के नमूने के रूप में अलग-अलग लागू किया गया था।

परिणाम तथा परिचर्चा :

चारों प्रबन्धों के अधीन नियुक्त शिक्षकों के मध्य अंक तथा माध्य-विचलन तालिका 1 में दिये गए हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि सरकारी स्कूलों में कार्य करने वालों का मध्य अंक न्यूनतम है और प्राईवेट स्कूलों में कार्य करने वालों का सबसे अधिक हैं।

तालिका 1

चार प्रबन्धों के अधीन नियुक्त शिक्षकों के मध्य अंक तथा माध्य विचलन

	सरकारी स्कूल	जिला परिषद स्कूल	नगर पालिका स्कूल	प्राईवेट स्कूल
संख्या	75	81	22	62
माध्य	214.00	226.12	218.86	231.77
माध्य विचलन	30.69	23.73	32.37	27.52

तालिका 2

शिक्षकों की कार्य संतुष्टि अंकों के ए० एन० ओ० वी० ए० के परिणाम

स्रोत	संतुष्टि अंक	अन्तर	माध्य अंक	बारम्बारता
वर्गों के बीच में	12010	3	4003.33	5.08*
वर्गों के अन्तर	1,86,001	236	788.14	
कुल	1,98,011	239		

*बारम्बारता 0.01 स्तर पर महत्वपूर्ण है।

चारों वर्गों के शिक्षकों के कार्य तुष्टि अंकों में भिन्नता के एक तरफा विश्लेषण द्वारा और अधिक विश्लेषित किया गया। तालिका 2 में प्रदर्शित इस विश्लेषण के परिणामों से यह पता चलता है कि "बारम्बारता" अनुपात 3 और 236 के अन्तर के लिए 0.01 के स्तर पर महत्वपूर्ण था जिससे यह पता चलता है कि चारों वर्गों के कार्यसंतुष्टि स्तर में महत्वपूर्ण अन्तर है।

यह देखने के लिए कि कौन सा वर्ग अन्य वर्गों से भिन्न है 'टी' टेस्ट प्रयोग में लाया गया। यह देखा गया कि सरकारी स्कूलों में कार्य करने वाले शिक्षकों के माध्य अंक (i) प्राइवेट स्कूल (टी० = 3.37; 135 अन्तर के लिए 0.01 स्तर पर महत्वपूर्ण) (ii) जिला परिषद स्कूलों (टी० = 2.77; 154 के अन्तर के लिए 0.01 पर महत्वपूर्ण की अपेक्षा अन्तर अधिक महत्वपूर्ण था। 0.05 स्तर पर

माध्यों में कोई भी अन्तर महत्वपूर्ण नहीं था । इससे यह स्पष्ट है कि प्राईवेट स्कूलों तथा जिला परिषद स्कूलों के शिक्षण सरकारी स्कूलों के शिक्षकों की अपेक्षा अधिक संतुष्ट थे ।

अन्य प्रबन्धों के अधीन काम करने वालों की तुलना में सरकारी स्कूलों के शिक्षकों को वेतन अधिक नियमित रूप से मिलता है । प्राइवेट स्कूल वालों की अपेक्षा इनकी नौकरी अधिक सुरक्षित है । उनको पदोन्नति के अवसर अच्छे हैं । उन्हें पेन्शन, निर्वाह निधि आदि जैसे लाभ भी "सामान्यत:" मिलते है जबकि प्राइवेट अथवा नगरपालिक स्कूलों में कार्य करने वाले शिक्षकों को ये लाभ प्राप्त होने के बारे में कोई निश्चितता नहीं होती। यद्यपि इस बारे में नियम "कागज पर" निर्धारित हैं । सरकारी स्कूलों के शिक्षकों का स्थानान्तरण राज्य में किसी भी स्थान पर हो सकता है परन्तु ऐसे स्थानान्तरण बहुत कम होते हैं और अनेक अध्यापक अपनी इच्छानुसार स्थान पर लगातार कई वर्षो तक कार्य करते रहते हैं ।

अत: प्रत्येक व्यक्ति को यह आशा है कि अन्य प्रबन्धों के अधीन विशेषकर प्राइवेट स्कूलों में काम करने वालों की अपेक्षा सरकारी स्कूलों में काम करने वाले अपने कार्य से अधिक संतुष्ट होंगे । परन्तु इस अध्ययन से प्राप्त परिणामों से पता चलता है कि प्राइवेट अथवा जिला परिषद स्कूलों में काम करने वालों की अपेक्षा सरकारी स्कूलों के शिक्षक कम संतुष्ट हैं ।

यह पता लगाना उपयोगी होगा कि सरकारी स्कूलों के शिक्षक, प्राइवेट तथा जिला परिषद स्कूलों की अपेक्षा किस दृष्टि से कम संतुष्ट हैं ताकि ऐसे उपाय किये जा सकें कि वे अपने काम से संतुष्ट हों और अपना काम अधिक कुशलता से कर सकें ।

निष्कर्ष :

प्राइवेट प्रबन्धों के अधीन कार्य करने वाले शिक्षक सबसे अधिक सन्तुष्ट थे जबकि सरकारी स्कूलों के शिक्षक सबसे कम सन्तुष्ट थे । प्राइवेट स्कूलों तथा जिला परिषदों के स्कूलों में काम करने वाले शिक्षक सरकारी स्कूलों के शिक्षकों की अपेक्षा अधिक संतुष्ट थे ।

●●●

पर आना चाहिए। मुख्य बातों और धारणाओं को समझ लेने के बाद ही आगामी कार्यवाही शुरू की जानी चाहिए।

4. अनुवर्ती कार्य

श्रव्य-दृश्य साधन के प्रयोग के बाद उसकी समीक्षा अथवा उस पर विचार-विमर्श को अनुवर्ती कार्य कहा जा सकता है। इसी स्तर पर "अस्पष्ट" अथवा न समझ आने वाले सिद्धान्त अथवा सम्बन्ध को स्पष्ट किया जा सकता है और उससे संबंधित छात्रों के प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, इस प्रक्रिया के जरिए प्रदर्शन में निहित विशेषताओं का उल्लेख किया जा सकता है और छात्रों की विशेष रूचियों का पता लगाया जा सकता है। उनकी रूचियां यदि उपयुक्त हों तो वे छात्र के कार्यों अथवा उन भावी कार्यकलापों का आधार हो सकती है जो विषय से संबंधित हों।

ऐसे अनेक अनुवर्ती कार्य है जिनका उपयोग प्रत्येक छात्र की जरूरतों को पूरा करने के लिए किया जा सकता है। अनेक कामों में से प्रत्येक छात्र को कम-से-कम एक काम अपनी रूचि का करने को मिल जाएगा और वह उसे समझ सकेगा। कुछ छात्र लेखन, पठन, शोध और परामर्श के जरिए सामग्री एकत्र करना, भ्रमण अथवा शैक्षिक दौरे पर जाना पसंद करेंगे जबकि अन्य चित्रकारी, नक्शे तथा चित्र बनाना, प्रसारण नाटक तथा संगीत जैसे अधिक कलापूर्ण कार्य करना चाहेंगे।

शिक्षण सामग्री का पुनः उपयोग लाभकारी और मितव्ययी होता है क्योंकि इससे छात्र दूसरी बार में उस सिद्धान्त को भली प्रकार समझ सकेंगे जिसे वे पहले बार में अच्छी तरह नहीं समझ पाये थे। दूसरी ओर, विभिन्न प्रकार की सामग्री का उपयोग भी लाभप्रद सिद्ध हो सकता है क्योंकि एक प्रकार के श्रव्य-दृश्य साधन से यदि कोई बात स्पष्ट न हो सके तो दूसरे साधन से उसे भली भांति स्पष्ट किया जा सकता है। विभिन्न साधनों का उपयोग छात्रों को एकरसता से बचाता है और इस प्रकार उस विषय में उनकी रूचि बनी रहती है।

5. मूल्यांकन

शिक्षण में श्रव्य-दृश्य साधनों के उपयोग को प्रभावी बनाने के लिए अन्तिम और सबसे महत्वपूर्ण बात है मूल्यांकन। प्रभावी शिक्षण साधनों को निम्नलिखित किसी एक अथवा अधिक उद्देश्य को पूरा करना चाहिए :

- नई रूचियां पैदा करना
- और कार्यकलापों को बढ़ावा देना
- सूचना प्रदान करना
- प्रस्तावना अथवा समीक्षा का अवसर प्रदान करना
- अभिवृत्तियों का विकास करना

उपरोक्त बातों को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि अनुवर्ती कार्यों के बाद शिक्षक को समय निकालकर प्रयोग में लाये गए श्रव्य-दृश्य साधनों को कमियों और अच्छाइयों का पता लगाना चाहिए। यह मूल्यांकन साधनों के उपयोग के दौरान और उसके बाद को छात्रों की अभिवृत्तियों को देखकर किया जा सकता है। शिक्षक द्वारा अनुवर्ती कार्यों के परिणामों की सावधानीपूर्वक जांच, छात्रों को प्रतिक्रिया के संबंध में कुशलतापूर्वक उनसे पूछे गये प्रश्नों और उसके उपयोग से अन्य साथी शिक्षकों द्वारा प्राप्त परिणामों के संबंध में विचार-विमर्श किसी साधन विशेष को सफलता का अलोचनात्मक मूल्यांकन करने में सतर्क शिक्षक को सहायक होंगे। मूल्यांकन यदि उचित प्रकार से किया जाए तो भविष्य में उस श्रव्य-दृश्य साधन के उपयोग के बारे में निर्णय लेने में बहुत सहायता मिलती है।

सारांश

शिक्षा-प्राप्ति को प्रक्रिया को देखने, सुनने, रुचि, स्पर्श और गंध संबंधी इंद्रियों से गहरा सम्बन्ध होता है। श्रव्य और दृश्य साधनों के जरिए शिक्षक अपने विचारों को बड़ी हद तक सम्प्रेषित कर सकता है। अन्य तीन इंद्रियां इस प्रक्रिया में कम मात्रा में सहायता करती हैं। अतः जो कुछ छात्र देखता है और सुनता है उसका उसके व्यवहार पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है और इसका प्रभाव उसकी शिक्षा-प्राप्ति पर पड़ता है।

सम्प्रेषण के अनेक ऐसे साधन उपलब्ध हैं जिनका प्रयोग इन इंद्रियों की सहायता से छात्रों की शिक्षा को बढ़ाने और उन्हें निर्देश देने के लिए किया जा सकता है। इन साधनों को ही हम श्रव्य-दृश्य साधनों के रूप में जानते हैं। आज के शिक्षक के लिए सम्प्रेषण के सभी साधनों से परिचित होना आवश्यक है ताकि अपने छात्रों के समक्ष श्रव्य अथवा दृश्य किसी भी साधन को अच्छी तरह प्रस्तुत कर सके। शिक्षक को यह समझ लेना चाहिए कि श्रव्य-दृश्य साधन क्योंकि विस्तृत सूचना प्रदान करते है; अतः किसी साधन को शिक्षण के साधन के रूप में प्रयोग करने से पहले छात्र को इसका कुछ पूर्व अनुभव और जानकारी होनी चाहिए। आज के शिक्षक को न केवल विषय-वस्तु तथा शिक्षण के मनोविज्ञान से ही पूर्णतः परिचित होना चाहिए बल्कि श्रव्य-दृश्य साधनों और सामग्री के चयन, उपयोग और मूल्यांकन की भी विशिष्ट और स्पष्ट जानकारी होनी चाहिए। तब ही वह शिक्षण के लिए श्रव्य-दृश्य साधनों का उचित उपयोग कर सकेगा। इस लेख में उल्लिखित पांच प्रमुख बातों को अपनाकर ही शिक्षक श्रव्य-दृश्य साधनों के माध्यम से वांछित फल प्राप्त कर सकता है।

●●●

विभिन्न प्रबंधों के अधीन कार्यरत शिक्षकों का कार्य के प्रतिसंतोष

ए० वेंकटा रामी रेड्डी

तथा एन० कृष्णा रेड्डी

औद्योगिक कामगरों के संबन्ध में उनके कार्य के प्रति संतोष के विभिन्न पहलुओं पर काफी शोध कार्य किया गया है। तथापि शिक्षकों के कार्य के प्रति संतोष के अध्ययन में उतनी रुचि नहीं दिखाई जा रही है जबकि शिक्षक देश की सबसे बड़ी कार्य-शक्ति का एक अंग है और जो राष्ट्र के भाग्य निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षकों के कार्य संतोष के बारे में जो थोड़े से अध्ययन किये गये हैं, उनमें कार्य के प्रति संतोष और लिंग आयु आदि जैसी परिस्थिति भिन्नताओं तथा कुछ व्यक्तित्व तथ्यों के बारे में खोज की गई। [चेज, 1951; मेहदी तथा सिन्हा, 1971; सरला जावा, 1971; बेलस्को तथा एलयूटो, 1972; इंगलहार्डट, 1973; आहूजा, 1976; आनन्द, 1977; वेंकटा रामी रेड्डी तथा कृष्णा रेड्डी ए]। परन्तु, शिक्षकों की कार्य संतुष्टि के संबंध में प्रबन्ध के प्रकार, के प्रभाव की किस्म के बारे में अधिक जानकारी नहीं है।

भारत में स्कूल विभिन्न प्रकार के प्रबन्धों के अधीन हैं, उदाहरणार्थ सरकारी स्कूल, प्राइवेट (सहायता प्राप्त) स्कूल तथा विभिन्न स्थानीय निकायों द्वारा संचालित स्कूल यद्यपि इनमें से किसी भी प्रबन्ध के अधीन कार्य करने वाले शिक्षकों को एक जैसे वेतनमान मिलने चाहिए परन्तु उनमें भुगतान की नियमितता, स्थानान्तरण, अन्य लाभ, पर्यवेक्षण की मात्रा और प्रकार आदि के बारे में पर्याप्त अन्तर है। आमतौर पर महसूस किया जाता है कि प्राइवेट स्कूलों में कार्य करने वाले शिक्षकों को मेडिकल छुट्टी, अर्जित अवकाश आदि की रुप में प्राप्त होने वाले लाभ और सुविधाएं बहुत कम है, और उनके पूर्ववृत्त और प्रत्यय-पत्रों को बारीकी से देखा जाता है, और उन्हें नौकरी की सुरक्षा कम है, अत: वे अन्य प्रबन्धों के अधीन कार्य करने वाले शिक्षकों की अपेक्षा कम संतुष्ट होंगे। तथापि, इस पहलू के सम्बन्ध में बहुत कम अनुभूति मूलक प्रमाण उपलब्ध हैं।

समस्या :

अतः इस अध्ययन में खोज किए जाने के लिए जो समस्या चुनी गई है वह है चार विभिन्न प्रकार के प्रबन्धों के अधीन कार्य करने वाले शिक्षकों के कार्य संतोष के स्तरों में अन्तर खोजना।

नमूना :

चार तरह के प्रबन्धों द्वारा संचालित स्कूलों में काय करने वाले 240 शिक्षक इस अध्ययन में नमूने के तौर पर चुने गए। चार तरह के जो स्कूल चुने गये थे वे (i) सरकारी स्कूल, जिनका संचालन सीधा राज्य सरकारों, अर्थात् जन शिक्षा निदेशक के हाथ में हैं, (ii) जिला परिषद स्कूल जिनका संचालन जिला परिषद द्वारा किया जाता है, जो पंचायती राज्य प्रणाली के अन्तर्गत जिला स्तर पर स्थानीय स्वशासन का सबसे उच्च निकाय है, (iii) नगरपालिका स्कूल, जिनका संचालन वहाँ की नगर पालिका परिषदों द्वारा किया जाता है जहाँ स्कूल स्थित हैं, (IV) प्राइवेट स्कूल जो कि प्राइवेट संस्थाओं द्वारा चलाये जाते हैं जिनमें प्रत्येक में एक प्रबन्धक होता है जो स्कूल के सारे प्रशासन पर नियंत्रण करता है।

चित्तूर जिले में जहां पर यह जांच कार्य किया गया, शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में 62 माध्यमिक स्कूल हैं, जिनमें से 17 सरकारी स्कूल, 30 जिला परिषद स्कूल, 5 नगरपालिका स्कूल और 10 प्राइवेट स्कूल थे। इस नमूने को केवल शहरी और अर्ध-शहरी स्थानों में स्थित स्कूलों तक सीमित रखा गया था क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में कोई नगरपालिका, सरकारी अथवा प्राइवेट स्कूल नहीं था। जैसा कि ऊपर बताया गया है चार प्रबन्धकों के अन्तर्गत विभाजित 62 स्कूलों में से, 31 स्कूल (सरकारी, जिला परिषद, नगरपालिका और प्राइवेट स्कूलों में से क्रमशः 8, 15, 3 और 5) नमूने के तौर पर चुने गये। इनमें पूर्णतः लड़के वाले पूर्णतः लड़कियों वाले और सह शिक्षासंस्थाएं भी शामिल थी। इन 31 स्कूलों में काम करने वाले सभी बी०एड० सहायक तथा प्रथम ग्रेड पंडित (जिन्हें वही वेतनमान मिलता है जो कि बी०एड० सहायकों को मिलता है) जिनकी संख्या 240 थी, इस अध्ययन के विषय थे। विभिन्न प्रकार के स्कूलों में नमूने के तौर पर चुने गए अध्यापकों का विभाजन इस प्रकार था; सरकारी स्कूल 75,

आयोजित किया गया। ये पुरस्कार भारत के उप-राष्ट्रपति द्वारा प्रदान किए गए। अध्यापकों के दिल्ली आवास के दौरान उन्हें राज्य-अतिथि समझा गया और उनका एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम प्रधानमंत्री के साथ उनकी भेंट थी।

वर्ष 1977 के लिए राष्ट्रीय पुरस्कारों के लिए 110 अध्यापक चुने गए। इनमें 58 प्राथमिक अध्यापक, 42 माध्यमिक अध्यापक, सात संस्कृत पाठशालाओं/टोलों के अध्यापक और तीन अरबी/फारसी अध्यापक हैं।

प्रत्येक पुरस्कार के साथ एक योग्यता प्रमाण-पत्र, एक धातु का बिल्ला तथा 1000 रुपये नकद दिए जाते हैं।

उच्च शिक्षा

केन्द्रीय विश्वविद्यालय

राष्ट्रपति ने, उत्तर-पूर्वी पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग के विजिटर की हैसियत से डा० ए० के० धातु को 26 जुलाई 1978 से पांच वर्ष की अवधि के लिए विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त किया है।

ग्राम उच्च शिक्षा

रिपोर्ट की तिमाही के दौरान वेतन, वृत्तिकाओं तथा फुटकर के आवर्ती खर्च के केन्द्रीय हिस्से को पूरा करने के लिए ग्राम संस्थानों को कुल 46,774.37 रुपये के अनुदान स्वीकृत किए गए।

अप्रैल 1978 में हुई परीक्षाओं के दौरान ग्राम संस्थानों के 144 छात्र परीक्षाओं में बैठे। इनमें से 133 छात्र सफल घोषित किए गए।

उच्च शिक्षा संस्थाओं को अनुदान

जून से अगस्त 1978 की अवधि के दौरान संस्थाओं को निम्नलिखित अनुदान दिए गए :

क्रम संख्या	संस्था का नाम	योजनेत्तर	योजनागत
		रु०	रु०
1.	गांधीग्राम संस्थान, गांधीग्राम	5,00,000	..
2.	गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद	15,00,000	..
3.	भारतीय विश्वविद्यालय एसोसिएशन	40,000	83,000
4.	डा० जाकिर हुसैन मेमोरियल कालेज, दिल्ली	52,667	..
5.	भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला	5,00,000	30,000

तकनीकी शिक्षा

इंजीनियरी तथा प्रौद्योगिकी में स्नातकोत्तर शिक्षा तथा अनुसंधान की समीक्षा

भारत सरकार ने, देश में इंजीनियरी तथा प्रौद्योगिकी में स्नातकोत्तर शिक्षा और अनुसंधान के पूरे कार्यक्रम की समीक्षा करने के लिए विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विभाग के सचिव, डा० ए० रामचन्द्रन की अध्यक्षता में हाल ही में एक उच्च अधिकार-प्राप्त समिति नियुक्त की। ऐसी ही एक समीक्षा पिछली बार सन 1959–60 में प्रो० एम० एस० ठैकर की अध्यक्षता में एक समिति द्वारा की गई थी।

समिति की पहली बैठक 21 अगस्त, 1978 को हुई थी। इसका मत था कि स्नातकोत्तर शिक्षा और अनुसंधान के उद्देश्यों का पुनर्निर्धारण किया जाना चाहिए। स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों को और अधिक नम्य तथा व्यापक बनाने के लिए क्रेडिट पद्धति लागू की जानी चाहिए। पुराने तथा स्टीरिओ प्रकार के पाठ्यक्रम बंद किए जाने चाहिए। फिलहाल, स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में, सृजनात्मकता, तकनीकी-आर्थिक मूल्यांकन, निर्माण प्रबंध, परियोजना प्रबंध आदि जैसे बहुत से महत्वपूर्ण क्षेत्र शामिल नहीं है। सभी केन्द्रों में सभी पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करना आवश्यक नहीं है। संभवतः संस्थाएं—विशेषरूप से एक-दूसरे के निकट स्थित संस्थाएं अनेक विषयों में संयुक्त रूप से स्नातकोत्तर कार्यक्रम प्रारंभ कर सकते हैं। एम० टेक० पाठ्यक्रमों को डाक्ट्रेट डिग्रियों से अलग करके अंतिम बनाया जा सकता है। स्नातकोत्तर संस्थाओं में परामर्श प्रथा को नियमित करना आवश्यक समझा गया। स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में दाखिल सभी छात्रों को छात्रवृत्तियों देने की वर्तमान प्रथा की पुनः जांच की जानी चाहिए।

इस बात पर सहमति थी कि समिति को देशभर के प्रमुख उद्योगों के प्रतिनिधियों से बात करनी चाहिए ताकि इंजीनियरी और प्रौद्योगिकी में स्नातकोत्तर शिक्षा तथा अनुसंधान के संबंध में उनके विचार तथा सुझाव प्राप्त किए जा सकें।

टी०टी०टी०आई० के लिए समीक्षा समिति

केन्द्रीय सरकार द्वारा चंडीगढ़, मद्रास, भोपाल और कलकत्ता स्थित चार टी० टी० टी० आई० के लिए नियुक्त समीक्षा समिति के सिफारिशों के अनुसार केन्द्रीय सरकार ने अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित निर्णय किए :

1. शिक्षक प्रशिक्षण, जिसमें शिक्षा-शास्त्र भी शामिल हैं, और औद्योगिक प्रशिक्षण का कार्य 12 सप्ताह की अवधि के माडुलर फार्म में दिया जाना

चाहिए, जिसे एक अलग यूनिट समझा जाए और यह आवश्यक नहीं है कि वह एक क्रम में हो ।

2. अभिवृत्ति में परिवर्तन लाने के लिए, तकनीशियन शिक्षा से संबंधित वरिष्ठ व्यक्तियों के लिए शिक्षा शास्त्र में आधुनिक तकनीकों को समझने के लिए विशेष पाठ्यक्रम आयोजित किए जाने हैं ।

3. प्रत्येक टी० टी० टी० आई० के लिए, तकनीशियन शिक्षा में रुचि रखने वाले क्षेत्र में विख्यात व्यक्तियों में से, भारत सरकार द्वारा अलग-अलग एक अध्यक्ष नियुक्त किया जाना चाहिए। सभी चार टी० टी० टी० आई० के लिए एक समन्वय परिषद् होगी जिसका अध्यक्ष शिक्षा राज्य मंत्री होगा ।

4. 1 जून, 1978 से शिक्षक प्रशिक्षार्थियों के लिए वृत्तिका की राशि 150 रु० प्रति मास से बढ़ाकर 200 रु० प्रति मास की गई है ।

भाषाएं

केन्द्र प्रायोजित योजना—अहिन्दी भाषी राज्यों/संघ क्षेत्रों में हिंदी अध्यापकों की नियुक्ति

उपरोक्त योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित राज्य सरकारों को निम्न ब्योरे के अनुसार 122.04 लाख रुपये की केन्द्रीय सहायता स्वीकृत की गई है :

1. कर्नाटक . .	10 लाख रुपये
2. आन्ध्र प्रदेश .	20 ,, ,,
3. केरल . .	20 ,, ,,
4. उड़ीसा . .	20 ,, ,,
5. असम . .	35 ,, ,,
6. मेघालय . .	6.84 ,, ,,
7. मणिपुर . .	6 ,, ,,
8. सिक्किम . .	4.20 ,, ,,

पुरस्कार

संस्कृत, फारसी, और अरबी विद्वानों को सम्मान प्रमाणपत्र प्रदान करने की मंत्रालय की योजना के अन्तर्गत, राष्ट्रपति सचिवालय ने इस वर्ष स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर इन पुरस्कारों के लिए निम्नलिखित विद्वानों के नामों की घोषणा की :

संस्कृत

1. डा० के० कृष्णमूर्ति, कर्नाटक
2. श्री सुन्दरम अय्यर नीलकंठ शास्त्री, केरल
3. प्रो० प्रह्लाद प्रधान, गुजरात
4. श्री वी० ए० श्रीनिवासावर्दाचार्य वेंकटाराघवाचार्य, तमिलनाडु
5. डा० रेवा प्रसाद द्विवेदी, उ० प्र०
6. श्री यादवेन्द्रनाथ राय, प० बंगाल

फारसी

1. प्रो० सैयद हसन अस्क[illegible], बिहार

अरबी

1. श्री अबुल हस्मत मो० [illegible] नदवी, बिहार

पिछले वर्षों की भांति देशभर में श्रावणी पूर्णिमा (रक्षा बंधन) के अवसर पर 18 अगस्त, 1978 को इस वर्ष भी संस्कृत दिवस मनाया गया । दिल्ली में, शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय ने राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान और श्री लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली के सहयोग से उस दिन राष्ट्रीय संग्रहालय के आडिटोरियम में एक छोटासा समारोह आयोजित किया । केन्द्रीय शिक्षा मंत्री डा० प्रताप चन्द्र चन्द्र ने समारोह की अध्यक्षता की । प्राच्यवाणी, कलकत्ता के नाटक दल द्वारा इस अवसर पर परमहंस श्री रामकृष्ण के जीवन पर संस्कृत में 'युग जीवनम्' नाटक भी अभिनीत किया गया ।

खेलकूद

मंत्रालय ने निम्नलिखित खेल टीमों और प्रतिनिधि-मंडलों को स्वीकृति प्रदान की :

आने वाली टीमें

(i) कालीकट, हैदराबाद और दिल्ली में 30 जुलाई से 8 अगस्त, 1978 तक तीन मैच खेलने के लिए भारतीय वालीबाल फेडरेशन के आमंत्रण पर भारत का दौरा करने के लिए रेसिंग क्लब डे फ्रांस, पैरिस की एक वालीबाल टीम । भारत ने सभी मैच जीते ।

(ii) रेलवे खेल नियंत्रण बोर्ड के स्वर्ण जयंती समारोहों में 6 से 11 नवम्बर, 1978 तक भाग लेने के लिए रेलवे खेल नियंत्रण बोर्ड के आमंत्रण पर भारत का दौरा करने के लिए आस्ट्रेलियाई तथा न्यूजीलैण्ड रेलवे गोल्फ टीमें ।

(iii) अक्तूबर-नवम्बर 1978 के दौरान आयोजित होने वाले डी० सी० एम० टूर्नामेंट में भाग लेने के लिए सोवियत रूस, बंगलादेश, पाकिस्तान, पश्चिम जर्मनी और बर्मा की फुटबाल टीमें ।

(iv) अगस्त 1978 के तीसरे सप्ताह के दौरान भारतीय फुटबाल एसोसिएशन शील्ड टूर्नामेंट में भाग लेने के लिए भारत का दौरा करने के लिए सोवियत

रूस, ईरान, उत्तरी कोरिया, ब्राजील, चीन गणराज्य और कुवैत की फुटबाल टीमें।

बाहर जाने वाली टीमें

(i) कोलम्बो में 20 से 25 जून, 1978 तक आयोजित चौथी नेशनल एज ग्रुप स्वीमिंग एन्ड डाइविंग चेम्पियनशिप में भाग लेने के लिए भारतीय तैराकी संघ की ... टीम का श्रीलंका का दौरा।

(ii) मलेशिया तथा सिंगापुर में सितम्बर/अक्तूबर 1978 के दौरान अनेक मैचों में भाग लेने के लिए चार खिलाड़ियों तथा प्रबंधक की एक भारतीय केरम टीम का उन देशों का दौरा।

(iii) कोलम्बो में 23 से 30 जून, 1978 तक आयोजित 'लोवर इन्वीटेशन हाकी टूर्नामेंट' में भाग लेने के लिए सोमा सुरक्षा दल टीम का श्रीलंका का दौरा।

(iv) दसवीं पुरुष अन्तर्राष्ट्रीय रेलवे टेबल टेनिस चेम्पियनशिप और छठी महिला अन्तर्राष्ट्रीय रेलवे टेबल टेनिस चेम्पियनशिप में 4 से 12 अगस्त, 1978 तक भाग लेने के लिए प्लाजान (चेकोस्लोवाकिया) जाने के वास्ते रेलवे खेल नियंत्रण बोर्ड द्वारा प्रायोजित एक टीम का दौरा।

(v) कनाडा में 10 से 22 जुलाई, 1978 तक पोलो टूर्नामेंट में भाग लेने के लिए कालगरी (कनाडा) जाने के वास्ते एक चार सदस्यीय भारतीय पोलो टीम का दौरा।

(vi) इन्डियन क्लब, कावलन में 3 से 7 जुलाई 1978 तक मैचों में भाग लेने के लिए हांगकांग जाने के वास्ते एयर इन्डिया की बेडमिन्टन टीम का दौरा।

(vii) माल्टा (रोम) में नवम्बर 1978 में होने वाली विश्व एमेच्योर स्नूकर चेम्पियनशिप में भाग लेने के लिए माल्टा जाने के वास्ते बिलियर्डस् और स्नूकर टीमों का दौरा।

(viii) यू० के० में 17 से 20 अगस्त 1978 तक होने वाली एफ० ए० आई० विश्व एयर रैली चेम्पियनशिप में भाग लेने के वास्ते एयरो क्लब आफ इण्डिया टीमों का दौरा।

(ix) तेहरान (ईरान) में 2 से 24 अगस्त, 1978 तक होने वाले नवें जोन के पुरुषों के जोनल टूर्नामेंटों में भाग लेने के लिए अखिल भारतीय शतरंज संघ की एक टीम का दौरा।

(x) अलबर्क, न्यू मैक्सिको, अमरीका में 3 से 5 अगस्त 1978 तक आयोजित विश्व स्कूल बाल उत्सव में भाग लेने के लिए भारतीय कुश्ती संघों की एक टीम का दौरा।

(xi) सरकार ने, एडमोंटन (कनाडा) में 3 से 12 अगस्त, 1978 तक आयोजित राष्ट्रमंडल खेलों में भाग लेने के लिए, 42 खिलाड़ियों और 13 अधिकारियों के एक भारतीय दल को, जिसमें सरकारी खर्च पर एक डाक्टर तथा भारतीय ओलिम्पिक एसोसिएशन के दो अधिकारी शामिल हैं, अनुमति प्रदान की। भारतीय दल में निम्नलिखित खेलों के खिलाड़ी शामिल थे :

(क) ऐथलेटिक्स
(ख) जिम्नास्टिक्स
(ग) तैराकी
(घ) कुश्ती
(ङ) भारोत्तोलन
(च) निशानेबाजी
(छ) साइक्लिंग
(ज) बेडमिन्टन
(झ) मुक्केबाजी

इसके अतिरिक्त, सरकार ने, तीन और एथलिटो तथा दो तैराकी, कुश्ती के एक प्रशिक्षक, एथलेटिक्स तथा जिम्नास्टिक्स के लिए एक-एक प्रबंधक तथा एक लोक सम्पर्क अधिकारी और भारतीय ओलिम्पिक एसोसिएशन के एक सचिव-एवं-खजांची को भी, बगैर सरकारी खर्च के, एडमिन्टन जाने की अनुमति प्रदान की।

भारतीय दल ने इन खेलों में 15 पदक जीते जिनका ब्यौरा इस प्रकार है :—

स्वर्ण पदक — पांच (कुश्ती में तीन तथा बैडमिन्टन और भारोत्तोलन में एक-एक)

रजत पदक — चार (कुश्ती में तीन और भारोत्तोलन में एक)

कांस्य पदक — छः (कुश्ती में तीन तथा एथलेटिक्स, बैडमिन्टन और मुक्केबाजी में एक-एक)

(xii) भारतीय एमेच्योर एथलेटिक्स संघ की टीम द्वारा 1 से 3 सितम्बर 1978 तक सिंगापुर में आयोजित 40 वीं सिंगापुर एमेच्योर एथलेटिक्स एसोसिएशन ट्रैक एण्ड फील्ड इन्वीटेशनल मीट, 1978 में भाग लेना।

(xiii) 5 से 25 अक्तूबर 1978 तक 20वें युवक फुटबाल टूर्नामेंट में भाग लेने के लिए अखिल भारतीय फुटबाल संघ टीम का बंगला देश का दौरा।

(xiv) कराची में 10 से 17 सितम्बर, 1978 तक आयोजित होने वाली दक्षिण एशियाई येचिंग रेगाटा में भाग लेने के लिए भारतीय येचिंग एसोसिएशन टीम।

(xv) ग्राज (आस्ट्रिया) में 3 से 17 सितम्बर, 1978 तक आयोजित होने वाली 17वीं विश्व जूनियर शतरंज चेम्पियनशिप में भाग लेने के लिए अखिल भारतीय शतरंज संघ का जूनियर खिलाड़ी श्री रवि कुमार।

(xvi) अगस्त-सितम्बर 1978, के दौरान कोलम्बो (श्रीलंका) में आयोजित होने वाली एशियाई स्कूलस् फुटबाल चेम्पियनशिप में भाग लेने के लिए भारतीय स्कूली खेल संघ टीम का दौरा।

(xvii) सितम्बर, 1978 में मेड्रिड टूर्नामेंट में तीसरे विश्व महिला हाकी कप में भाग लेने के लिए स्पेन जाते हुए भारतीय महिला हाकी टीम का हालैण्ड और फ्रांस का दौरा।

(xviii) 10 से 17 सितम्बर 1978 तक श्रीलंका में होने वाले 7वें श्रीलंका ग्रांडप्रिक्स में भाग लेने के लिए भारतीय मोटर खेल क्लब की 13 सदस्यीय टीम का दौरा।

(xix) 26 अगस्त से 17 सितम्बर, 1978 तक दक्षिण पूर्व एशियाई सर्किट में भाग लेने के लिए भारतीय स्क्वैश रेकट संघ के श्री आर० के० मनचंदा का सिंगापुर, क्वालालम्पुर और मनीला का दौरा।

अखिल भारतीय खेल परिषद् का पुनर्गठन

अखिल भारतीय खेल परिषद् को और अधिक कार्यात्मक व प्रभावी बनाने के उद्देश्य से परिषद् का 21 जुलाई, 1978 से तीन वर्ष की अवधि के लिए पुनर्गठन किया गया है। अध्यक्ष के अलावा, पुनर्गठित परिषद् में 20 सदस्य हैं, जिनमें 6 खेल प्रोत्साहक (2 महिलाओं समेत), दो खेल लेखक/टिप्पणीकार, दो शिक्षाविद, तीन संसद सदस्य तथा राज्य खेल परिषदों के पांच प्रतिनिधि, विदेश मंत्रालय का एक प्रतिनिधि और शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय में खेलों के प्रभारी ब्यूरो अध्यक्ष शामिल हैं। फील्ड मार्शल एस० एच० एफ० जे० मानेकशा को अखिल भारतीय खेल परिषद् का अध्यक्ष नियुक्त किया गया है।

पुनर्गठित अखिल भारतीय खेल परिषद् की पहली बैठक

पुनर्गठित अखिल भारतीय खेल परिषद् की पहली बैठक, उसके अध्यक्ष फील्ड मार्शल एस० एच० एफ० जे० मानेकशा की अध्यक्षता में, 21 व 22 जुलाई, 1978 को हुई। अन्य बातों के साथ-साथ, अखिल भारतीय खेल परिषद् ने, प्रस्तावित नई खेल नीति के संबंध में रूपरेखाओं के बारे में सरकार को सलाह देने के लिए एक उप-समिति गठित करने का निर्णय किया जिसके संयोजक श्री एम० आर० कृष्णा होंगे। परिषद् ने, अर्जुन पुरस्कार नियमों में संशोधन को भी अपनी स्वीकृति प्रदान की, जिससे [illegible] प्रत्येक पुरस्कार प्राप्तकर्त्ता को, कांस्य पदक और स्क्रोल के अतिरिक्त, दो वर्ष की अवधि के लिए [illegible] रु० प्रति मास की छात्रवृत्ति दी जा सके। परिषद् ने, हाकी के मामलों के संबंध में कार्रवाई की योजना तैयार करने के लिए सभी संबंधितों से विचार-विमर्श करने के लिए अध्यक्ष को प्राधिकृत किया। अनेक राष्ट्रीय खेल संघों को अपनी टीमें विदेश भेजने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने के अलावा परिषद् ने भारतीय धनुर्विद्या एसोसिएशन को एक राष्ट्रीय खेल एसोसिएशन के रूप में मान्यता देने का निर्णय किया।

एस० एन० आई० पी० ई० एस० के नए अध्यक्ष

पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के कुलपति डा० अमरीक सिंह को, श्री सिकन्दर बख्त के त्याग-पत्र के कारण रिक्त स्थान पर, 30 जून, 1978 से 31 मई, 1979 तक, राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा तथा खेल संस्थानों के लिए सोसायटी तथा इसके गवर्नर्स बोर्ड का अध्यक्ष मनोनीत किया गया है।

एस० एन० आई० पी० ई० एस० के कर्मचारियों के लिए पेंशन योजना

सरकार ने, राष्ट्रीय शारीरिक शिक्षा तथा खेल संस्थानों के लिए सोसायटी के कर्मचारियों के लिए, विद्यमान अंशदायी निर्वाह निधि योजना के स्थान पर, पहली अप्रैल, 1976 से पेंशन, मृत्यु-एवं-सेवा-निवृत्ति उपदान तथा निर्वाह निधि योजना, उन्हीं नियम तथा शर्तों के अनुसार, जो केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों पर लागू हैं, लागू करने के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान की है।

छात्रवृत्तियां

विदेश जाने वाले छात्र

आस्ट्रियाई सरकार की छात्रवृत्तियां, 1978-79

होटल प्रबंध तथा पर्यटन पाठ्यक्रमों के लिए

मनोनीत 9 उम्मीदवारों में से, आस्ट्रियाई सरकार ने अब तक तीन उम्मीदवारों को छात्रवृत्तियां प्रदान की हैं।

बल्गारिया सरकार की छात्रवृत्तियां, 1978-79

तीन उम्मीदवारों को मनोनीत किया गया है।

चेकोस्लोवाकिया सरकार की छात्रवृत्तियां, 1978-79

छः उम्मीदवारों के संबंध में स्वीकृति प्राप्त हुई है। क्योंकि उम्मीदवारी को योग्यता-क्रम में अनुमोदित नहीं किया गया है इसलिए संबंधित सरकार के साथ मामला उठाया जा रहा है।

कोमेकोन छात्रवृत्तियां, 1978-79

योजना के अन्तर्गत पोलिश तथा चेक प्राधिकारियों द्वारा एक-एक उम्मीदवार को स्वीकृति प्रदान की गई है। दो अन्य उम्मीदवारों ने अब पीपल्स फ्रेन्डशिप यूनिवर्सिटी, मास्को में दाखिला ले लिया है।

फ्रेंच सरकार की छात्रवृत्तियां, 1978-79

मनोनीत 15 उम्मीदवारों में से, फ्रांस सरकार ने 13 उम्मीदवारों को अनुमोदित किया है।

जर्मन जनवादी गणराज्य छात्रवृत्तियां—स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए, 1978-79

बारह उम्मीदवार मनोनीत किए गए हैं।

इटली सरकार की छात्रवृत्तियां, 1978-79

आई० एस० वी० ई० योजना के अन्तर्गत दस उम्मीदवार मनोनीत किए गए हैं।

आई० आर० आई० योजना के अन्तर्गत तीन उम्मीदवार मनोनीत किए गए हैं।

तकनीशियन योजना के अन्तर्गत नौ उम्मीदवार मनोनीत किए गए हैं।

ललित कलाएं तथा चित्रकारी योजना के अन्तर्गत दो उम्मीदवार मनोनीत किए गए हैं।

नीदरलैण्ड सरकार की अधिछात्रवृत्तियां, 1978-79

पांच उम्मीदवार मनोनीत किए गए हैं।

पोलिश सरकार की छात्रवृत्ति योजना, 1978-79

ग्यारह उम्मीदवार मनोनीत किए गए हैं।

रुमानिया सरकार की छात्रवृत्तियां, 1978-79

सोलह उम्मीदवार (4 आरक्षित समेत) मनोनीत किए गए हैं।

स्वीडन सरकार की छात्रवृत्तियां, 1978-79

स्वीडन प्राधिकारियों द्वारा तीन उम्मीदवारों को अन्ततः अनुमोदित किया गया है।

सोवियत रूस सरकार की छात्रवृत्तियां, 1978-79

सोवियत रूस प्राधिकारियों के पास 31 उम्मीदवारों के नाम मनोनयन भेजे गए हैं। इनमें से दस के संबंध में अब तक स्वीकृति प्राप्त हो गई है शेष उम्मीदवारों के संबंध में स्वीकृति की प्रतीक्षा है।

पेट्रिस लुमुम्बा विश्वविद्यालय छात्रवृत्तियां, 1978-79

पता चला है कि जिन 15 छात्रों को छात्रवृत्तियां दी गई थीं उनमें से बारह उम्मीदवार सोवियत रूस पहुंच गए हैं।

राष्ट्रमण्डल छात्रवृत्ति तथा अधिछात्रवृत्ति योजना, 1978-79

न्यूजीलैण्ड सरकार द्वारा प्रस्तावित छात्रवृत्तियां, 1978

चार उम्मीदवार मनोनीत किए गए हैं।

ब्रिटिश तकनीकी सहयोग प्रशिक्षण कार्यक्रम (यू० के०) छात्रवृत्तियां, 1978-79

तकनीकी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, मद्रास तथा क्षेत्रीय इंजीनियरी कालेजों में से, उनके स्वीकृत शैक्षिक संबंध कोटे के विरुद्ध, ब्रिटिश परिषद् को चार और मनोनयन भेजे गए हैं।

भारत आने वाले छात्र

भारत-पोलिश सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम

शिक्षा वर्ष 1978-79 के लिए 5 पोलिश छात्रों के दाखिले का प्रबंध किया गया है। आशा है कि वे भारत में अपने-अपने पाठ्यक्रमों में दाखिला ले लेंगे।

भारत-यूगोस्लाव सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम

एक छात्र ने भारत आकर अपने अध्ययन पाठ्यक्रम में दाखिला ले लिया है। दो और छात्रों के दाखिले की व्यवस्था की गई है और उनके शीघ्र ही दाखिला लेने की संभावना है। दो और छात्रों के दाखिले की व्यवस्था की जा रही है।

भारत-अफगान सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम

नौ अफगान छात्रों ने विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों में दाखिला ले लिया है। चार और छात्रों के प्रवेश की व्यवस्था की गई है।

भारत-बेल्जियम सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम

बेल्जियम के एक छात्र ने दक्कन कालेज, पूना में दाखिला ले लिया है।

भारत-ए० आर० ई० सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम

एक छात्र, श्री अब्देल फतह अब्देल्लाह ने 31-8-78 को टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान, बम्बई में दाखिला ले लिया।

भारत-फ्रांस सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम

दो छात्र भारत आ गए हैं और उन्होंने संस्थान में दाखिला ले लिया है।

भारत-सेनेगल सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम

दो छात्र भारत आ गए हैं और उन्होंने संस्थान में दाखिला ले लिया है।

भारत-तुर्की सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम

शैक्षिक वर्ष के दौरान दो तुर्की छात्रों के अध्ययन के लिए व्यवस्था की जा रही है।

राष्ट्रमंडल छात्रवृत्ति/अधिछात्रवृत्ति योजना, 1978-79

केन्या, उगान्डा, न्यूजीलैंड, बोत्सवाना, ब्रिटन मलयेशिया, श्रीलंका, तन्जानिया और मारीशस के 14 छात्रों ने भारत में विभिन्न विश्वविद्यालयों और संस्थाओं में दाखिला ले लिया है।

राष्ट्रमंडल शिक्षा सहयोग योजना—शिल्प प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण

आठ विदेशी प्रशिक्षार्थी भारत आए और उन्होंने बम्बई तथा दिल्ली में प्रशिक्षण संस्थानों में अपने-अपने पाठ्यक्रम में दाखिला ले लिया। दो और प्रशिक्षार्थियों के दाखिले की व्यवस्था की गई है और आशा है कि वे भी शीघ्र भारत आ जाएंगे।

पारस्परिक छात्रवृत्ति योजना

एक छात्र को छात्रवृत्ति प्रदान की गई है जो पहले ही भारत में अध्ययन कर रहा है।

टी० सी० एल० (कोलम्बो योजना), 1978-79

27 प्रशिक्षार्थियों ने अपनी-अपनी संस्थाओं में दाखिला ले लिया।

विशेष राष्ट्रमंडल अफ्रीकी सहायता योजना

दो छात्रों ने अपनी-अपनी संस्थाओं में दाखिला ले लिया।

राष्ट्रीय छात्रवृत्तियां

संस्कृत को छोड़कर श्रेण्य भाषाओं जैसे अरबी और फारसी के अध्ययन में लगे परम्परागत संस्थाओं के छात्रों को अनुसंधान छात्रवृत्तियां प्रदान करने की योजना

योजना के अन्तर्गत 20 उम्मीदवार (फारसी और अरबी के लिए दस-दस), वर्ष 1977-78 के लिए छात्रवृत्ति हेतु चुने गए हैं। ये चयन, इस प्रयोजन के लिए यथापूर्वक गठित चयन समिति की सिफारिश के आधार पर किए गए हैं। समिति ने कहा है कि ये छात्रवृत्तियां उन उम्मीदवारों के लिए खुली है जिन्होंने इस प्रयोजन के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा मान्यता-प्राप्त श्रेण्य भाषाओं के लिए सुस्थापित किसी संस्था अथवा राज्य सरकार द्वारा संचालित सर्वोच्च परीक्षा में कोई डिग्री/डिप्लोमा प्राप्त किया है।

चुना गया छात्र, दो वर्ष की अवधि के लिए अथवा अनुसंधान कार्य के पूरा होने तक, जो भी पहले हो, इस प्रयोजन के लिए योजना के [illegible]त निर्धारित शर्तों के अनुसार, 200 रुपये प्रति मास पा[illegible] का हकदार होगा।

विदेश अध्ययन के लिए राष्ट्रीय छात्रवृत्तियां, 1978-79

तीन विभिन्न विषय-वर्गों, अर्थात् इंजीनियरी और प्रौद्योगिकी, मानविकी तथा समाज विज्ञान और कृषि सहित प्राकृतिक तथा भौतिक विज्ञान के लिए चयन समितियों की सिफारिशों के आधार पर 50 उम्मीदवारों को विदेश अध्ययन के लिए राष्ट्रीय छात्रवृत्तियां प्रदान की गई। इनमें से दो अवर स्नातक अध्ययन के लिए, 40 पी० एच० डी० के अध्ययनार्थ स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए और आठ डाक्टोरल उपरांत अनुसंधान/प्रशिक्षण के लिए थी। छात्रवृत्तियां, योग्यता-एवं-आय के आधार पर प्रदान की जाती है और छात्रवृति की अवधि दो से लेकर चार वर्ष तक की होती है, जो अध्ययन/अनुसंधान पाठ्यक्रम पर निर्भर करती है। छात्रवृत्ति की राशि में अमरीका तथा कनाडा के लिए 4000 अमरीकी डालर प्रति वर्ष तथा अन्य देशों के लिए 3000 अमरीकी डालर प्रति वर्ष का अनुरक्षण भत्ता शामिल है। दोनों ओर का यात्रा व्यय, शिक्षा शुल्क तथा अन्य वास्तविक शुल्कों की वास्तविक राशि, छात्रों के अध्ययन दौरों सहित पुस्तक तथा उपस्कर खर्च भी भारत सरकार द्वारा वहन किया जाता है।

सामान्य सांस्कृतिक छात्रवृत्ति योजना

योजना के अन्तर्गत, भारत में उच्च शिक्षा के लिए चुने हुए अफ्रीकी, एशियाई तथा अन्य देशों के राष्ट्रिकों को प्रत्येक वर्ष 180 छात्रवृत्तियां प्रदान की जाती है। यद्यपि अधिकांश छात्रवृत्तियां विदेशी मूल के विदेशी छात्रों को दी जाती है तथापि, कुछ छात्रवृत्तियां, विदेशों में स्थायी रूप से बसे भारतीय मूल के छात्रों को प्रदान की जाती हैं। 1978-79 के दौरान छात्रवृत्तियां प्रदान करने के लिए चुने गए 163 छात्रों में से अब तक 80 छात्रों ने विभिन्न विश्वविद्यालयों/संस्थाओं में दाखिला ले लिया है। शेष छात्रों के भारत पहुंचने के संबंध में हमारे विदेश स्थित मिशनों से सूचना की प्रतीक्षा है।

बंगला देश के राष्ट्रिकों को छात्रवृत्तियों/अधिछात्र-वृत्तियों की योजना

योजना के अन्तर्गत प्रत्येक वर्ष 100 छात्रवृत्तियां प्रदान की जाती है। इनमें से अब तक 36 छात्रों ने विभिन्न विश्वविद्यालयों/संस्थाओं में दाखिला ले लिया है। शेष छात्रों के भारत पहुंचने के संबंध में ढाका स्थित भारतीय हाई कमीशन से सूचना की प्रतीक्षा है।

पुस्तक प्रोन्नति

विदेशी-विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों के सस्ते संस्करणों का प्रकाशन

आलोच्य तिमाही के दौरान, इस मंत्रालय द्वारा अनुमोदित छः पुस्तकें, यू० के०, अमरीका तथा सोवियत रूस की सरकार के सहयोग से संचालित किए जाने वाले तीन पुनर्मुद्रण कार्यक्रमों के अन्तर्गत प्रकाशित की गई हैं।

विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों के सहायता प्राप्त प्रकाशनों की योजना

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने, आलोच्य तिमाही के अन्तर्गत भारतीय लेखकों द्वारा अंग्रेजी में विश्वविद्यालय स्तर की पुस्तकों के सहायता-प्राप्त प्रकाशन की अपनी योजना के अन्तर्गत 11 पुस्तकों के प्रकाशन के लिए आर्थिक सहायता दी।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास

न्यास ने अपनी विभिन्न क्रममालाओं के अन्तर्गत 31 पुस्तकें प्रकाशित की तथा 20 पाण्डुलिपियां प्रेस को भेजी।

न्यास ने अपनी पहली खुदरा विक्रय दुकान, ए-4, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली में खोली। पुस्तक दुकान का उद्घाटन केन्द्रीय शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति मंत्री द्वारा 17 जून, 1978 को किया गया। पुस्तक दुकान में न्यास के भारतीय भाषाओं में छपे लगभग 1200 प्रकाशन प्रदर्शित किए गए हैं।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा, आन्ध्र प्रदेश सरकार द्वारा इसे उपलब्ध किए गए किराए रहित एक कमरे में, उसके प्रकाशनों के लिए सिटी सेन्ट्रल लाइब्रेरी, अशोक नगर, हैदराबाद में एक पुस्तक केन्द्र स्थापित किया गया। पुस्तक केन्द्र का लोगों ने काफी उत्साह से स्वागत किया।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा 24 से 26 जून, 1978 तक जुबली-हाल, हैदराबाद में "आगामी दशक में तेलगू प्रकाशन" पर एक तीन दिवसीय सेमिनार का आयोजन किया। सेमिनार का उद्घाटन आन्ध्र प्रदेश के शिक्षा मंत्री ने किया। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ने, 29 से 31 जुलाई, 1978 तक पूना में "आगामी दशक में मराठी प्रकाशन" पर एक सेमिनार आयोजित किया।

निम्नलिखितों में भारतीय पुस्तकों के निर्यात, भागीदारी आदि को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से पुस्तक मेलों की व्यवस्था की गई।

न्यास ने, राष्ट्रीय पुस्तक विकास परिषद, सिंगापुर तथा सिंगापुर पुस्तक प्रकाशक एसोसिएशन द्वारा संयुक्त रूप से 26 अगस्त से 4 सितम्बर, 1978 तक सिंगापुर में आयोजित दसवें सिंगापुर पुस्तक समारोह तथा पुस्तक मेले में भाग लिया। प्रदर्शनी का विषय "रीडिंग इज लिविंग" था। न्यास ने, 77 भारतीय प्रकाशकों द्वारा कला, इतिहास, जीवन वृत्त, साहित्य, दर्शन तथा धर्म, शुद्ध, प्रयुक्त तथा समाज विज्ञान में प्रकाशित लगभग 700 पुस्तकों का संग्रह प्रदर्शित किया और इनमें बाल पुस्तकें और स्कूली पाठ्यपुस्तकें, सामान्य तथा संदर्भ पुस्तकें शामिल थी।

मेले में, वहां प्रदर्शित पुस्तकों के सूची-पत्रों की प्रतियां तथा 'भारत की पुस्तकें' 1975—77, विषय-सूची-पत्रों की प्रतियां भी वितरित की गई।

जुलाई के अंतिम सप्ताह तथा अगस्त, 1978 के प्रारंभ में थाइलैंड में भारतीय दूतावास की मदद से भारतीय पुस्तकों की एक प्रदर्शनी आयोजित की गई। भारत के विभिन्न प्रकाशकों से विविध विषयों की एकत्र की गई लगभग 420 पुस्तकें प्रदर्शित की गई।

राजा राममोहन राय राष्ट्रीय शैक्षिक संसाधन केन्द्र

केन्द्र ने, 17 से 19 अगस्त, 1978 तक कामराज विश्वविद्यालय, मदुरै में विश्वविद्यालय स्तर की एक प्रदर्शनी आयोजित की। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा आर्थिक सहायता की योजना के अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तकों, राज्य पाठ्यपुस्तक बोर्ड/ब्यूरो द्वारा प्रकाशित पुस्तकों, कन्नड तथा तेलगु के प्रकाशनों, तमिलनाडु पाठ्यपुस्तक सोसायटी प्रकाशनों तथा अमरीका, यू०के० तथा सोवियत रूस सरकारों के साथ सहयोग से भारत सरकार के तीन कार्यक्रमों के अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तकों सहित विभिन्न विषयों की चुनी हुई लगभग 900 पुस्तकें प्रदर्शित की गई। प्रदर्शनी काफी लोकप्रिय हुई और बड़ी संख्या में छात्रों, अध्यापकों, अनुसंधान छात्रों, डीनो तथा विभागाध्यक्षों ने प्रदर्शनी देखी।

आलोच्य अवधि के दौरान निम्नलिखित प्रकाशन संकलित किए गए :

(क) अक्तूबर, 1977–जून, 1978 को अवधि की विश्वविद्यालयीय स्तर की पुस्तकों के राष्ट्रीय सूचीपत्र के पूरक, खण्ड 3, अंक IV-VI।

(ख) एन० ई० आर० सी० न्यूजलेटर 1977-78।

इसके अतिरिक्त केन्द्र ने, तमिल भाषा विश्वविद्यालय स्तरीय प्रकाशनों के स्थान पर हो मूल्यांकन के लिए 18 व 19 अगस्त, 1978 को रसायन शास्त्र, अर्थशास्त्र और इतिहास में विषय के विशेषज्ञों की तीन पेनल बैठकें भी आयोजित कीं। इन विषयों में स प्रत्येक के लगभग बारह-बारह प्रकाशन मूल्यांकन के लिए रखे गए।

विविध कापीराइट रायल्टी

भारत ने, एक देश से दूसरे देश में भेजी गई कापीराइट रायल्टी के दोहरे कराधान के संबंध में सरकारी विशेषज्ञों को समिति की तीसरी बैठक में भाग लिया। यह बैठक, यूनेस्को तथा विश्व बौद्धिक सम्पत्ति संगठन द्वारा संयुक्त रूप से 19-30 जून, 1978 को पेरिस में आयोजित की गई थी। हमारे प्रतिनिधिमंडल ने, दोनों देशों के लिए कराधान के समान अधिकार का सिद्धान्त स्वीकार कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, अर्थात् जहां लेखक रहता है तथा उस देश में जहां कि उसके कार्य के उपयोग के परिणामस्वरूप कापीराइट रायल्टी द्वारा आय होती है। इसके परिणामस्वरूप, दोहरे कराधान में कटौती/उससे बचने का दायित्व रिहायश तथा स्रोत वाले दोनों देशों पर है। भारत ने, दूरदर्शन कार्यक्रमों के समुद्रीतार सम्प्रेषण से संबंधित समस्याओं पर विचार करने के लिए 'विपो' उप-समिति की बैठक में भी भाग लिया। इन समस्याओं का पता लगाया गया और राष्ट्रीय विधानों के जरिए उपयुक्त सुरक्षा की व्यवस्था करने के लिए मार्गदर्शी रूपरेखाएं निर्धारित की गई।

यूनेस्को से सहयोग के लिए भारतीय राष्ट्रीय आयोग महानिदेशक का दौरा

यूनेस्को के महानिदेशक महामहिम श्री अमादो मेहतार एम बोव, निम्नलिखित चार अधिकारियों के साथ, काठमाण्डु जाते हुए 15 जून, 1978 को नई दिल्ली में थोड़े समय के लिए रुके :

1. श्री एम० मकागिनसार, (इन्डोनेशिया) सहायक महानिदेशक (संस्कृति)
2. श्री एम० चोंग, अध्यक्ष एशिया (मलयेशिया) तथा ओसिनिआ प्रभाग
3. श्री न्हीयनानोस्वोग, (कम्बोडिया) कार्यक्रम विशेषज्ञ (महानिदेशक के कार्यालय में सीपीएक्स)
4. डा० ए० डब्ल्यू० पी० गुरुगे, (श्रीलंका) शिक्षा प्रबंध सलाहकार, यूनेस्को क्षेत्रीय कार्यालय, बैंगकाक

काठमाण्डु से लौटते हुए म[illegible] ने शिक्षा मंत्री तथा यूनेस्को के लिए भारतीय राष्ट्रीय आयोग के महासचिव से भेंट की और उनके साथ परस्पर हित के मामलों पर चर्चा की।

भारतीय राष्ट्रीय आयोग का पुनर्गठन

यूनेस्को से सहयोग के लिए भारतीय राष्ट्रीय आयोग का इस वर्ष के प्रारंभ में पुनर्गठन किया गया। इसके चार उप-आयोग हैं, अर्थात् शिक्षा; प्राकृतिक विज्ञान; समाज विज्ञान; मानविकी तथा संस्कृति; और संचार। वर्ष 1979-80 के लिए यूनेस्को के कार्यक्रम के मसौदे तथा बजट में परिकल्पित विभिन्न परियोजनाओं के संबंध में उप-आयोगों की विशेषज्ञ सलाह प्राप्त करने के लिए इन चारों उप-आयोगों की एक बैठक 5-6 जुलाई 1978 को विज्ञान भवन, नई दिल्ली में आयोजित की गई। इन उप-आयोगों द्वारा, अपने-अपने क्षेत्रों के संबंध में की गई सिफारिशें, 21 जुलाई, 1978 को शिक्षा मंत्री की अध्यक्षता में हुए यूनेस्को के लिए भारतीय राष्ट्रीय आयोग के 14वें अधिवेशन में प्रस्तुत की गई। इस बैठक में आयोग ने वर्ष 1979-80 के लिए यूनेस्को के कार्यक्रम के मसौदे और बजट के संबंध में प्रस्तावित विभिन्न प्रस्तावों पर भी विचार किया।

शिक्षा मंत्रियों का चौथा क्षेत्रीय सम्मेलन

यूनेस्को ने, शिक्षा मंत्रियों तथा एशिया और ओसिनिआ में आर्थिक आयोजन के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों का कोलम्बो में 24 जुलाई से 1 अगस्त, 1978 तक चौथा क्षेत्रीय सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन के लिए भारतीय प्रतिनिधिमंडल में निम्नलिखित सदस्य थे :

1. श्रीमती रेणुका देवी बरकटकी, नेता शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति राज्य मंत्री
2. श्री पी० के० उमाशंकर, प्रतिनिधि संयुक्त सचिव, शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय
3. डा० एस० एन० शरीफ़, प्रतिनिधि प्रधान, (शिक्षा), योजना आयोग

4. श्री अशोक साइकिया, स्टाफ अधिकारी
निजी सचिव, शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति
राज्य मंत्रालय

एशिया में सांस्कृतिक प्रशासन में प्रशिक्षण के संबंध में क्षेत्रीय सेमिनार

शिक्षा विभाग, शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय में उप सचिव श्री [illegible] शंकर को एशिया में सांस्कृतिक प्रशासन में प्रशिक्षण के संबंध में क्षेत्रीय सेमिनार में भाग लेने के लिए प्रतिनियुक्त किया गया। यह सेमिनार 31 जुलाई से 12 अगस्त, 1978 तक टोक्यो (जापान) में आयोजित किया गया था। इसका समस्त खर्च यूनेस्को के लिए एशियाई सांस्कृतिक केन्द्र, जापान द्वारा वहन किया गया था।

कापीराइट

कापीराइट अधिनियम के अन्तर्गत दर्ज की गई याचिकाओं को सुनने के लिए कापीराइट अधिनियम, 1957 (1957 का 14) की धारा 11 के अन्तर्गत गठित कापीराइट बोर्ड की जून से अगस्त, 1978 तक की अवधि के दौरान, पटियाला में एक बैठक हुई। दर्ज किए गए पांच मामलों में से बोर्ड ने इस बैठक में चार मामलों में निर्णय लिया।

जून से अगस्त, 1978 की अवधि के दौरान, कापीराइट अधिनियम 1957 की धारा 45 के उपबन्धों के अन्तर्गत, 906 कलात्मक तथा 154 साहित्यिक कृतियां पंजीकृत की गई। इसके अतिरिक्त, कापीराइट रजिस्टरों में 13 परिवर्तन भी किए। किए गए परिवर्तनों तथा पंजीकरण के संबंध में प्रमाणपत्र सभी संबंधित पक्षों को भेजे गए।

कला तथा संस्कृति के संबंध में कार्यकारी दल

कला तथा संस्कृति से संबंधित कार्यकारी दल की इस सिफारिश के अनुसरण में कि विकास आयोजन में परिसरीय मद के रूप में संस्कृति विषय नहीं होना चाहिए और कि शिक्षा तथा अन्य सम्बद्ध क्षेत्रों के साथ संबंधों का विकास किया जाए, सरकार ने शिक्षा सचिव की अध्यक्षता में शिक्षा और संस्कृति के बीच संबंधों के लिए एक समिति तथा अपर सचिव, संस्कृति विभाग की अध्यक्षता में, जनजातीय विकास, ग्रामीण विकास, संचार तथा पर्यटन के विशिष्ट क्षेत्रों में, संस्कृति को दृष्टिगत रखते हुए क्रमशः कार्यात्मक दल गठित किए हैं।

सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम

वर्ष 1978-80 के लिए एक भारत-तुर्की सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम पर 12 जुलाई, 1978 को नई दिल्ली में हस्ताक्षर किए गए। कार्यक्रम पर, भारत सरकार की ओर से शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति मंत्री डा० पी० सी० चन्द्र ने तथा तुर्की सरकार की ओर से वहां के विदेश मंत्री महामहिम प्रो० गुन्डुज ए० ओकुन ने हस्ताक्षर किए।

वर्ष 1978—80 के लिए कार्यक्रम में शिक्षा, कला और संस्कृति, फिल्मों, रेडियो, टेलीविजन, खेल-कूद तथा युवक कार्यकलापों के क्षेत्रों में विविध प्रकार के कार्यकलाप शामिल है।

सांस्कृतिक प्रतिनिधिमंडल (भारत आने वाले)

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दियों से संबंधित पोलिश पदकों तथा अलंकारों की एक प्रदर्शनी 22 जून से 1 जुलाई, 1978 तक दिल्ली में तथा 12 जुलाई से 22, जुलाई 1978 तक कलकत्ता में आयोजित की गई। कमिशनर के रूप में मदाम डनुटा ओरलोवस्का प्रदर्शनी के साथ आई। वह 19 जून से 17, जुलाई 1978 तक भारत में रहीं। देश में अपने आवास के दौरान मदाम डनुटा ओरलोवस्का ने दिल्ली, आगरा, जयपुर, औरंगाबाद, बम्बई, हैदराबाद तथा कलकत्ता का दौरा किया।

ईराक

भारत-ईराक सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम के अन्तर्गत ईराकी लोक कला प्रदर्शनी भारत में आयोजित की गई। यह प्रदर्शनी 31 जुलाई से 7 अगस्त, 1978 तक दिल्ली में और 9 से 15 अगस्त, 1978 तक जयपुर में आयोजित की गई। ईराक सरकार के संस्कृति और कला मंत्रालय के ड्राइंग तथा डिजाइन विभाग के अध्यक्ष श्री याहया अब्बास सुकरी अल दारजी भी प्रदर्शनी का आयोजन करने के लिए भारत आए। वह भारत में 15 जुलाई से 19 अगस्त, 1978 तक रहे। देश में अपने आवास के दौरान श्री अब्बास सुकरी अल दारजी ने दिल्ली, बम्बई, आगरा और जयपुर का दौरा किया।

युगोस्लाविया

युगोस्लाविया के आलोवर तिहो के चित्रों की एक सदस्यीय प्रदर्शनी 9 से 18 अगस्त, 1978 तक दिल्ली में आयोजित की गई। दिल्ली के पश्चात् यह प्रदर्शनी 22 से 31 अगस्त, 1978 तक अमृतसर में प्रदर्शित की गई।

रूमानिया

समकालीन रूमानियाई चित्रों की एक प्रदर्शनी 19 से 25 अगस्त, 1978 तक दिल्ली में प्रदर्शित की गई। दिल्ली के बाद यह प्रदर्शनी 1 से 5 सितम्बर, 1978 तक लखनऊ में प्रदर्शित की गई।

सांस्कृतिक प्रतिनिधिमंडलों का विदेशों का भ्रमण

(क) अभिनय

(i) 16 सदस्यीय एक नृत्य/संगीत मंडली ने, 1 जून 1978 से 7 जुलाई, 1978 तक लंदन में भारतीय सांस्कृतिक कला केन्द्र लि० लंदन द्वारा आयोजित आठवें भारतीय सांस्कृतिक कला समारोह में भाग लिया। मंडली ने अल्जीरिया और घाना का भी दौरा किया।

(ii) नाट्य बैले सेंटर ग्रुप, एक भरतनाट्यम नृतक, काश्मीर के एक संतूर वादक और संस्कृति विभाग के एक सम्पर्क अधिकारी सहित 25 सदस्यीय नृत्य/संगीत दल ने 14 जुलाई से 30 अगस्त, 1978 तक मिश्र अरब गणराज्य, युगोस्लाविया, रुमानिया तथा बल्गारिया का दौरा किया।

(ख) गैर-अभिनय

आस्ट्रेलिया में कलाओं के जरिए शिक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सोसायटी द्वारा 12 से 19 अगस्त, 1978 तक एडलीड (आस्ट्रेलिया) में आयोजित 23वीं विश्व कांग्रेस में भाग लेने के लिए, राजकीय कला और शिल्पकला कालेज, कलकत्ता के प्रिन्सिपल डा० एस० एन० घोषाल, 12 अगस्त, 1978 को भारत से रवाना हो गए।

भगवान बुद्ध के अवशेषों की भारत वापसी

श्रीलंका में दिखाने के लिए वहां की सरकार को उधारस्वरूप दिए गए भगवान बुद्ध के अवशेषों को वापस सौंपने के लिए श्रीलंका सरकार के सांस्कृतिक कार्य मंत्रालय के नेतृत्व में चार महानायक के प्रतिनिधियों सहित एक सात-सदस्यीय सरकारी प्रतिनिधिमंडल एक विशेष वायुयान द्वारा 25 जुलाई, 1978 को मद्रास पहुंचा। श्रीलंका के सांस्कृतिक कार्य मंत्री द्वारा ये अवशेष राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में 27 जुलाई 1978 को हुए एक समारोह में केन्द्रीय शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति मंत्री को सौंपे गए थे।

बौद्ध धर्म के रुचिकर स्थानों का दौरा करने के बाद श्रीलंका के सांस्कृतिक कार्य मंत्री 2 अगस्त 1978, को श्रीलंका लौट गए।

बलियाघाट रोड, कलकत्ता पर महात्मा गांधी का स्मारक

150-बी, बलियाघाट रोड, कलकत्ता में महात्मा गांधी का एक स्मारक स्थापित करने के लिए, जहां कि गांधीजी अगस्त, 1947 में ठहरे थे और जहां उन्होंने साम्प्रदायिक सामंजस्य के लिए प्रार्थना की थी, प० बंगाल सरकार को 6 लाख रुपये का अनुदान देने का निर्णय किया गया है।

राष्ट्रपिता के एक उपयुक्त स्मारक के रूप में इस स्थान पर एक प्रौढ़ शिक्षा प्रशिक्षण केन्द्र अथवा शिल्पकार प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित करने का प्रस्ताव है।

केन्द्रीय सरकार के अंशदान में, मुख्यतः भवन तथा उसके निकटवर्ती भूमि के अर्जन और भवन के नवीकरण की लागत तथा स्मारक के लिए उपस्कर और फर्नीचर की लागत आदि शामिल होगी।

● ● ●

भा०स०मु०ना०—वि० 7—446 एम आफ एज्युकेशन (एन०डी०)/78—19-6-79—570.



शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति मंत्रालय की अन्य त्रैमासिक पत्रिकाएं

1. 'संस्कृति' (हिंदी)

इस पत्रिका में भारत तथा देश-विदेश के सांस्कृतिक कार्यक्रमों, गतिविधियों और प्रयोगों के सम्बन्ध में अधिकृत सूचना दी जाती है। सभी लेख निष्पक्ष होते हैं।

2. दि एज्यूकेशन क्वार्टरली (अंग्रेजी)

इस पत्रिका में वर्तमान और महत्वपूर्ण शैक्षिक समस्याओं का विवेचन किया जाता है और मंत्रालय की शैक्षिक गतिविधियों के बारे में जानकारी दी जाती है।

3. इण्डियन एज्यूकेशन एब्सट्रैक्ट्स (अंग्रेजी)

इस पत्रिका में भारतीय शिक्षा से संबंधित महत्वपूर्ण साहित्य की विषय-वस्तु का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है। इस पत्रिका से पाठकों को, आवश्यकता पड़ने पर, मूल लेखों तथा प्रकाशनों का हवाला दने में मदद मिलती है।

मूल्य :

'संस्कृति'	एक प्रति	1.00 रुपया
	वार्षिक चन्दा	4.00 रुपए
'दि एज्यूकेशन क्वार्टरली'	एक प्रति	4.50 रुपए
	वार्षिक चन्दा	18.00 रुपए
'इंडियन एज्यूकेशन एब्सट्रैक्ट्स',	एक प्रति	3.90 रुपए
	वार्षिक चन्दा	15.60 रुपए

इन सभी पत्रिकाओं की प्रतियों, वार्षिक चन्दे इत्यादि की पूछताछ के लिये प्रकाशन नियंत्रक, सिविल लाइन्स, दिल्ली-54 को या निम्नलिखित पते पर लिखिये। चन्दा भी इस पते पर भेजा जा सकता है।

निदेशक (हिन्दी प्रकाशन),
शिक्षा, समाज कल्याण तथा संस्कृति मंत्रालय,
102-सी, 'सी' विंग, शास्त्री भवन,
नई दिल्ली–110 001,

PED. 462.10.78
570-1978. DSK. III

Registration No. 25556/73



मूल्य : एक प्रति : 4.50 रुपए अथवा 0.53 पौंड या 1 डालर 62 सेंट्स

वार्षिक : 18 रुपए अथवा 2.10 पौंड या 6 डालर 48 सेंट्स

प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, नासिक-422 006 द्वारा मुद्रित और नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली-110 006 द्वारा प्रकाशित
1979

